प्रकाशकीय निवेदन

जगत के सव जीव सुख चाहते हैं अर्थात् दुःख से भयभीत हैं। सुख पाने के लिए यह जीव सर्व पदार्थों को अपने भावो के अनुसार पलटना चाहता है। परन्तु अन्य पदार्थों को बदलने का भाव मिथ्या है क्योकि पदार्थ तो स्वयमेव पलटते है और इस जीव का कार्य मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

सुखी होने के लिए जिन वचनो को समझना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान मे जिन धर्म के रहस्य को वतलाने वाले अध्यात्म पुरुष श्री कान जी स्वामी है। ऐसे सत्पुरुष के चरणो की शरण मे रहकर हमने जो कुछ सिखा पढा है उसके अनुसार प० कैलाश चन्द्र जी जैन (बुलन्दशहर) द्वारा गुथित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातो भाग जिन-धर्म के रहस्य को अत्यन्त स्पष्ट करने वाले होने से चौथी वार प्रकाशित हो रहे है।

इस प्रकाशन कार्य मे हम लोग अपने मडल के विवेकी और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचानने वाले स्वर्गीय श्री रूप चन्द जी, माज़रा वालों को स्मरण करते हैं जिनकी शुभप्रेरणा से इन ग्रन्थो का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ था।

हम वडे भक्ति भाव से और विनय पूर्वक ऐसी भावना करते हैं कि सच्चे सुख के अर्थी जीव जिन वचनो को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करे। ऐसी भावना से इन पुस्तको का चौथा प्रकाशन आपके हाथ मे है।

इस छठे भाग मे सात प्रकरण हैं। इनके अध्ययन द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वस्वरूप को समझ कर, तत्त्व निर्णयरूप अभ्यास के द्वारा अपनी आत्मा मे मोक्षमार्ग का प्रकाश कर मोक्ष का पथिक वने इसके लिए यह छठा भाग पात्र जीवो के सन्मुख प्रस्तुत है।

विनीत
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
देहरादून

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

छठे भाग की विषय सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रकरण पहला	

प्रकरण दूसरा

प्रकरण तीसरा

प्रकरण चौथा

—०—

करते है तथा मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारो गतियो मे घूमते हुए निगोद चले जाते है।

प्रश्न ६—प्रथम किन-किन पाच बातो का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—(१) व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य का उसका पर्याय मे ही होता है, दो द्रव्यो मे व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कभी भी नही होता हैं। (२) अज्ञानी का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध शुभाशुभ विकारी-भावो के साथ कहो तो कहो, परन्तु पर द्रव्यो के साथ तथा द्रव्यकर्मों के साथ तो व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नही है। (३) ज्ञानी का शुद्ध भावो के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। (४) मै आत्मा व्यापक और शुद्धभाव मेरा व्याप्य है। ऐसे विकल्पो मे भी रहेगा तो धर्म की प्राप्ति नही होगी। (५) मै अनादिअनन्त ज्ञायक एकरूप भगवान हूँ और मेरी पर्याय मे मूर्खता के कारण एक-एक समय का बहिरात्मपना चला आ रहा है ऐसा जाने-माने तो तुरन्त बहिरात्मपने का अभाव होकर अन्तरात्मा बन जाता है। इन पाँच बातो का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है।

प्रश्न ७—आगम के प्रत्येक वाक्य का मर्म जानने के लिए क्या-क्या जानकर स्वाध्याय करें ?

उत्तर—चारो अनुयोगो के प्रत्येक वाक्य मे (१) शब्दार्थ, (२) नयार्थ, (३ मतार्थ, (४) आगमार्थ और (५) भावार्थ निकालकर स्वाध्याय करने से जैनधर्म के रहस्य का मर्मी बन जाता है।

प्रश्न ८—शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर—प्रकरण अनुसार वाक्य या शब्द का योग्य अर्थ समझना शब्दार्थ है।

प्रश्न ९—नयार्थ क्या है ?

उत्तर—किस नयका वाक्य है ? उसमे भेद-निमित्तादि का उपचार बताने वाले व्यवहारनय का कथन है या वस्तुस्वरूप बतलाने वाले

निश्चयनय का कथन है—उसका निर्णय करके अर्थ करना वह नयार्थ है।

प्रश्न १०—मतार्थ क्या है ?

उत्तर—वस्तुस्वरूप से विपरीत ऐसे किस मत का (सांख्य-बौद्धादिक) का खण्डन करता है। और स्याद्वाद मत का मण्डन करता है—इस प्रकार शास्त्र का कथन समझना वह मतार्थ है।

प्रश्न ११—आगमार्थ क्या है ?

उत्तर—सिद्धान्त अनुसार जो अर्थ प्रसिद्ध हो तदनुसार अर्थ करना वह आगमार्थ है।

प्रश्न १२—भावार्थ क्या है ?

उत्तर—शास्त्र कथन का तात्पर्य—साराश, हेय उपादेयरूप प्रयोजन क्या है ? उसे जो बतलाये वह भावार्थ है। जैसे—निरजन ज्ञानमयी निज परमात्म द्रव्य ही उपादेय है, इसके सिवाय निमित्त अथवा किसी भी प्रकार का राग उपादेय नही है। यह कथन का भावार्थ है।

प्रश्न १३—पदार्थों का स्वरूप सीदे-सादे शब्दो मे क्या है, जिनके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दु ख का अभाव हो जाता है ?

उत्तर—"जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य हैं। प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण मे एक ही समय मे एक पर्याय का व्यय, एक पर्याय का उत्पाद और गुण ध्रौव्य रहता है। ऐसा प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण मे हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।" इसके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दु ख का अभाव जिनागम मे बताया है।

प्रश्न १४—किसके समागम मे रहकर तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए और किसके समागम मे रहकर तत्त्व का अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—ज्ञानियो के समागम मे रहकर ही तत्त्व अभ्यास करना चाहिए और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास कभी भी नही करना चाहिए।

प्रश्न १५—मोक्ष मार्ग प्रकाशक मे 'ज्ञानियो के समागम मे तत्त्व अभ्यास करना और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास नहीं करना" ऐसा कही लिखा है ?

उत्तर—प्रथम अध्याय पृष्ठ १७ मे लिखा है कि "विशेष गुणो के धारी वक्ता का सयोग मिले तो वहुत भला है ही और न मिले तो श्रद्धानादिक गुणो के धारी वक्ताओ के मुख से ही शास्त्र सुनना। इस प्रकार के गुणो के धारक मुनि अथवा श्रावक सम्यग्दृष्टि उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धति बुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषो के मुख से शास्त्र सुनना उचित नही है।"

प्रश्न १६—पाहुड़ दोहा मे "किसका सहवास नहीं करना चाहिए" ऐसा कहा लिखा है ?

उत्तर—पाहुड दोहा बीस मे लिखा है कि "विष भला, विषधर सर्प भला, अग्नि या बनवास का सेवन भी भला, परन्तु जिनधर्म से विमुख ऐसे मिथ्यात्वियो का सहवास भला नही।"

प्रश्न १७—अपना भला चाहने वाले को कौन-कौन सी सात बातो का निर्णय करना चाहिये ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन से ही धर्म का प्रारम्भ होता है। (२) सम्यग्दर्शन प्राप्त किए बिना किसी भी जीव को सच्चे व्रत, सामायिक प्रतिक्रमण, तप, प्रत्याख्यानादि नही होते, क्योकि वह क्रिया प्रथम पाचवे गुणस्थान मे शुभभावरूप से होती है। (३) शुभभाव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो को होते हैं। किन्तु अज्ञानी उससे धर्म होगा, हित होगा ऐसा मानता है। ज्ञानी की दृष्टि मे हेय होने से वह उसमे कदापि हितरूप धर्म का होना नही मानता है। (४) ऐसा नही

समझना कि धर्मी को शुभभाव होता ही नही, किन्तु वह शुभभाव को धर्म अथवा उससे क्रमश धर्म होगा—ऐसा नही मानता, क्योकि अनन्त वीतराग देवो ने उसे बन्ध का कारण कहा है। (५) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर नही सकता, उसे परिणमित नही कर सकता, प्रेरणा नही कर सकता, लाभ-हानि नही कर सकता; उस पर प्रभाव नही डाल सकता, उसकी सहायता या उपकार नही कर सकता, उसे मार-जिला नही सकता, ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियो ने पुकार-पुकार कर कही है। (६) जिन-मत मे तो ऐसा परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व और फिर व्रतादि होते है। वह सम्यक्त्व स्व-परका श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि बनना चाहिए। (७) पहले गुणस्थान मे जिज्ञासु जीवो को शास्त्राभ्यास, अध्ययन-मनन, ज्ञानी पुरुषो का धर्मोपदेश-श्रवण, निरन्तर उनका समागम, देवदर्शन, पूजा, भक्तिदान आदि शुभभाव होते हैं। किन्तु पहले गुणस्थान मे सच्चे व्रत, तप आदि नही होते हैं।

प्रश्न १८—उभयाभासी के दोनो नयो का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह क्या करे? (दोनो नयो को किस प्रकार समझें?)

उत्तर—निश्चयनय से जो निरुपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरुपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न १९—व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कहीं भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है?

उत्तर—हा, दिया है। समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि "सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि मे अध्यवसाय है सो समस्त ही छोडना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही

छुडाया है तो फिर सन्तपुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यो नही करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रकट किया है।

प्रश्न २०—निश्चयनय को अगीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय मे भगवान कुन्द-कुन्द आचार्य ने मोक्षप्राभृत गाथा ३१ मे क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार की श्रद्धा छोडता है वह योगी अपने आत्म काय मे जागता है तथा जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य में सोता है। इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है। यही बात समाधितन्त्र गाथा ७८ मे भगवान पूज्यपाद आचार्य ने बताई है।

प्रश्न २१—व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय (१) स्वद्रव्य, परद्रव्य को (२) तथा उनके भावो को (३) तथा कारण-कार्यादि को, किसी को किसी मे मिला कर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए और निश्चयनय उन्ही का यथा-वत निरूपण करता है। तथा किसी को किसी मे नही मिलाता और ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न २२—आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिनमार्ग मे दोनों नयो का ग्रहण करना कहा है। उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना तथा कही

व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है। उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न २३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार दोनो नयो का ग्रहण करना चाहिये; क्या उन महानुभावो का कहना गलत है ?

उत्तर—हा, बिल्कुल गलत है, क्योकि उन्हें जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्त्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न २४—व्यवहारनय असत्यार्थ है। तो उसका उपदेश जिनमार्ग मे किसलिय दिया ? एक मात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था।

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार मे ससारी भाषा बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इस लिये व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते है। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, परन्तु वह अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २५—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है। इसके पहले प्रकार को समझाइए ?

उत्तर—निश्चय से आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको व्यवहारनय से शरीरादिक पर द्रव्यो की सापेक्षता द्वारा नर-नारक

पृथ्वीकायादिकरूप जीव के विशेष किये, तब मनुष्य जीव है, नारको जीव है। इत्यादि प्रकार सहित उन्हे जीव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के सयोग बिना) निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २६—प्रश्न २५ मे व्यवहारनय से शरीरादिक सहित जीव की पहचान कराई तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नही करना चाहिए? सो समझाइए।

उत्तर—व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा सो पर्याय ही को जीव नही मान लेना। वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोगरूप है। वहा निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न है—उस ही को जीव मानना। जीव के सयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नही. ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादि वाला जीव) अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २७—व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नही होता? इस दूसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तो वे कुछ समझ नही पाये। तब उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये। तब जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है। इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहचान हुई। इस प्रकार भेद बिना अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २८—प्रश्न २७ मे व्यवहारनय से ज्ञान-दर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान कराई। तब ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिये? सो समझाइये।

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान-दर्शनादि भेद किये सो उन्हे भेद

रूप ही नही मान लेना क्योकि भेद तो समझाने के अर्थ किये है। निश्चय से आत्मा अभेद ही है। उस ही को जीववस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से द्रव्यगुण भिन्न-भिन्न नही है, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरूप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २६—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता? इसके तीसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है। उसे जो नही पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे कुछ समझ नही पाये। तब उनको तत्त्व श्रद्धान ज्ञानपूर्वक, परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्यवहारनय से व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये तब उन्हे वीतरागभाव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना निश्चय मोक्ष मार्ग के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न ३०—प्रश्न २६ मे व्यवहारनय से मोक्ष मार्ग की पहचान कराई। तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नही करना चाहिये? सो समझाइए।

उत्तर—परद्रव्य का निमित्त मिलने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा। सो इन्ही को मोक्षमार्ग नही मान लेना, क्योकि (१) परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नही है। (२) इसलिए आत्मा अपने जो रागादिक भाव हैं, उन्हे छोडकर वीतरागी होता है। (३) इसलिए निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (४) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तिकपना) है, इसलिए, व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से बाह्यक्रिया

मोक्षमार्ग नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है, ऐसा जानना।

प्रश्न ३१—जो जीव व्यवहारनय के कथन को ही सच्चा मान लेता है उसे जिनवाणी मे किन-किन नामो से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय गाथा ६ मे कहा है कि "तस्य देशना नास्ति"। (२) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "अज्ञान-मोह अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है"। (३) प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि "वह पद-पद पर धोखा खाता है"। (४) आत्मावलोकन मे कहा है कि "यह उसका हरामजादोपना है"। इत्यादि सब शास्त्रो मे मूर्ख आदि नामों से सम्बोधन कि

प्रश्न ३२—परमागम के अमूल्य ११ सिद्धान्त क्या-क्या हैं, जो मोक्षार्थी को सदा स्मरण रखना चाहिए और वे जिनवाणी मे कहाँ-कहाँ बतलाये हैं ?

उत्तर—(१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नही करता है। [समयसार गाथा ३] (२) प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है। [समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक] (३) उत्पाद, उत्पाद से है व्यय या ध्रुव से नही है। [प्रवचनसार गाथा १०१] (४) प्रत्येक पर्याय अपने जन्मक्षण मे ही होती है। [प्रवचनसार गाथा १०२] (५) उत्पाद अपने षटकारक के परिणमन से ही होता है [पचास्तिकाय गाथा ६२] (६) पर्याय और ध्रुव के प्रदेश भिन्न-भिन्न है। समयसार गाथा १८१ से १८३ तक] (७) भाव शक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी पडती नही। [समयसार ३३वी शक्ति] ८) निज भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। [समयसार गाथा ११] (९) चारो अनुयोगो का तात्पर्य मात्र वीत-रागता है। [पचास्तिकाय गाथा १७२] . (१०) स्वद्रव्य मे भी द्रव्य गुण-पर्याय का भेद विचारना वह अन्यवशपणा है। [नियमसार

२४५] (११) ध्रुव का आलम्बन है वेदन नही है और पर्याय का वेदन है, परन्तु आलम्बन नही है।

प्रश्न ३३—पर्याय का सच्चा कारण कौन है और कौन नहीं है?

उत्तर—पर्याय का कारण उस समय पर्याय की योग्यता है। वास्तव में पर्याय की एक समय की सत्ता ही पर्याय का सच्चा कारण है। [अ] पर्याय का कारण पर तो हो ही नही सकता है, क्योकि परका तो द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक हैं। [आ] पर्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य भी नही हो सकता है क्योकि पर्याय एक समय की है यदि त्रिकाली कारण हो तो पर्याय भी त्रिकाल होनी चाहिए सो है नही। [इ] पर्याय का कारण अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय भी नही हो सकती है क्योकि अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नही हो सकती है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि पर्याय का सच्चा कारण उस समय पर्याय की योग्यता ही है।

प्रश्न ३४—मुझ निज आत्मा का स्वद्रव्य-परद्रव्य क्या-क्या है, जिसके जानने-मानने से चारो गतियो का अभाव हो जावे?

उत्तर—(१) स्वद्रव्य अर्थात निर्विकल्प मात्र वस्तु, परद्रव्य अर्थात सविकल्प भेद कल्पना, (२) स्वक्षेत्र अर्थात आधार मात्र वस्तु का प्रदेश, पर क्षेत्र अर्थात प्रदेशो मे भेद पडना (३) स्वकाल अर्थात वस्तुमात्र की मूल अवस्था, परकाल अर्थात एक समय की पर्याय, (४) स्वभाव अर्थात वस्तु के मूल की सहज शक्ति, परभाव अर्थात गुणभेद करना। [समयसार कलश २५२]

प्रश्न ३५—किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी बन सकता है और किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं बन सकता?

उत्तर—देखो! तत्त्व विचार की महिमा! तत्त्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तत्पश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार न-

तत्त्व विचार वाला इनके विना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६०]

प्रश्न ३६—जीव का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर—जीव का कर्तव्य तो तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है इसी से दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है उसमे (दर्शनमोह के उपशम मे) जीव का कर्त्तव्य कुछ नही है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१४]

प्रश्न ३७—जिनधर्म की परिपाटी क्या है ?

उत्तर—जिनमत मे तो ऐसी परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व होता है फिर व्रतादि होते है। सम्यक्त्व तो स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है, तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्य-गुण पर्याय का अभ्यास करके सम्यग्दृष्टि बनना प्रत्येक भव्य जीव का परम कर्तव्य है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २९३]

प्रश्न ३८—किन-किन ग्रन्थो का अभ्यास करे तो एक भूतार्थ स्वभाव का आश्रय बन सके ?

उत्तर—मोक्षमार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भागो का सूक्ष्मरीति से अभ्यास करे तो भूतार्थ स्वभाव का आश्रय लेना बने।

प्रश्न ३९—मोक्ष मार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला मे क्या-क्या विषय बताया है ?

उत्तर—छह द्रव्य, सात तत्त्व, छह सामान्य गुण, चार अभाव, छह कारक, द्रव्य-गुण पर्याय की स्वतन्त्रता, उपादान-उपादेय, निमित्त नैमित्तिक, योग्यता, निमित्त, समयसार सौवी गाथा के चार बोल, औपशमकादि पाच भाव, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप तथा प्रगट करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप तथा एक निज भूतार्थ के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति हो सकती है, आदि विषयो का सूक्ष्म

रीति से वर्णन किया है ताकि जीव निज स्वभाव का आश्रय लेकर मोक्ष का पथिक बने।

प्रश्न ४०—क्या जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग आपने बनाये हैं ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग तो आहार वर्गणा का कार्य है। व्यवहारनय से निरूपण किया जाता है कि मैंने बनाये है। अरे भाई। चारो अनुयोगो के ग्रन्थो मे से परमागम का मूल निकालकर थोड़े मे सग्रह कर दिया है। ताकि पात्र भव्य जीव सुगमता से धर्म की प्राप्ति के योग्य हो सके। इन सात भागो का एक मात्र उद्देश्य मिथ्यात्वादि का अभाव करके सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रमश. मोक्ष का पथिक बनना ही है।

भवदीय

कैलाश चन्द्र जैन

बन्ध और मोक्ष के कारण

परद्रव्य का चिन्तन ही बन्ध का कारण है और केवल विशुद्ध स्वद्रव्य का चिन्तन ही मोक्ष का कारण है।

[तत्वज्ञानतरंगिणी १५-१६]

सम्यक्त्वी सर्वत्र सुखी

सम्यग्दर्शन सहित जीव का नरकवास भी श्रेष्ठ है, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित जीव का स्वर्ग मे रहना भी शोभा नही देता; क्योंकि आत्मज्ञान बिना स्वर्ग मे भी वह दुःखी है। जहाँ आत्मज्ञान है वहीं सच्चा सुख है।

[सारसमुच्चय-३९]

जिनेन्द्र कथित विश्व व्यवस्था

"जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और काल लोक प्रमाण असंख्यात हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण में एक ही समय में एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय और गुण ध्रौव्य रहता है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य के गुण में हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।"

[जैनदर्शन का सार]

स्व—(१) अमूर्तिक प्रदेशो का पुंज (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी (३) अनादिनिधन (४) वस्तु आप है।

पर—(१) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिण्ड (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित (३) नवीन जिसका संयोग हुआ है (४) ऐसे शरीरादि पुद्गल पर हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक]

सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होकर सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति का उपाय

अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं। कोई किसी के आधीन नहीं हैं। कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। पर को परिणमित कराने का भाव मिथ्यादर्शन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक]

अपने-अपने सत्त्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवै जीव तब, परतै ममत न थाय॥

सत् द्रव्य लक्षणम्। उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।

[मोक्षशास्त्र]

"Permanancy with a Change"

[बदलने के साथ स्थायित्व]

NO SUBSTANCE IS EVER DESTROYED
IT CHANGES ITS FORM ONLY

[कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, प्रत्येक वस्तु अपनी अवस्था बदलती है।]

आचार्यकल्प पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी कृत

गोम्मटसार—पीठिका मुमुक्षुओं के अति आवश्यक होने से प्रश्नोत्तरों के रूप में

मैं मदबुद्धि (इस ग्रन्थका) अर्थ प्रकाशनेरूप इसकी टीका करने का विचार कर रहा हू।

यह विचार तो ऐसा हुआ जैसे कोई अपने मुखसे जिनेन्द्रदेवका सर्वगुण वर्णन करना चाहे तो वह कैसे करे ?

प्रश्न १—नहीं बनता, तो उद्यम क्यो कर रहे हो ?

उत्तर—जैसे जिनेन्द्रदेव के सर्वगुण का वर्णन करने की सामर्थ्य नही है फिर भी भक्तपुरुष भक्ति के वश अपनी बुद्धि के अनुसार गुण-वर्णन करता है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ के सम्पूर्ण अर्थ का प्रकाशन करने की सामर्थ्य न होने पर भी अनुराग के-वश मैं अपनी बुद्धि-अनुसार अर्थ का प्रकाशन करूँगा।

प्रश्न २—यदि अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रन्थाभ्यास करो, किन्तु मदबुद्धि वालों को टीका करने का अधिकारी होना उचित नहीं है ?

उत्तर—जैसे किसी पाठशाला मे बहुत बालक पढते हैं उनमे कोई बालक विशेष ज्ञान रहित है फिर भी अन्य बालको से अधिक पढा है तो वह अपने से अल्प पढ़ने वाले बालको को अपने समान ज्ञान होने के लिये कुछ लिख देने आदि के कार्य का अधिकारी होता है। उसी प्रकार मुझे विशेष ज्ञान नही है, फिर भी काल दोष से मुझसे भी मद-बुद्धि वाले हैं और होगे ही। उन्ही के लिये मुझ समान इस ग्रन्थ का ज्ञान होने के लिये टीका करने का अधिकारी हुआ हूँ।

प्रश्न ३—यह कार्य करना है ऐसा तो आपने विचार किया। किन्तु छोटा मनुष्य बड़ा कार्य करने का विचार करे तो वहाँ पर उस

कार्य में गलती होती ही है, और वहाँ वह हास्य का स्थान बन जाता है। उसी प्रकार आप भी मंदबुद्धि वाले हैं अतः इस ग्रन्थ की टीका करने का विचार कर रहे हो तो गलती होगी ही और वहाँ पर हास्य का स्थान बन जाओगे।

उत्तर—यह बात तो सत्य है कि मै मदबुद्धि होने पर भी ऐसे महान ग्रन्थ की टीका करने का विचार करता हूँ वहाँ भूल तो हो सकती है किन्तु सज्जन हास्य नही करेंगे। जैसे दूसरो से अधिक पढा हुआ बालक कही भूल करे तब बडे जन ऐसा विचार करते है कि 'बालक है भूल करे ही करे, किन्तु अन्य बालको से भला है, इस प्रकार विचार कर हास्य नही करेंगे, उसी प्रकार मैं यहाँ कही भूल जाऊँ वहाँ सज्जन पुरुष ऐसे विचार करेंगे कि वह मदबुद्धि था सो भूले ही भूले किन्तु कितने ही अतिमद बुद्धि वालो से तो भला है, ऐमे विचार कर हास्य नही करेंगे।

प्रश्न ४—सज्जन तो हास्य नहीं करेंगे, किन्तु दुर्जन तो करेंगे ही ?

उत्तर—दुष्ट तो ऐसे ही हैं जिनके हृदय मे दूसरो के निर्दोष-भले गुण भी विपरीतरूप ही भासते है किन्तु उनके भय से, जिसमे अपना हित हो-ऐसे कार्य को कौन न करेगा ?

प्रश्न ५—पूर्व ग्रन्थ तो थे ही उन्हीं का अभ्यास करने-करवाने से ही हित होता है, मदबुद्धि ग्रन्थ की टीका करने की महतता क्यों प्रगट करते हो ?

उत्तर—ग्रन्थ का अभ्यास करने से-ग्रन्थ के टीका की रचना करने मे उपयोग विशेष लग जाता है, अर्थ भी विशेष प्रतिभास मे आता है अन्य जीवो को ग्रन्थाभ्यास कराने का सयोग होना दुर्लभ और सयोग होने पर भी किसी जीव को अभ्यास होता है। और ग्रन्थ की टीका बनने से तो परम्परागत अनेक जीवो को अर्थ का ज्ञान होगा। इसलिये स्व-पर अन्य जीवो का विशेष हित होने के लिये टीका करने मे आती है, महतता का तो कुछ प्रयोजन ही नही है।

प्रश्न ६—यह सत्य है कि-इस कार्य मे विशेष हित होता है, किन्तु बुद्धि की मंदता से कहीं भूल से अन्यथा अर्थ लिखा जाय तो वहाँ महापाप की उत्पत्ति होने से अहित भी होगा ?

उत्तर—यथार्थ सर्व पदार्थों के ज्ञाता तो केवली भगवान् हैं, दूसरों को ज्ञानावरण का क्षयोपशमके अनुसार ज्ञान है उसको कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभास मे आ जाय किन्तु जिनदेवका ऐसा उपदेश है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रो के वचन की प्रतीति से वा हठ से, वा क्रोध-मान माया लोभ से वा, हास्य, भयादिकसे यदि अन्यथा श्रद्धा करे वा उपदेश दे तो-वह महापापी है और विशेषज्ञानवान गुरुके निमित्त विना वा अपने विशेप क्षयोपशम विना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासित हो और वह ऐसा जाने कि जिनदेव का उपदेश ऐसे ही है ऐसा जान-कर कोई सूक्ष्म अर्थ की अन्यथा श्रद्धा करे वा उपदेश दे तो उसका महत् पाप नही होता, वही इस ग्रन्थ मे भी आचार्य ने कहा है—

"सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठ पवयणं तु सद्दहदि
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।२७।। जीवकांड ।

प्रश्न ७—आपने अपने विशेष ज्ञान से ग्रन्थ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करके टीका करने का प्रारम्भ क्यो न किया ?

उत्तर—कालदोप से केवली—श्रुत केवली का तो यहाँ अभाव ही हुआ, विशेष ज्ञानी भी विरल मिले। जो कोई है वह तो दूर क्षेत्र मे है, उनका सयोग दुर्लभ है और आयु, वुद्धि, वल, पराक्रम आदि तुच्छ रह गये है। इसलिये जितना हो सका वह अर्थ का निर्णय किया, अवशेष जैसे है तैसे प्रमाण हैं।

प्रश्न ८—तुमने कहा वह सत्य है, किन्तु इस ग्रन्थ मे जो भूल होगी उनके शुद्ध होने का कुछ उपाय भी है ?

उत्तर—ज्ञानवान् पुरुषो का प्रत्यक्ष सयोग नही है इससे उनको परोक्ष ही ऐसी विनती करता हू कि—मैं मन्दवुद्धि हू, विशेष ज्ञान रहित हूँ, अविवेकी हूँ, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रन्थो का

विशेष अभ्यास मुझे नही है, इसलिये मैं शक्ति हीन हूँ, फिर भी धर्मा-नुराग के वश टीका करने का विचार किया है, उसमे जहाँ जहाँ भूल हो, अन्यथा अर्थ हो जाय वहाँ वहाँ मेरे ऊपर क्षमा करके उस अन्यथा अर्थ को दूर करके यथार्थ अर्थ लिखना, इस प्रकार विनति करके जो भूल होगी उसे शुद्ध होने का उपाय किया है।

प्रश्न ९—आपने टीका करने का विचार किया वह तो अच्छा किया है किन्तु ऐसे महान् ग्रन्थ की टीका सस्कृत ही चाहिये, भाषा मे तो उसकी गंभीरता भासित नही होगी ?

उत्तर—इस ग्रन्थ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नामक सस्कृत टीका तो पूर्व है ही। किन्तु वहाँ सस्कृत गणित आम्नाय आदि के ज्ञान रहित जो मन्दबुद्धि है उसका प्रवेश नही होता। यहाँ काल दोष से बुद्धि आदि के तुच्छ होने से सस्कृतादि के ज्ञान रहित ऐसे जीव बहुत हैं उन्ही को इस ग्रन्थ के अर्थ का ज्ञान होने के लिये भाषा टीका करता हूँ। जो जीव सस्कृतादि विशेष ज्ञानवान हैं वह मूल ग्रन्थ वा टीका से अर्थ धारण करे। जो जीव सस्कृतादि विशेष ज्ञान रहित हैं वे इस भाषा टीका से अर्थ ग्रहण करे। और जो जीव सस्कृतादि ज्ञान सहित है परन्तु गणित आम्नायादिक के ज्ञान के अभाव से मूल ग्रन्थ का वा सस्कृत टीका मे प्रवेश नही पा सकते हैं वे इस भाषा टीका से अर्थ को धारण करके मूल ग्रन्थ वा सस्कृत टीका मे प्रवेश करे। और जो भाषा टीका से मूल ग्रन्थ वा सस्कृत टीका मे अधिक अर्थ हो सके उसको जानने का अन्य उपाय बने उसे करे।

प्रश्न १०— संस्कृत ज्ञानवालो को भाषा अभ्यास में अधिकार नहीं हैं ?

उत्तर—सस्कृत ज्ञानवालो को भाषा बाचने से तो दोष आते नही हैं, अपना प्रयोजन जैसे सिद्ध हो वैसे ही करना। पूर्व मे अर्द्धमागधी आदि भाषामय महाग्रन्थ थे जब बुद्धि की मन्दता जीवो के हुई तब सस्कृतादि भाषामय ग्र थ बने। अब विशेष बुद्धि की मदता जीवो को हुई उससे देशभाषामय ग्र थ करने का विचार हुआ। सस्कृतादि अर्थ

भी अब भाषा द्वारा जीवो को समझाते है। यहाँ भाषा द्वारा ही अर्थ लिखने मे आया हो कुछ दोप नही है। इस प्रकार विचार कर श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पच सग्रह ग्रन्थ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नामक टीका के अनुहार 'सम्यग्ज्ञान चद्रिका' नामक यह देशभाषामयी टीका करने का निश्चय किया है। श्री अरहन्त देव वा जिनवाणी वा निर्ग्रन्थ गुरुओ के प्रसाद से वा मूलग्रन्थकर्ता श्री नेमिचद आदि आचार्य के प्रसाद से यह कार्य सिद्ध हो।

अब इस शास्त्र के अभ्यास मे जीवो को सन्मुख किया जाता है। हे भव्य जीव, तुम अपने हित की वाँच्छा करते हो तो तुमको जिसप्रकार हित बने वैसे ही इस शास्त्र का अभ्यास करना। कारण कि आत्मा का हित मोक्ष है, मोक्ष के विना अन्य जो है वह पर सयोग जनित है, विनाशीक है, दु खमय है, और मोक्ष है वही निज स्वभाव है अविनाशी है, अनन्त सुखमय है। इसलिये मोक्षपद की प्राप्ति का उपाय तुमको करना चाहिये। मोक्ष का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है। इनकी प्राप्ति जीवादिक के स्वरूप जानने से ही होती है। उसे कहता हूँ।

जीवादि तत्वो का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है उसे विना जाने श्रद्धान का होना आकाश के फूल समान है। प्रथम जाने तब फिर वैसे ही प्रतीति करने स श्रद्धान को प्राप्त होता है। इसलिये जीवादिकका जानना, श्रद्धान होने से पूर्व ही होता है, वही उनके-श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन का कारणरूप जानना। श्रद्धान होने पर जो जीवादिक का जानना होता है उसी का नाम सम्यग्ज्ञान है। तथा श्रद्धानपूर्वक जीवादि को जानते ही स्वयमेव उदासीन होकर हेयका त्याग, उपादेय का ग्रहण करता है तव सम्यक्चारित्र होता है। अज्ञानपूर्वक क्रियाकाड से सम्यक्चारित्र नही होता। इस प्रकार जीवादिक को जानने से ही सम्यग्दर्शनादि मोक्ष के उपायो की प्राप्ति निश्चय करनी ही चाहिये। इस शास्त्र के अभ्यास से जीविकादि का जानना यथार्थ होता है। जो ससार है वही जीव और कर्म का सम्बन्ध रूप है। तथा

विशेष जानने से इनके सम्बन्ध का अभाव होता है वही मोक्ष है। इस-लिये इस शास्त्र मे जीव और कर्म का ही विशेष निरूपण है। अथवा जीविकादिक का, षट्द्रव्य, सात तत्त्वादिक का भी उसमे यथार्थ निरू-पण है अत. इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना।

प्रश्न ११—अब यहाँ अनेक जीव इस शास्त्र के अभ्यास में अरुचि होने का कारण विपरीत विचार प्रगट करते हैं। अनेक जीव प्रथमा-नुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोग केवल पक्ष करके इस करणा-नुयोगरूप शास्त्र मे अभ्यास का निषेध करते हैं। उनमें मे प्रथमानुयोग का पक्षपाती कहता है कि—वर्तमान में जीवों की बुद्धि मद बहुत है उन्हीं को ऐसे सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्र में कुछ भी समझ होती नहीं। इससे तीर्थंकरादिक की कथा का उपदेश दिया जाय तो ठीक समझ लेगा और समझकर पाप से डरे, धर्मानुरागरूप होगा इसलिये प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है—उन्हे उत्तर दिया जाता है—

उत्तर—अब भी सब जीव तो एक से नही हुए हैं' हीनाधिक बुद्धि दिख रही है अत' जैसे जीव हो वैसे उपदेश देना। अथवा मद-बुद्धि जीव भी सिखाने से अभ्यास मे बुद्धिमान होता दिख रहा है। इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्ही को तो वह ग्रन्थ कार्यकारी ही है, और जो मन्दबुद्धि हैं वे विशेष बुद्धि द्वारा सामान्य विशेषरूप गुणस्थाना-दिक का स्वरूप सीखकर इस शास्त्र के अभ्यास मे प्रवर्ति करें।

प्रश्न १२—यहाँ मन्दबुद्धि कहता है कि इस गोम्मटसार शास्त्र में तो गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन से बहुत कठिनता है, ऐसा सुनते आये हैं। हम उसमे किस प्रकार प्रवेश कर सकते हैं ?

उत्तर—समाधान—भय न करो। इस भाषा टीका में गणित आदि का अर्थ सुगमरूप बनाकर कहा है, अतः प्रवेश पाना कठिन नही रहा है। इस शास्त्र मे कही तो सामान्य कथन है कही विशेष है; कही सुगम है, कही कठिन है वहाँ जो सर्व अभ्यास बन सके तो अच्छा ही है और यदि न हो सके तो अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा हो सके वैसा

ही अभ्यास करो, अपने उपाय मे आलस करना नही। तूने कहा जो प्रथमानुयोग सम्बधी कथादिक सुनने मे पाप से डर कर धर्मानुरागरूप होता है वह तो वहाँ दोनो कार्य शिथिलता लिये होते हैं। यहाँ पुण्य-पाप के कारण कार्यादिक विशेष जानने से वे दोनो कार्य दृढता लिये होते है। अत उनका अभ्यास करना। इस प्रकार प्रथमानुयोग के पक्षपाती का इस शास्त्र के अभ्यास मे सम्मुख किया।

प्रश्न १३ —अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहता है कि—इस शास्त्र मे कथित जीव-कर्म का स्वरूप है वह जैसे है वैसे ही है उनको जानने से क्या सिद्धि होती है ? यदि हिंसादिक का त्याग करके उपवासादि तप किया जाय वा व्रत का पालन किया जाय वा अरिहन्तादिक की पूजा, नाम, स्मरण आदि भक्ति की जाय वा दान दीजिये वा विषय-कषायादिक से उदासीन बने इत्यादिक जो शुभ कार्य किया जाय तो आत्महित हो, इसलिये इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना।

उत्तर—उसको कहते हैं कि हे स्थूल बुद्धि ! तूने व्रतादिक शुभ कार्य कहे वह करने योग्य ही हैं किन्तु वे सर्व सम्यक्त्व विना ऐसे है जैसे अक विना बिंदी। और जीवादिक का स्वरूप जाने विना सम्यक्त्व का होना ऐसा, जैसे बाझा का पुत्र, अत जीवादिक जानने के अर्थ इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना।

तूने जिस प्रकार व्रतादिक शुभकार्य कहा, और उससे पुण्य वन्ध होता है। उसी प्रकार जीवादिक जानने रूप ज्ञानाभ्यासा है वह प्रधान शुभ कार्य है। इससे अतिशय पुण्य का वन्ध होता है और उन व्रतादिक मे भी ज्ञानाभ्यास की ही मुख्यता है उसे ही कहते हैं। जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवो के विशेष जानकर पश्चात् ज्ञान से हिंसादिक का त्यागी वनकर व्रत को धारण करे वही व्रती है। जीवादिकके विशेष को जाने विना कथंचित् हिंसादिक के त्याग से आपको व्रती माने तो वह व्रती नही है। इसलिये व्रत पालन मे भी ज्ञानाभ्यास ही

प्रधान है। तप के दो प्रकार है—(१) बहिरग, (२) अन्तरग। जिसके द्वारा शरीर का दमन हो वह बहिरग तप है। और जिससे मन का दमन होवे, वह अन्तरग तप है। इनमे बहिरग तप से अतरग तप उत्कृष्ट है। उपवासादिक बहिरग तप है, ज्ञानाभ्यास अन्तरग तप है। सिद्धान्त मे भी ६ प्रकार के अन्तरग तपो मे चौथा स्वाध्याय नाम का तप कहा है, उससे उत्कृष्ट व्युत्सर्ग और ध्यान ही हैं, इसलिये तप करने मे भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिक का स्वरूप जानने से ही अरिहत आदि का स्वरूप भले प्रकार पहिचाने जाते है। अपनी अवस्था पहचानी जाती है, ऐसी पहचान होने पर जो अतरग मे तीव्र भक्ति प्रकट होती है वही बहुत कार्यकारी है। जो कुलक्रमादिक से भक्ति होती है वह किंचितमात्र ही फल देती है इसलिये भक्ति मे भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

दान चार प्रकार का होता है, उनमे आहारदान, औपधदान अभयदान तो तत्काल क्षुधा के दु खको या रोगके या मरणादिक दु ख को दूर करते हैं। और ज्ञानदान वह अनन्तभवसन्तान से चले आ रहे दु ख को दूर करने मे कारण है। तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकके भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है। इससे ज्ञानदान उत्कृष्ट है, इसलिये अपने ज्ञानाभ्यास हो तो अपना भला कर लेता है और अन्य जीवो को भी ज्ञानदान देता है।

ज्ञानाभ्यास के विना ज्ञानदान कैसे हो सकता है ? इसलिये दोनो मे भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। जैसे जन्म से ही कोई पुरुष ठगोके घर जाय वहा वह ठगो को अपना मानता है, कदाचित् कोई पुरुष किसी निमित्त से अपने कुल का और ठगो का यथार्थ ज्ञान करने से ठगो से अन्तरग मे उदासीन हो जाता है। उनको पर जानकर सम्बध छुडाना चाहता है। बाहर मे जैसा निमित्त है वैसी प्रवृत्ति करता है। और कोई पुरुष उन ठगो को अपना ही जानता है, किसी कारण से कोई ठगो से अनुराग करता है और कोई ठगो से लडकर उदासीन

होता है, आहारादिकका त्याग कर देता है। वैसे अनादि से सब जीव ससार मे हैं, वह कर्मों को अपना मानता है। उनमे कोई जीव किसी निमित्त से जीव और कर्म का यथार्थ ज्ञान करके कर्मों से उदासीन होकर उनको पर जानता है, उनसे सम्बन्ध छुडाना चाहता है। बाहर मे जैसा निमित्त है वैसी प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार ज्ञानाभ्यास के द्वारा उदासीन होता है वही कार्यकारी है। कोई जीव उन कर्मों को अपना जानता है और किसी कारण से कोई कर्मो से अनुरागरूप प्रवृत्ति करता है, कोई अशुभ कर्म को दु ख का कारण जानकर उदासीन होकर विषयादिक का त्यागी होता है, इस प्रकार ज्ञान के विना जो उदासीनता होती है वह पुण्यफल की दाता है, मोक्षकार्य का साधन नही है। अत. उदासीनता में भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। उसी प्रकार अन्य भी शुभ कार्यों मे ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना। देखो, महामुनि के भी ध्यान अध्ययन दो ही कार्य मुख्य हैं। इसलिये शास्त्र अध्ययन द्वारा जीव-कर्म का स्वरूप जानकर स्वरूप ध्यान करना।

प्रश्न १४—यहाँ कोई तर्क करे कि—कोई जीव शास्त्र अध्ययन तो बहुत करता है और विषयादिक का त्यागी नहीं होता तो उसको शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है या नहीं ? यदि है ! तो महन्त पुरुष क्यों विषयादिक तजें ? और नहीं तजें ! तो ज्ञानाभ्यास की महिमा कहाँ रही ?

उत्तर—उसका समाधान—शास्त्राभ्यासी को दो प्रकार हैं। (१) लोभार्थी (२) आत्मार्थी १—वहाँ अन्तरग अनुराग के विना ख्याति लाभ पूजादिक के प्रयोजन से शस्त्राभ्यास करे वह लोभार्थी है; वह विषयादिक का त्याग नही करता। अथवा ख्याति पूजा लाभादिक के अर्थ विषयादिक का त्याग भी करे फिर भी उसका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नही है।

२—जो जीव अन्तरग अनुराग से आतमहित के अर्थ शास्त्राभ्यास करता है वह धर्मार्थी है। प्रथम तो जैनशास्त्र हो ऐसे हैं कि जो

उनका धर्मार्थी होकर अभ्यास करता है वह विषयादिक का त्याग करता ही है। उसका तो ज्ञानाभ्यास कार्यकारी ही है।

२ जो जीव अन्तरग अनुराग से आत्महित के अर्थ शास्त्राभ्यास करता है वह धर्मार्थी है। प्रथम तो जैनशास्त्र ही ऐसे हैं कि जो उनका धर्मार्थी होकर अभ्यास करता है वह विषयादिक का त्याग करता ही है। उसका तो ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही।

कदाचित् पूर्व कर्मोदय की प्रबलता से (अर्थात् कषाय शक्ति की प्रबलता होने से) न्याय रूप विषयादिक का त्याग न हो तो भी उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने से ज्ञानाभ्यास कार्यकारी होता है। जिस प्रकार असयत गुण स्थान मे विषयादिक के त्याग बिना भी मोक्ष-मार्गपना सभव है।

प्रश्न १५—जो धर्मार्थी हुआ है, जैन शास्त्र का अभ्यास करता है, उसके विषयादिक का त्याग न हो सके ऐसा तो नहीं बनता। विषयादिक का सेवन परिणामो से होता है, परिणाम स्वाधीन है।

उत्तर—समाधान :—परिणाम ही दो प्रकार है (१) बुद्धिपूर्वक (२) अबुद्धिपूर्वक। अपने अभिप्राय के अनुसार हो वह बुद्धिपूर्वक और दैव (कर्म) निमित्त से अपने अभिप्राय से अन्यथा (विरुद्ध) हो वह अबुद्धिपूर्वक। जैसे सामायिक करने मे धर्मात्मा का अभिप्राय तो ऐसा है कि मै मेरे परिणाम शुभ रूप रखूं, वहाँ जो शुभ परिणाम ही हो वह तो बुद्धिपूर्वक, और कर्मोदय से (कर्मो के उदय मे युक्त होने से) स्वयमेव अशुभ परिणाम होता है वह अबुद्धिपूर्वक जानना। (यह दृष्टान्त है) उसी प्रकार धर्मार्थी होकर जो जैन शास्त्र का अभ्यास करता है उसका अभिप्राय तो विषयादिक के त्याग रूप वीतराग भाव की प्राप्ति का ही होता है, वहाँ पर वीतराग भाव हुआ वह बुद्धिपूर्वक है और चारित्र मोह के उदय से (उदय के वश होने पर) सरागभाव (आंशिक च्युति, पराश्रय रूप परिणाम) होता है वह अबुद्धिपूवक है अत स्ववश बिना (परवश) जो सरागभाव होता है उसके द्वारा उसको विषयादिक की प्रवृत्ति दिख रही है

इसलिए बाह्य प्रवृत्ति का कारण परिणाम है।

प्रश्न १६—यदि इस प्रकार है तो हम भी विषयादिक का सेवन करेंगे और कहेगे - हमारे उदयाधीन कार्य होते हैं।

उत्तर—रे मूर्ख ! कुछ कहने से होता नही। सिद्धि तो अभिप्राय के अनुसार है इसलिए जैन शास्त्र के अभ्यास द्वारा अपने अभिप्राय को सम्यक् रूप करना। और अन्तरग मे विषयादिक सेवन का अभिप्राय हो तो धर्मार्थी नाम कैसे प्राप्त होगा ? अत धर्मार्थीपन बनता ही नही। इस प्रकार चरणानुयोग के पक्षपाती को इस शास्त्र के अभ्यास मे सन्मुख किया।

प्रश्न १७—अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहता है कि इस शास्त्र में जीव के गुणस्थानादि रूप विशेष और कर्म के विशेष (भेद) का वर्णन किया है, किन्तु उनको जानने से तो अनेक विकल्प-तरग उत्पन्न होते हैं और कुछ सिद्धि नहीं है। इसलिये अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना वा स्व-परका भेदविज्ञान करना, इतना ही कार्यकारी है, अथवा इनके उपदेशक जो अध्यात्मशास्त्र उन्हीं का अभ्यास करना योग्य है।

उत्तर—अब उसी को कहते हैं—

हे सूक्ष्माभास ! तूने कहा वह सत्य है, किन्तु अपनी अवस्था देखना। जो स्वरूपानुभव मे वा भेदविज्ञान मे उपयोग निरन्तर रहता है तो अन्य विकल्प क्यो करने ? वहाँ ही स्वरूपानन्द सुधारस का स्वादी होकर सतुष्ट होना। किन्तु निचली अवस्था में वहा निरन्तर उपयोग रहता ही नही, उपयोग अनेक अवलम्बो को चाहता है। अत: जिस काल वहा उपयोग न लगे तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना। तूने कहा जो अध्यात्मशास्त्र का ही अभ्यास करना युक्त है, किन्तु वहाँ भेदविज्ञान करने के लिये स्व-पर का सामान्यपने स्वरूपनिरूपण है, और विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पष्ट नही होता। इसलिए जीव और कर्म का विशेष अच्छी तरह जानने से ही स्व-पर का जानना स्पष्ट होता है। उस विशेष जानने के लिये

इस शास्त्र का अभ्यास करना। कारण-सामान्यशास्त्र से विशेषशास्त्र बलवान है। वही कहा है—"सामान्य शास्त्र तो नून विशेषो बलवान भवेत्।"

प्रश्न १८—यहाँ कहते हैं कि अध्यात्मशास्त्रों में तो गुणस्थानादि विशेषों (-भेदो) से रहित शुद्धस्वरूप का अनुभव करना उपादेय कहा है और यह गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है। इसलिये अध्यात्मशास्त्र और इस शास्त्र में तो विरुद्धता भासित होती है वह कैसे है?

उत्तर—उसे कहते हैं :—

नय दो प्रकार के हैं —१ निश्चय, २ व्यवहार।

निश्चय नय से जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद-वस्तु मात्र ही है। और व्यवहारनय से गुणस्थानादि विशेष सहित अनेक प्रकार है। वहाँ जो जीव सर्वोत्कृष्ट अभेद एक स्वभाव का अनुभव करता है उसको तो वहाँ शुद्धउपदेशरूप जो शुद्धनिश्चय वही कार्यकारी है। और जो स्वानुभावदशा को प्राप्त नही हुआ है वा स्वानुभवदशा से छूटकर सविकल्पदशा को प्राप्त है ऐसा अनुत्कृष्ट जो अशुद्धस्वभाव, उसमे स्थित जीवको व्यवहारनय (उसकाल मे जाना हुआ-जानने के अर्थ मे) प्रयोजनवान है। वही आत्मख्याति अध्यात्म-शास्त्र मे गाथा १२ मे कहा है—

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥

इस सूत्र के व्याख्यान के अर्थ को विचारकर देखना। सुनो! तुम्हारे परिणाम स्वरूपानुभव दशा मे तो वर्तते नही। और विकल्प जानकर गुणस्थानादि भेदो का विचार नही करोगे तो तुम इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होकर अशुभपयोग मे ही प्रवर्त्तन करोगे वहाँ तेरा बुरा होगा। सुन! सामान्यपने से तो वेदान्त आदि शास्त्राभासो मे भी जीवका स्वरूप शुद्ध कहते है वहाँ विशेप को जाने बिना यथार्थ-अयथार्थ का निश्चय कैसे हो?

इसलिये गुणस्थानादि विशेष जानने से शुद्ध-अशुद्ध मिश्र अवस्था-का ज्ञान होता है, तब निर्णय करके यथार्थ को अगीकार करो, सुन ! जीवका गुण ज्ञान है सो विशेष जानने से आत्मगुण प्रगट होता है, अपना श्रद्धान भी दृढ होता है, जैसे सम्यक्त्व है वह केवलज्ञान प्राप्त होते परमावगाढ नाम को प्राप्त होता है इसलिये विशेष जाना।

प्रश्न १९—आपने कहा वह सत्य, किन्तु कारणानुयोग द्वारा विशेष जानने से भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान बिना संसारी ही रहते हैं, और अध्यात्म का अनुसरण करने वाले तिर्यंचादिक को अल्प श्रद्धान से भी सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, वा 'तुषमाष भिन्न' इतना ही श्रद्धान करने से शिवभूति नामक मुनि मुक्त हुए। अतः हमारी बुद्धि से तो विशेष विकल्पो का साधन नहीं होता। प्रयोजनमात्र अध्यात्मका करेंगे। अब उसको कहते है—

उत्तर—जो द्रव्यलिंगी जिस प्रकार कारणानुयोग द्वारा विशेष को जानता है उसी प्रकार अध्यात्मशास्त्रो का ज्ञान भी उसको होता है, किन्तु मिथ्यात्व के उदय से (मिथ्यात्व वश) अयथार्थ साधन करता है तो शास्त्र क्या करे ? जैन शास्त्रो मे तो परस्पर विरोध है नही, कैसे ? वह कहते है—करणानुयोग के शास्त्र मे भी तथा अध्यात्म-शास्त्रो मे भी रागादिक भाव आत्म, के कर्म-निमित्त से उत्पन्न कहे हैं, द्रव्यलिंगी उनका स्वय कर्ता होकर प्रवर्तता है, और शरीर आश्रित सर्व शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कही है, किन्तु द्रव्यलिंगी उसे अपनी जानकर उसमे ग्रहण-त्याग की बुद्धि करता है। 'सर्व ही शुभाशुभ भाव आस्रव-बध के कारण' कहे है, किन्तु द्रव्यलिंगी शुभक्रिया को सवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण मानता है। शुद्धभाव को सवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण कहा है, किन्तु द्रव्यलिंगी उसको पह-चानते ही नही। और शुद्धात्म स्वरूप को मोक्ष कहा है, उसका द्रव्य-लिंगी को यथार्थ ज्ञान ही नही है, इस प्रकार अन्यथा साधन करे तो उसमे शास्त्रो का क्या दोष है ? तूने कहा कि तिर्यंचादिकको सामान्य श्रद्धान से कार्यसिद्धि कही, तो उनके भी अपने क्षयोपशम के अनुसार

विशेप का जानना होता ही है। अथवा पूर्व पर्यायों मे (पूर्वभव में) विशेप का अभ्यास किया था उसी सस्कार के बल से (विशेष का जानना) होता है। जिस प्रकार किसी ने कही पर गडा हुआ धन पाया, तो 'हम भी उसी प्रकार पावेंगे' ऐसा मानकर सभी को व्यापारादिक का त्याग न करना। उसी प्रकार किसी को अल्प श्रद्धान द्वारा ही कार्यसिद्धि हुई है तो 'हम भी इस प्रकार ही कार्य की सिद्धि करेंगे' ऐसा मानकर सवही को विशेप अभ्यास का त्याग करना उचित नही, इसलिये यह राजमार्ग नही है। राजमार्ग तो यही ह जिससे नाना प्रकार के विशेष (भेद) जानकर तत्त्वो का निर्णय होते ही कार्यसिद्धि होती है। तूने जा कहा कि मेरी बुद्धि से विकल्प साधन नही होता, अत जितना हो सके उतना अभ्यास कर, और तू पाप कार्य मे तो प्रवीण और इस अभ्यास मे कहता है 'मेरी बुद्धि नही है,' यह तो पापी का लक्षण है। इस प्रकार द्रव्यानुयोग के पक्षपाती को इस शास्त्र के अभ्यास मे सन्मुख किया। अव अन्य विपरीत विचारवालो को समझाते हैं।

प्रश्न २०—शब्द शास्त्रादि का पक्षपाती कहता है कि-व्याकरण, न्याय, कोश, छद अलकार, काव्यादिक ग्रन्थो का अभ्यास किया जाय तो अनेक ग्रन्थो का स्वयमेव ज्ञान होता है व पंडितपना प्रगट होता है। और इस शास्त्र के अभ्यास से तो एक इसी का ज्ञान हो व पंडितपना विशेष प्रगट नहीं होगा अत. शब्द-शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

उत्तर—अब उसको कहते हैं—

यदि तुम लोक मे ही पडित कहलाना चाहते हो तो तुम उसी का का अभ्यास किया करो। और यदि अपना (हितरूप) कार्य करने की चाह है तो ऐसे जैन ग्रन्थो का ही अभ्यास करने योग्य है। तथा जैनी तो जीवादिक तत्त्वो के निरूपण करने वाले जो जैन ग्रन्थ हैं उन्ही का अभ्यास होने पर पडित मानेगे। वह कहता है कि—मैं जैन ग्रथों के विशेष ज्ञान होने के लिये ही व्याकरणादि का अभ्यास करता हू।

उसको कहते है—ऐसे है तो भला ही है। किन्तु इतना है—जिस प्रकार चतुर किसान अपनी शक्ति अनुसार हलादिक द्वारा अल्प-बहुत खेत को सम्हालकर समयसर बीज बोवे तो उस फल की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार तुम भी यदि अपनी शक्ति अनुसार व्याकरणादि के अभ्यास से अल्प और अधिक बुद्धि को सम्हालकर जितने काल मनुष्य-पर्याय वा इन्द्रियो की प्रबलता इत्यादिक प्रवर्तते हैं उतने समय मे तत्त्वज्ञान के कारण जो शास्त्र, उनका अभ्यास करोगे तो तुम्हे सम्यक्त्वआदि की प्राप्ति होगी।

जैसे अन्जान किसान हलादिक से खेत को सवारता-सवारता ही समय को बितावेगा तो उसको फल-प्राप्ति होने वाली नही, वृथा ही खेदखिन्न हुआ। उसी प्रकार तू भी यदि व्याकरणादिक द्वारा बुद्धि को सवारता-सवारता ही समय वितावेगा तो सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होने वाली नही, वृथा ही खेदखिन्न होगा। इस काल मे आयु वुद्धि आदि अल्प है, इसलिये प्रयोजन मात्र अभ्यास करना, शास्त्रो का तो पार है नही। सुन! कुछ जीव व्याकरणादिक के बिना भी तत्त्वोपदेश रूप भापा शास्त्रो के द्वारा व उपदेश सुनकर तथा सीखने से भी तत्त्वज्ञानी होते देखे जाते है और कई जीव केवल व्याकरणादिक के ही अभ्यास मे जन्म गवाते है और तत्त्वज्ञानी नही होते हैं ऐसा भी देखा जाता है। सुन! व्याकरणादिक का अभ्यास करने से पुण्य नही होता, किन्तु धर्मार्थी होकर उनका अभ्यास करे तो किंचित् पुण्य होता है। तथा तत्त्वोपदेशक शास्त्रो के अभ्यास से सातिशय महत् पुण्य उत्पन्न होता हे इसलिए भला तो यह है कि ऐसे तत्त्वोपदेशक शास्त्रो का अभ्यास करना। इस प्रकार शब्दशास्त्रादिक के पक्षपाती को सन्मुख किया।

प्रश्न २१—अब अर्थ का पक्षपाती कहता है कि—इस शास्त्र का अभ्यास करने से क्या है। सर्वकार्य धन से बनते हैं। धन से ही प्रभावना आदि धर्म होता है, धनवान के निकट अनेक पडित आकर रहते हैं अन्य भी सर्व कार्यो की सिद्धि होती है, अतः धन

पदा करने का उद्यम करना। उसको कहते हैं—

उत्तर—रे पापी। धन कुछ अपना उत्पन्न किया तो नही होता भाग्य से होता है। ग्रथाभ्यास आदि धर्म साधन से पुण्य की उत्पत्ति होती है उसी का नाम भाग्य है। यदि धन होना है तो शास्त्राभ्यास करने से कैसे नही होगा? अगर नही होना है तो शास्त्राभ्यास नही करने से कैसे होगा? इसलिये धन का होना, न होना तो उदयाधीन है, शास्त्राभ्यास मे क्यो शिथिल होता है? सुन-धन है वह तो विनाशीक है भय सयुक्त है पाप से उत्पन्न होता है, नरकादिक का कारण है। और जो यह शास्त्राभ्यास रूप ज्ञानधन है वह अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग-मोक्ष का कारण है, अत महत पुरुप तो धनादिक-को छोडकर शास्त्राभ्यास मे ही लगते हैं और तू पापी शास्त्राभ्यास को छुडाकर धन पैदा करने की बडाई करता है तो तू अनन्तससारी है। तूने कहा कि प्रभावनादि धर्म भी धन से ही होता है। किन्तु वह प्रभावनादि धर्म तो किंचित् सावद्यक्रिया सयुक्त है; इसलिये समस्त सावद्यरहित शास्त्राभ्यास रूप धर्म है वह प्रधान है, यदि ऐसा न हो तो गृहस्थ अवस्था मे प्रभावनादि धर्म साधन थे, उनको छोडकर सयमी होकर शास्त्राभ्यास मे किसलिये लगते हैं?

शास्त्राभ्यास करने से प्रभावनादिक भी विशेष होती है। तूने कहा कि—धनवान के निकट पडित भी आकर के रहते हैं। सो लोभी पडित हो और अविवेकी धनवान हो वहाँ ऐसा होता है। और शास्त्राभ्यासवालो की तो इन्द्रादिक भी सेवा करते हैं, यहाँ भी बडे-बडे महत पुरुप दास होते देखे जाते हैं, इसलिये शास्त्राभ्यास वालो से धनवानो को महत न जान। तूने कहा कि धन से सर्व कार्यसिद्धि होती है, (किन्तु ऐसा नही हैं) उस धन से तो इस लोक सबधी कुछ विषयादिक कार्य इस प्रकार के सिद्ध होते हैं जिससे बहुत काल तक नरकादिक दु ख सहन करने पडते हैं। और शास्त्राभ्यास से ऐसे कार्य सिद्ध होते हैं कि जिससे इस लोक परलोक मे अनेक सुखो की परपरा प्राप्त होती हैं इसलिये धन पैदा करने के विकल्प को छोडकर शास्त्राभ्यास

करना। और जो ऐसा सर्वथा न बने तो सतोष पूर्वक धन पैदा करने के पक्षपाती को सम्मुख किया।

प्रश्न २२—अब काम भोगादिक का पक्षपाती कहता है कि शास्त्राभ्यास करने में सुख नहीं है, बड़प्पन नहीं है, इसलिये जिनके द्वारा यहाँ ही सुख हो ऐसे जो स्त्री-सेवन, खाना-पहिरना इत्यादिक विषय-सुख उनका सेवन किया जाय अथवा जिसके द्वारा यहाँ ही बड़प्पन हो ऐसे विवाहादिक कार्य किये जाय।

उत्तर—अब उसको कहते है—विषयजनित जो सुख है वह दु ख ही है क्योकि विषय—सुख पर-निमित्त से होता है, पूर्व और पश्चात् पुरन्त ही आकुलता सहित है और जिसके नाश होने के अनेक कारण मिलते ही हैं; आगामी नरकादि दुर्गति को प्राप्त कराने वाला है . ऐसा होने पर भी वह तेरी चाह अनुसार मिलता ही नही, पूर्व पुण्य से होता है, इसलिये विषम है। जैसे खाज से पीडित पुरुष अपने अग को कठोर वस्तु से खुजाते है वैसे ही इन्द्रियो से पीडित जीव उनको पीडा सही न जाय तब किंचितमात्र जिनमे पीड़ा का प्रतिकार सा भासे ऐसे जो विषय सुख उनमे झपापात करते हैं, वह परमार्थरूप सुख है नही; और शास्त्राभ्यास करने से जो सम्यग्ज्ञान हुआ उससे उत्पन्न आनन्द वह सच्चा सुख है। जिससे वह सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, किसी के द्वारा नष्ट नही होता, मोक्ष का कारण है, विषम नही है। जिस प्रकार खाज की पीडा नही होती तो सहज ही सुखी होता, उसी प्रकार वहाँ इन्द्रिय पीड़ने के लिये समर्थ नही होती तब सहज ही सुख को प्राप्त होता है। इसलिये विषय सुख को छोडकर शास्त्राभ्यास करना, यदि सर्वथा न छूटे तो जितना हो सके उतना छोड़कर शास्त्राभ्यास मे तत्पर रहना। तूने विवाहादिक कार्य मे बड़ाई होना कही वह कितने दिन बडाई रहेगी ? वह बड़ाई जिसके लिये महापापारभ से नरकादि मे बहुत काल दु ख भोगना होगा, अथवा तुझ से भी उन कार्यो मे धन लगाने वाले बहुत हैं अत विशेष बड़ाई भी होने वाली नही है। और शास्त्राभ्यास से तो ऐसी बड़ाई होती है कि जिनकी

सर्वजन महिमा करते हैं। इन्द्रादिक भी प्रशसा करते है। और परपरा भी स्वर्ग—मुक्ति का कारण है। इसलिये विवाहादिक कार्यो का विकल्प छोडकर शास्त्राभ्यास का उद्यम रखना। सर्वथा न छूटे तो बहुत विकल्प न करना। इस प्रकार काम—भोगादिक के पक्षपाती को शास्त्राभ्यास मे सन्मुख किया।

इस प्रकार अन्य भी जो विपरीत विचार से इस ग्रन्थ के अभ्यास मे अरुचि प्रगट करते हैं, उनको यथार्थ बिचार से इस शास्त्र के अभ्यास मे सन्मुख होना योग्य है।

प्रश्न २३—यहाँ अन्यमती कहते हैं कि तुमने अपने ही शास्त्र के अभ्यास करने का दृढ़ किया, हमारे मत मे नाना युक्ति आदि सहित शास्त्र हैं उनका भी अभ्यास क्यों न कराया जाय ?

उत्तर—उनको कहते हैं—

तुम्हारे मत के शास्त्रो मे आत्महित का उपदेश नही। कही शृ गार का, कही युद्ध का, कही काम सेवन आदि का, कही हिंसादिक का कथन है। और यह तो बिना ही उपदेश सहज ही हो रहा है अत इनको तजने से हित होता है। अन्यमत तो उलटा उनका पोषण करता है, इसलिये उससे हित कैसे होगा ? वहाँ वह कहते हैं कि ईश्वर ने ऐसी लीला की है, उसको गाते हैं तो उससे भला होता है। वहाँ कहते हैं कि यदि ईश्वर को सहज सुख न होगा तब ससारीवत् लीला से सुखी हुआ। जो वह सहज सुखी होता तो किसलिये विषयादि सेवन वा युद्धादि करता ? मदबुद्धि भी बिना प्रयोजन किंचित्मात्र भी कार्य नही करते। इसलिये जाना जाता है कि—वह ईश्वर हम जैसा ही है। उसका यश गाने से क्या सिद्धि होगी ?

प्रश्न २४—और वह कहता है कि हमारे शास्त्रों मे त्याग, वैराग्य, अहिंसादिक का भी उपदेश है।

उत्तर—वह उपदेश पूर्वा पर विरोध सहित है, कही विषय पोषते हैं, कही निषेध करते हैं, कही वैराग्य दिखाकर पश्चात हिंसादिक का करना पुष्ट किया है वहाँ वातुलवचनवत् प्रमाण कहाँ ?

प्रश्न २५—तथा वह कहते हैं कि—वेदान्त आदि शास्त्रो मे तो तत्त्व का निरूपण है।

उत्तर - उनको कहते हैं—नही, वह निरूपण प्रमाण से बाधित है, अयथार्थ है. उसका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रो मे किया है सो जानना। इसलिए अन्य मत के शास्त्रो का अभ्यास न करना।

प्रश्न २६—इसी प्रकार जीवो को इस शास्त्र के अभ्यास मे सन्मुख किया।

उत्तर—उनको कहते है ··

हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यास के अनेक अग है। शव्द या अर्थ का वाँचन या सीखना, सिखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारम्बार चर्चा करना इत्यादि अनेक अग हैं—वहाँ जैसे बने तैसे अभ्यास करना। यदि सर्वशास्त्र का अभ्यास न बने तो इस शास्त्र मे सुगम या दुर्गम अनेक अर्थो का निरूपण है, वहाँ जिसका बने उसका अभ्यास करना। परन्तु अभ्यास मे आलसी न होना। **देखो !** शास्त्राभ्यास की महिमा, जिसके होने पर परम्परा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षमार्ग रूप फल को प्राप्त होना है। यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रगट हो। है, क्रोधादि कषायो की तो मदता होती हे, पचेन्द्रियो के विषयो मे प्रवृत्ति रुकती है, अति चचल मन भी एकाग्र होता है, हिंसादि पाँच पाप नही होते, स्तोक (अल्प) ज्ञान होने पर भी त्रिलोक के तीन काल सम्बन्धी चराचर पदार्थों का जानना होता है, हेय—उपादेय की पहचान होती है, आत्मज्ञान सन्मुख होता है, अधिक-अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है, लोक मे महिमा यश विशेष होता है, अतिशय पुण्य का बध होता है, इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करने से तत्काल ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए शास्त्राभ्यास अवश्य करना।

प्रश्न २७—तथा हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यास करने के समय की प्राप्ति महादुर्लभ है। कैसे ? यह कहते हैं—

उत्तर—एकेन्द्रियादि असञ्ज्ञीपर्यंत जीवो को तो मन नही, और नारकी वेदना से पीडित तिर्यंच विवेकरहित, देव विषयासक्त, इसलिए मनुष्यो को अनेक सामग्री मिलने पर शास्त्राभ्यास होता है। सो मनुष्य पर्याय की प्राप्ति ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से महादुर्लभ है।

वहाँ द्रव्य से तो लोक मे मनुष्य जीव बहुत अल्प हैं, तुच्छ सख्यात मात्र ही हैं, और अन्य जीवो मे निगोदिया अनन्त है दूसरे जीव असख्यात हैं। तथा क्षेत्र से मनुष्यो का क्षेत्र बहुत स्तोक (थोडा ही) अढाई द्वीप मात्र ही है और अन्य जीवो मे एकेन्द्रियो का क्षेत्र सर्व लोक है, दूसरो का कितनेक राजू प्रमाण है। और काल से मनुष्य पर्याय मे उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि—अपेक्षा पृथक्त्व कोटिपूर्व मात्र है और अन्य पर्यायो मे उत्कृष्ट रहने का काल—एकेन्द्रिय मे तो असख्यात पुद्गल-परावर्तन मात्र और अन्यो मे सख्यात पल्य मात्र है। भाव-अपेक्षा तीव्र शुभाशुभपने से रहित ऐसे मनुष्य-पर्याय के कारण रूप परिणाम होने अति दुर्लभ हैं, अन्य पर्याय के कारण अशुभ रूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ है। इस प्रकार शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याय कर्मभूमि या मनुष्य पर्याय, उसका दुर्लभपना जानना। वहाँ सुवास, उच्चकुल, पूर्ण आयु, इन्द्रियो की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादि की प्राप्ति होना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। यह प्रत्यक्ष दीख रहा है; और उतनी सामग्री मिले बिना ग्रन्थाभ्यास बनता नही, सो तुमने भाग्य से अवसर पाया है इसलिए तुमको हठ से भी तुम्हारे हित के लिए प्रेरणा करते हैं। जैसे हो सके वैसे इस शास्त्र का अभ्यास करो, अन्य जीवो को जैसे बने वैसे शास्त्राभ्यास कराओ। जो जीव शास्त्राभ्यास करते हैं उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लिखवाना, व पढ़ने-पढ़ानेवालो की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्य कारण, उनका साधन करना; क्योकि उनके द्वारा भी परम्परा कार्यसिद्धि होती है व महत् पुण्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस शास्त्र के अभ्यासादि मे जीवो को रुचिवान किया।

मिथ्यातम ही महापाप है

राजमल पवैया

मिथ्यातम ही महा पाप है, सब पापो का बाप है।
सब पापो से बड़ा पाप है, घोर जगत सताप है ।।टेक।।

हिसादिक पाचो पापो से, महा भयकर दुखदाता।
सप्त व्यसन के पापो से भी, तीव्र पाप जग विख्याता ।।
है अनादि से अग्रहीत ही, शाश्वत शिव सुख का घाता।
वस्तु स्वरूप इसी के कारण, नही समझ मे आ पाता ।।
जिन वाणी सुनकर भी पागल, करता पर का जाप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ।।१।।

सज्ञी पचेन्द्रिय होता है, तो ग्रहीत अपनाता है।
दो हजार सागर त्रस रहकर, फिर निगोद मे जाता है ।।
पर मे आपा मान स्वय को, भूल महा दुख पाता है।
किन्तु न इस मिथ्यात्व मोह के, चक्कर से बचपाता है ।।
ऐसे महापाप से बचना, यह जिनकुल का माप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ।।२।।

इससे बढकर महा शत्रु तो, नही जीव का कोई भी।
इससे बढकर महा दुष्ट भी, नही जगत मे कोई भी ।।
इसके नाश किए बिन होता, कभी नही व्रत कोई भी।
एकदेश या पूर्ण देशव्रत, कभी न होता कोई भी ।।
क्रिया काड उपदेश आदि सब, झूठा वृथा प्रलाप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ।।३।।

यदि सच्चा सुख पाना है तो, तुम इसको सहार करो।
तत्क्षण सम्यक्दर्शन पाकर, यह भव सागर पार करो ।।
वस्तु स्वरूप समझने को अब, तत्वो का अभ्यास करो।
देह पृथक है, जीव पृथक है, यह निश्चय विश्वास करो ।।
स्वय अनादिअनत नाथ तू, स्वय सिद्ध प्रभु आप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ।।४।।

॥ श्री वीतरागायनम ॥

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

छठा भाग

मंगलाचरण

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याको नाम ॥१॥

अनुभव चिन्तामनि रतन, अनुभव है रस कूप।
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्ष स्वरूप ॥२॥

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहिं और ॥३॥

जिनपद नांहि शरीर को, जिन पद चेतन मांहि।
जिन वर्नन कछु और है, यह जिन वर्नन नांहि ॥४॥

प्रगटै निज अनुभव करै, सता चेतन रूप।
सब ज्ञाता लखिकें नमों, समयसार सब भूप ॥५॥

देव गुरु दोनो खड़े, किसके लागू पाव।
वलिहारी गुरु देव की, भगवन् दियो बताय ॥६॥

करुनानिधि गुरुदेव श्री, दिया सत्य उपदेश।
ज्ञानी माने परख कर, करें मूढ संक्लेश ॥७॥

प्रकरण पहला

१. वीतराग-विज्ञान

१ वीतराग-विज्ञान (मोक्षमार्गप्रकाशक मे से मागलिक काव्य)

[अ] **मंगलमय मगल करण, वीतराग विज्ञान।**
नमौं ताहि जातै भये, अरहंतादि महान ॥१॥
करि मंगल करि हौं महा, ग्रथ करन को काज।
जातै मिलै समाज सब, पावै निज पद राज ॥२॥

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १)

अर्थ—वीतराग-विज्ञान मगलमय है तथा मगल का करने वाला है। जिस कारण से अरहन्तादि पच परमेष्टी महान हुए है उनको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार मगलाचरण करके इस महा ग्रन्थ के करने का शुभ कार्य करता हूँ। जिससे सर्व समाज को उस वीतरागी विज्ञान की प्राप्ति हो और निजपद के राज्य को प्राप्त करे।

भावार्थ—विज्ञान दो प्रकार का है—(१)अज्ञानरूप विज्ञान, (२) वीतराग विज्ञान।

प्रश्न १—अज्ञानरूप विज्ञान क्या है ?

उत्तर—जो परिणाम मिथ्या अभिप्राय सहित हो, स्व-पर के एकत्व अभिप्राय से युक्त हो वह अज्ञानरूप विज्ञान है।

श्री समयसार गा० २७१ की टीका मे लिखा है कि 'स्वपर का अविवेक हो (स्व-पर का भेदज्ञान ना हो) तब जीव को अध्यवसिति मात्र (एक मे दूसरे की मान्यता पूर्वक) परिणति और (मात्र पर को जानने की वुद्धि होने से) विज्ञप्ति मातृत्व से विज्ञान है। यह विज्ञप्ति मात्र स्व-पर के अविवेक को दृढ करती है, इसलिए अज्ञान कहलाती है, ऐसा विज्ञान मिथ्यादृष्टियो को होता है तथा वह ससारवर्धक है।

मुझ निज आतमा के अलावा विश्व मे अनन्त आत्माये, अनन्तान्त

पुद्‌गल, धर्म-अधर्म, आकाश एक-एक, लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य तथा शुभाशुभ भावो मे एकत्व बुद्धि, एकत्व का ज्ञान और एकत्व का आचरण ही अज्ञानरूप विज्ञान है। यह अज्ञानरूप विज्ञान इस जीव को चारो गतियो मे भ्रमण कराता है।

प्रश्न—**अज्ञानरूप विज्ञान तीन प्रकार का कौन-कौन सा है ?**

उत्तर—(१) हिंसादि और अहिंसादि के अध्यवसान से अपने को हिसादि और अहिसादि रूप मानना। (२) उदय मे आते हुए नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव के अध्यवसान से अपने को नारकी आदिरूप मानना। (३) जानने मे आते हुए सब द्रव्यो मे अपने को उस रूप करने की मान्यता। (देखो समयसार गा० २६८ से २७० तक)

प्रश्न—**वीतराग विज्ञान क्या है ?**

उत्तर—स्व-पर के भिन्नपने का ज्ञान वीतराग-विज्ञान है।

श्री समयसार गा० ७४ मे लिखा है कि 'मिथ्यात्व जाने के बाद जीव चाहे ज्ञान का उघाड अल्प हो, तो भी विज्ञान कहने मे आता है। जैसे-जैसे विज्ञानघन स्वभाव होता जाता है वैसे-वैसे आस्रवो से निवृत्त होता जाता है और जैसे-जैसे आस्रवो से निवृत्त होता जाता है तैसे-तैसे विज्ञानघन स्वभाव होता जाता है।

मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त आत्माये, अनन्तानन्त पुद्‌गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य तथा शुभाशुभ भावो मे भिन्नत्व का श्रद्धान, भिन्नत्व का ज्ञान और भिन्नत्व का आचरण ही वीतराग विज्ञान है। वह जीव को चारो गतियो का अभाव करके मोक्ष मे पहुचा देता है।

प्रश्न—**मगल शब्द का क्या अर्थ है ?**

उत्तर—(१) 'मग अर्थात् सुख, उसे 'लाति' अर्थात् देता है। (२) 'म' अर्थात् पाप, उसे 'गालयति' अर्थात् गाले, दूर करे उसका नाम मगल है। वास्तव मे मिथ्यादर्शनादि भावो पाप है उनका नाश करके सम्यग्दर्शनादि भावो सुख है उनकी प्राप्ति होना वह मगल है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८]

[आ] मिथ्या भाव अभाव तें, जो प्रगटै निज भाव ।
सो जयवन्त रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाव ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २१]

अर्थ—मिथ्या भाव का अभाव होने से जो निज भाव प्रगट होता है, वह एक ही मोक्ष का उपाय है। वह सदा जयवन्त रहो।

भावार्थ—यहाँ मोक्ष का उपाय एक ही है, दो या अधिक मोक्ष-मार्ग नही है—ऐसा स्पष्ट बताया है। मोक्षमार्ग एक ही है ऐसा ही श्री प्रवचनसार गाथा ८२, १९९ तथा २४२ मे तथा समयसार कलश २३९ और २४० मे बाताया है रत्नकरण्ड-श्रावकाचार गा० ३ मे तथा तत्वार्थ सूत्र पहला अध्याय के पहले सूत्र मे भी यही बताया है।

'मोक्षमार्ग दो नही है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है ·· एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।'

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४८ से २४९ मे देखो]

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र यह मिथ्याभाव हैं, इनके अभाव से तथा अपने स्वभाव का आश्रय लेने से निजभाव प्रगट होता है, वह सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

स्व-पर के अविवेक से मिथ्याभाव प्रगट होता है और स्व-पर के विवेक से सम्यक्भाव प्रगट होता है।

[इ] सो निज भाव सदा सुखद, अपना करो प्रकाश ।
जो बहुविधि भव दुखनि को, करि है सत्ता नाश ॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४५]

अर्थ—जो निजभाव है वह सदा सुख देने वाला है, इसलिये निज-भाव का प्रकाश करो। निजभाव के प्रकाश करने से अनेक प्रकार के दु खो की सत्ता का नाश हो जाता है।

भावार्थ—जीव अनादि से, एक-एक समय करके मिथ्याभाव के

कारण ही अनेक प्रकार के दु खो को भोगता है। उन सब दु खो का नाश एक मात्र निजभाव को प्रगट करने से ही होता है, क्योकि वह सदा सुख को देने वाला है।

बाह्य पदार्थों के कारण जीव को सुख-दु ख होता है, यह मान्यता झूठी है। इसलिए खोटी मान्यता को छोडकर अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर शुद्ध भाव प्रगट करना चाहिए, क्योकि शुद्धभाव सुखदायक है और आकुलता-चिन्ता का अभाव करने वाला है।

प्रश्न—अशुद्ध भाव क्या है ?

उत्तर—हिंसादि और अहिंसादि के भाव अशुद्ध भाव हैं। इन अशुद्ध भावो को और आत्मा को एक मानना—यह ससार का वीज है, मिथ्यात्व है। इस भाव से सब बाते उल्टी ही श्रद्धा मे आती हैं, उल्टी ही ज्ञान मे जाती है और उल्टी ही आचारणरूप होती है। आत्मा और विकारी क्षणिक भावो की एकताबुद्धि ही अनन्त ससार हैं।

[पुरुषार्थसिद्धिउपाय गा० १४]

प्रश्न—शुद्ध भाव क्या है ?

उत्तर—अपने त्रिकाली आत्मा का आश्रय लेने से अशुद्ध भाव रुक जाते हैं ओर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धभाव प्रगट हो जाते है। शुद्ध भाव के प्रगट होते ही अनन्त ससार का अभाव हो जाता है। शुद्धभाव के प्रगट होते ही सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, सच्चा आचरण प्रगट हो जाता है। परका मैं करूँ-धरूँ रूप जो बुद्धि है उसका अभाव हो जाता है।

प्रश्न—शुद्धभाव के प्रगट होते ही क्या-क्या होता है, जरा स्पष्ट बताइये ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग जो ससार के कारण हैं उनका अभाव हो जाता है। (२) आठो कर्मों का अभाव हो जाता है। (३) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप जो पाँच परावर्तन है उनका अभाव हो जाता है। (४) पचम पारि-

है। और मिथ्यात्व के समान तीन काल और तीन लोक मे अन्य कोई अकल्याणकारी नही है।

प्रश्न—सम्यग्दर्शन क्या है ?

उत्तर—मोक्ष महल की प्रथम सीढी है, इसलिये सबसे प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये।

(उ) बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयो निज भाव।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६५]

अर्थ—अनेक प्रकार के मिथ्या श्रद्धान के ग्रहण से निज भाव मलिन होता है, इन कारणो का अभाव होने पर जीव का सहजरूप देखने मे आता है।

भावार्थ—जगत मे धर्म के नाम पर अनेक मिथ्या मान्यताये चलती हैं। जिस कुटुम्व मे स्वय मनुष्य तरीके जन्म लिया, वहा जो कुछ मान्यता चलती हो उसी को वह ग्रहण करता है। उस मिथ्या मान्यता से उसका निज भाव मलिन होता है। इसलिये सत्यदेव, सत्यगुरु, सच्चे धर्म का, तत्वो का, द्रव्यो का, सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप क्या है ? और अन्यथा स्वरूप क्या है ? उसे जानकर अन्यथा विपरीत स्वरूप जिससे अपना निजभाव मलिन हो रहा था, उसे छोडकर यथार्थ स्वरूप ग्रहण करके उन भावो का अभाव करना चाहिये और अपना सहज स्वभाविक शुद्धस्वरूप जो शक्तिरूप है उसे पर्याय मे प्रगट करना चाहिये। अन्य मत वाले अनेक कल्पित बाते करते हैं सो जैन धर्म मे सम्भव नही हैं।

[ऊ] मिथ्या देवादिक भजै, हो है मिथ्याभाव।
तज तिनको सांचे भजो, यह हित हेतु उपाय॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६८]

अर्थ—मिथ्यादेव, गुरु, धर्म के मानने से मिथ्याभाव दृढ होता है।

इसलिये इनको छोडकर सच्चादेव, गुरु, धर्म को मानना चाहिये यह 'हित का उपाय है।

भावार्थ—आत्मा का हित जन्म मरण का अभाव करके परिपूर्ण सुख दशा की प्राप्ति ही है। कुदेव, कुगुरु, कुधर्म की भक्ति से मिथ्या भाव उत्पन्न होता है। इसलिये सत्य क्या है ? उसका यथार्थ निर्णय करके असत्य को छोडकर, सत्य देवादि को ग्रहण करके, उसके उपदेश के अनुसार शुद्धता प्रगट करनी चाहिये, क्योकि वह अपने हित का निमित्त कारण है इसलिये उसका उपाय करना।

प्रश्न—हम दिगम्बर धर्मी अन्य कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को मानते ही नहीं, क्योकि हम वीतरागी प्रतिमा को पूजते हैं, २८ मूलगुणधारी नग्न भावलिगी मुनि को मानते हैं और उनके कहे हुए सच्चे शास्त्रो का अभ्यास करते हैं, तो हम किस प्रकार मिथ्यादृष्टि हैं ?

उत्तर—"सत्तास्वरूप" मे प० भागचन्द्र जी छाजेड ने कहा है दिगम्बर जैन कहते हैं कि 'हम तो सच्चे देवादि को मानते है इसलिये हमारा गृहीत मिथ्यात्व तो छूट गया है। तो कहते हैं कि नही, तुम्हारा गृहीतमिथ्यात्व नही छूटा है क्योकि तुम गृहीतमिथ्यात्व को जानते ही नही। मात्र अन्य देवादि को मानना ही गृहीतमिथ्यात्व का स्वरूप नही है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा बाह्य मे भी यथार्थ व्यवहार जानकर करना चाहिये। सच्चे व्यवहार को जाने विना कोई देवादि की श्रद्धा करे, तो भी वह गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न—गृहीतमिथ्यात्व कैसे छूटे ?

उत्तर—वर्तमान मे जो कोई शुभभावो से आत्मा का भला होता है, निमित्त मिले तो कल्याण हो, दूसरे के आश्रय से हमारा भला होता है, आदि खोटी मान्यताओ के उपदेशक की श्रद्धा सब गृहीत-मिथ्यात्व मे आते हैं। (१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है, कुछ सहायता आदि करता है आदि उपदेशक गृहीतमिथ्यात्व मे आते है (२) शुभभाव करो, धीरे-धीरे कल्याण हो जावेगा आदि

मान्यता करने वाले वर्तमान मे जो कोई हो इनसे दूर रहना चाहिये। श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ११७ की टीका मे सदासुखदास जी ने पृष्ठ १५२ मे लिखा है कि "कलिकाल मे भावलिगी मुनीश्वर तथा अर्जिका तथा क्षुल्लक का समागम तो है ही नाहि" इसलिये सच्चेदेव, गुरु, धर्म का स्वरूप समझकर दिगम्बर धर्म के नाम से मोक्षमार्ग मे विघ्न करने वाले जो कोई भी हो' इनसे दूर रहना चाहिए। क्योकि यह गृहीतमिथ्यात्व के पुष्ट करने वाले है।

प्रश्न—आत्मा का हित एक मोक्ष ही है, ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में कहाँ आया है ?

उत्तर—मोक्षमार्गप्रकाशक ९वाँ अध्याय पृष्ठ ३०६ मे लिखा है "आत्मा का हित मोक्ष ही है, अन्य नही।"

प्रश्न—आत्मा का हित मोक्ष ही है उसकी सिद्धि कैसे हो ?

उत्तर—मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०७ मे लिखा है कि "(१) या तो अपने रागादि दूर हो (२) या आप चाहे उसी प्रकार सर्व द्रव्य परिणमित हो तो आकुलता मिटे परन्तु सर्व द्रव्य तो अपने आधीन नही है क्योकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नही है, सब अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमे है।

अपने रागादिक दूर होने पर निराकुलता हो, सो यह कार्य बन सकता है। सो अपने परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय लेकर अपना हित साधना प्रत्येक पात्र जीव का प्रथम कर्तव्य है।

प्रश्न—सबसे बड़ा पाप क्या है ?

उत्तर—मिथ्यात्व है।

प्रश्न—सबसे बडा पाप मिथ्यात्व है यह कहाँ आया है ?

उत्तर—मोक्षमार्गप्रकाशक छठवे अधिकार के अन्त मे पृष्ठ १९१ मे लिखा है कि "जिनधर्म मे तो यह आम्नाय है कि पहले बडा पाप छुडाकर फिर छोटा पाप छुडाया है, इसलिए इस मिथ्यात्व को सप्त-व्यसनादिक से भी बडा पाप जानकार पहले छुडाया है। इसलिए जो

पाप के फल से डरते हैं। अपने आत्मा को दु ख समुद्र मे नही डुबाना चाहते हैं, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोडो" ।

(ए) इस भव तरु का मूल इक जानहु मिथ्याभाव।
ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ।।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६३]

अर्थ—इस भव रूपी वृक्ष का मूल एक मिथ्यात्व भाव है उसको निर्मूल करके मोक्ष का उपाय करना चाहिए।

भावार्थ—मिथ्यात्व महापाप है। मिथ्यात्व को सातव्यसन से भी महापाप जानकर पहले छुडाया है, इसलिऐ पात्र जीव को मिथ्यात्व को तुरन्त छोड देना चाहिए।

प्रश्न—निश्चयाभासी मिथ्यात्व को पुष्टि कैसे करता है ?

उत्तर—निश्चयाभासी जीव जो बात भगवान ने शक्ति अपेक्षा कही हैं उसे अपनी वर्तमान पर्याय मे मानकर, तथा भगवान ने शुभ-भावो को हेय बताया है ऐसा मानकर अशुभ मे प्रवर्तता हुआ अपने को मोक्षमार्गी मानता हुआ मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

प्रश्न—व्यवहाराभासी मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

उत्तर—"केऊ व्यवहार दान शील तप भाव ही को आत्मा का हित जान छांडत न मुद्धता" व्यवहाराभासी जीव जो वात जिनागम मे व्यवहार की मुख्यता से वतलाई है उसे ही मोक्षमार्ग मानकर वाह्य साधनादिक ही का श्रद्धानादिक करता है ऐसा मानने से उसके सर्व धर्म के अग मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते है।

प्रश्न—उभयाभासी मिथ्यात्व की पुष्टि कैसे करता है ?

उत्तर— "केऊ व्यवहारनय, निश्चय के मारग भिन्न-भिन्न जान, यह वात करे उद्धता" निश्चयाभासो के समान निश्चय को और व्यव-हाराभासी के समान व्यवहार को, इस प्रकार दोनो को मानने वाला उभयाभासी है।

(१) दो प्रकार के मोक्षमार्ग मानता है जवकि एकमात्र वीतरागता

ही मोक्षमार्ग है। (२) निश्चय-व्यवहार दोनो को उपादेय मानता है, जबकि मात्र निश्चय उपादेय है आदि बातो से मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

प्रश्न—तीनो प्रकार के भासियो की मिथ्या मान्यता कैसे टले ?

उत्तर—"जबै जाने निहचै के भेद-व्यवहार सब कारण को उपचार माने, तब बुद्धता" निश्चय-व्यवहार को जानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले तो मिथ्याभासीपने का अभाव हो, तब धर्म की प्राप्ति हो।

(ऐ) **शिव उपाय करते प्रथम, कारन मंगल रूप।**
विघन विनाशक सुख करन, नमो शुद्ध शिवभूप ॥१॥

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०६]

अर्थ—शिव उपाय अर्थात् मोक्ष का उपाय करते समय पहले उसका कारण और मगल रूप, शुद्ध शिवभूप को नमस्कार करना चाहिये, क्योकि वह विघ्न विनाशक और सुख करने वाला है।

भावार्थ—शुद्ध शिवभूप व्यवहारनय से सिद्ध भगवान है और निश्चयनय से अपना त्रिकाली आत्मा ही है। जो कि सर्व विशुद्ध परम पारिणामिक, परम भाव ग्राहक, शुद्ध उपादान भूत, शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से निज जीव ही है जो कि कर्तृत्व-भोक्तृत्व रहित तथा बध-मोक्ष के कारण और परिणाम से रहित (शून्य) है। उसकी प्राप्ति एक मात्र शक्तिवान के आश्रय से ही होती है, किसी पर भगवान या शुभ भाव से कभी भी नही। इसलिए अपने परम पारिणामिक ज्ञायक आत्मा का आश्रय लेकर सवर निर्जरारूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति कर, पूर्ण मोक्ष का पथिक बनना ही जैनधर्म का सार है।

२. द्रव्य गुणो का स्वतन्त्र परिणमन

(अ) जीव द्रव्य, उसके अनन्त गुण, सब गुण असहाय, स्वाधीन, सदाकाल, ऐसा वस्तु स्वरूप है।

(आ) अब इनकी व्यवस्था "न ज्ञान चारित्र के आधीन है, न

चारित्र ज्ञान के आधीन हैं, दोनो असहायरूप है।" ऐसी मर्यादा बँधी है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक उपादान-निमित्त चिट्ठी पृष्ठ १६]

(इ) कोई कहता है कि 'ज्ञान की शुद्धता से क्रिया (चारित्र) शुद्ध हुआ, सो ऐसा नही है। कोई गुण किसी गुण के सहारे नही है।' सर्व असहाय रूप हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक उपादान-निमित्त चिट्ठी पृष्ठ १६]

प्रश्न—इसमे अनेकान्त कैसे हुआ ?

उत्तर—सर्वगुण स्वाधीन वह अस्ति तथा असहाय वह नास्ति, इस प्रकार अस्ति-नास्ति रूप असहाय यह अनेकान्त है।

(ई) प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है निमित्त विशिष्टता नही ला सकता 'क्योंकि पर अर्थात् पर द्रव्य किसी द्रव्य को परभाव रूप करने का निमित्त नही हो सकता।'

[समयसार गा० २२० से २२३ टीका मे]

(उ) 'ससारी के एक यह उपाय है कि स्वय को जैसा श्रद्धान है, उसी प्रकार पदार्थों को परिणमित करना चाहता है, यदि वे परिणमित हो तो इसका सच्चा श्रद्धान हो जाये। परन्तु अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नही है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नही होती।' तथापि जीव उन्हे अपनी इच्छानुसार परिणमित कराने की इच्छा करता है यह तो मिथ्यादर्शन ही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५२]

(ऊ) "कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नही, सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते है, यह जीव वृथा ही कषाय भाव से आकुलित होता है।"

(ए) "लोक मे सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता है, कोई किसी को सुख-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नही। यह जीव

व्यर्थ ही अपने परिणामो मे उन्हे सुखदायक-उपकारी मानकर इष्ट मानता है अथवा दु खदायी-अनुपकारी जानकर अनिष्ट मानता है ।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८९]

(ऐ) "यदि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो, तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नही, इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक है उन्हे छोडकर वीतरागी होता है ।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५२]

(ओ) "सर्व कार्य जैसे यह चाहे वैसे ही हो, अन्यथा न हो, तब यह निराकुल रहे, परन्तु यह तो हो ही नही सकता, क्योकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नही है, इसलिए अपने रागादिक दूर होने पर निराकुलता हो, सो यह कार्य बन सकता है ।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०७]

(औ) "इस बधान मे कोई किसी को करता तो है नही ।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४]

(अ) "यदि कर्म स्वय कर्ता होकर उद्यम से जीव के स्वभाव का घात करे, बाह्य सामग्री को मिलावे, तब तो कर्म के चेतनपना भी चाहिये और बलवानपना भी चाहिए, सो है नही । सहज ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५]

(अ) "पदार्थों को यथार्थ मानना और यह परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नही होगे, ऐसा मानना सो ही उस दु ख के दूर होने का उपाय है । भ्रमजनित दु ख का उपाय भ्रम दूर करना ही है । सो दूर होने से सम्यक् श्रद्धान होता है वही सत्य उपाय जानना ।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५२]

(क) "सब पदार्थ अपने द्रव्य मे अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मो के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते है स्पर्श करते है तथापि वे (सब द्रव्य) परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नही करते ।"

[समयसार गा० ३ की टीका]

(ख) अन्य द्रव्य से, अन्य द्रव्य के गुण की उत्पत्ति नही की जा सकती, इससे (यह सिद्धान्त हुआ कि) सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। [समयसार मूल गा० ३७२]

(ग) जो द्रव्य किसी द्रव्य मे और पर्याय मे वर्तता है वह अन्य द्रव्य मे तथा पर्याय मे बदलकर अन्य मे नही मिल जाता। अन्य रूप से सक्रमण को प्राप्त न होती हुई वस्तु अन्य वस्तु को कैसे परिणमन करा सकती है। अर्थात् नही करा सकती है।

[समयसार मूल गा० १०३]

(घ) जो पर द्रव्य है वह ग्रहण नही किया जा सकता है और छोडा भी नही जा सकता, ऐसा ही कोई उसका (आत्मा का) प्रायोगिक (विकारी पर्याय) वैस्रसिक (स्वभाव) है।"

[समयसार मूल गा० ४०६]

३. जैनधर्म

(अ) 'सर्व कषायो का जिस-तिस प्रकार से नाश करने वाला जो जिन धर्म अर्थात् जैनधर्म।' [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १२]

(आ) जैन शास्त्रो के पदो मे तो कषाय मिटाने का तथा लौकिक कार्य घटाने का प्रयोजन है।' [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १३]

(इ) "जैनमत मे एक वीतराग भाव के पोषण का प्रयोजन है" जैनधर्म मे देव-गुरु-धर्मादिक का स्वरूप वीतराग ही निरूपण करके केवल वीतरागता ही का पोषण करते हैं।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १३७]

(ई) "जीव मोक्षमार्ग को प्राप्त कर ले तो उस मार्ग मे स्वय गमन कर उन दु खो से मुक्त हो। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, इसलिए जिन शास्त्रो मे किसी प्रकार रागद्वेष मोह भावो का निषेध करके वीतराग भाव का प्रयोजन प्रगट किया हो, उन्ही शास्त्रो का वाँचना-सुनना उचित है।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १४]

(उ) जैनधर्म मे मुनिपद लेने का क्रम तो यह है—पहले तत्वज्ञान होता है, तत्पश्चात् उदासीन परिणाम होते हैं, परिषहादि सहने की शक्ति होती है, तब वह स्वयमेव मुनि होना चाहता है और तब श्री गुरु मुनि-धर्म अगीकार कराते हैं।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १७६]

(ऊ) जैनधम की पद्धति तो ऐसी है कि "प्रथम तत्वज्ञान हो, और पश्चात् चारित्र हो, सो सम्यक्चारित्र नाम पाता है।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २४२]

(ए) 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग वही ही मुनियो का सच्चा लक्षण है।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२३]

(ऐ) भक्ति तो राग रूप है, और राग से बध है इसीलिए मोक्ष का कारण नही है।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२२]

(ओ) उच्च भूमिका मे (ऊपर के गुणस्थानो मे) स्थिति प्राप्त न की हो, तब अस्थान का राग रोकने के हेतु अथवा तीव्र राग ज्वर मिटाने के हेतु कदाचित् ज्ञानी को भी भक्ति होती है यह (प्रशस्त राग) वास्तव मे, जो स्थूल लक्ष वाला होने से मात्र भक्ति प्रधीन है ऐसे अज्ञानी को होता है। [पचास्तिकाय गा० १३६ पृष्ठ २०३]

(औ) "जिस भाव से आत्मा को पुण्य अथवा पाप आस्रवित होते हैं, उस भाव द्वारा वह (जीव) पर चारित्र है ऐसा जिन प्ररूपित करते है, इसलिये पर चारित्र मे प्रवृत्ति सो बधमार्ग ही है मोक्षमार्ग नही है। [पचास्तिकाय गाथा १५७]

(अ) "वीतराग भाव रूप तप को न जाने और इन्ही (अनशन प्रायश्चित आदि) को तप जानकर सग्रह करे तो ससार मे ही भ्रमण करेगा। बहुत क्या, इतना समझ लेना कि निश्चयधर्म तो वीतराग-भाव है, अन्य नाना विशेष वाह्य साधन को अपेक्षा उपचार से किये है उनको व्यवहार मात्र धर्म सज्ञा जानना। इस रहस्य को जो नही जानता इसलिए उसके निर्जरा का सच्चा श्रद्धान नही।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

(अ) स्वर्गसुख का कारण प्रशस्त राग है और मोक्ष सुख का कारण वीतराग भाव है।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३४]

(क) "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है वही धर्म है।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५७]

(ख) "जिन धर्म मे यह तो आम्नाय है कि पहले बडा पाप छुडाकर फिर छोटा पाप छुडाया है। इसलिए मिथ्यात्व को सप्तव्यसनादिक से भी बडा पाप जानकर पहले छुडाया है। इसलिए जो पाप के फल से डरते है, अपने आत्मा को दु ख समुद्र मे नही डुबाना चाहते वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोडो।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९१]

(ग) "रागादिक का छोडना, इसी भाव का नाम धर्म अर्थात् जैन धर्म है" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९१]

(घ) "जैनधर्म का तो ऐसा उपदेश है, पहले तो तत्त्वज्ञानी हो, फिर जिसका त्याग करे उसका दोष पहिचाने, त्याग करने मे जो गुण हो उसे जाने, फिर अपने परिणामो को ठीक करे, वर्तमान परिणामो के ही भरोसे प्रतिज्ञा न कर बैठे, जैन धर्म मे प्रतिज्ञा न लेने का दण्ड तो है नही" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३९]

(ङ) "जिन्हे बन्ध नही करना हो वे कषाय नही करे" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २८]

(च) "जिनमत मे तो एक रागादि मिटाने का प्रयोजन है" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०३]

(छ) "जिनमत मे तो यह परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व होता है, फिर व्रत होते हैं, वह सम्यक्त्व स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है और वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने पर होता है, इसलिये प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि हो, पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक धारण करके व्रती हो। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २९३],

(ज) स्व-पर के श्रद्धान मे शुद्धात्म श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व गर्भित है। [मोक्षमोर्गप्रकाशक चिटठी पृष्ठ २]

"(झ) जैन धर्म का सेवन तो ससार नाश के लिए किया जाता है, जो उसके द्वारा साँसारिक प्रयोजन (पूजा-शास्त्रादि कार्य) साधना चाहते है वे वडा अन्याय करते है। इसलिए वे तो मिथ्यादृष्टि हैं ही।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २१६]

(ञ) इस प्रकार सासारिक प्रयोजन सहित जो धर्म साधते है वे पापी भी है और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२०]

(ट) जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजन सहित भक्ति करता है तो उसके पाप का ही अभिप्राय हुआ। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२२]

(ठ) इस प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पाप बध ही होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८]

(ड) "शास्त्र बाँचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न हो; क्योंकि यदि आशावान हो तो यथार्थ उपदेश नही दे सकता।" [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५]

४. अज्ञान की व्याख्या

(अ) जीव की जो मान्यता हो तदनुसार (उस मान्यता के अनुसार) जगत मे नही बनता हो तो वह मान्यता अज्ञान है।

[समयसार गा० २४८, २४९]

(आ) पर पदार्थों को परिणमावने का अभिप्राय वास्तव मे अज्ञान ही है, क्योकि पर पदार्थ आत्मा के अधीन नही।

इन्द्रियो से ज्ञान मानना अज्ञान है, क्योकि ज्ञान तो आत्मा से ही होता है। आत्मा ज्ञान के लिए इन्द्रिय-प्रकाश आदि बाह्य सामग्री सोधना अज्ञान है जिसको मोह महामल्ल जीवित है वह जीव अपने सुख और ज्ञान के लिए पर की ओर दौडता है यह अज्ञान है।

[प्रवचनसार गा० ५५ से]

(इ) जीव का जैसा आशय हो उसके अनुसार जगत मे कार्य न वनता हो तो वह आशय अज्ञान है।

[समयसार गाथा २५४ से २५६ तक]

(ई) आठ प्रकार के ज्ञानो मे मति, श्रुति तथा अवधि ये तीन मिथ्यात्व के उदय के वश (६ द्रव्य, सात तत्व, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-नैमित्तिक, व्याप्य-व्यापक आदि मे) विपरीताभिनिवेश रूप अज्ञान होता है। [वृहत द्रव्यसग्रह गा० ५ पृष्ठ १४ व १५ से)

(उ) मिथ्यादर्शन ही के निमित्त से क्षयोपशमरूप ज्ञान है वह अज्ञान हो रहा है। उससे यथार्थ वस्तु स्वरूप का जानना नही होता अन्यथा जानना होता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४६]

(ऊ) तत्व ज्ञान के अभाव से ज्ञान को अज्ञान कहते हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८८]

प्रश्न—अज्ञान क्या है सीधे-सादे शब्दों मे बताओ ?

उत्तर—(१) आत्मा का कार्य ज्ञप्ति क्रिया है इसके वदले यह मानना कि मैं परजीवो को बचा सकता हूँ, मार जिला सकता हूँ। सुवह से लेकर चौवीस घण्टे जो रूपी पुद्गल का कार्य है, मै इसे करता हूँ आदि सब मान्यता अज्ञान है।

(२) स्वय है आत्मा इसके बदले अपने को देव, नारकी, इन्द्रियादि वाला मानना यह अज्ञान है।

(३) ज्ञान ज्ञान से आता है उसके बदले ज्ञेय से आता है यह सब मान्यता अज्ञान है। [देखो समयसार गा० २७०]

५. निश्चय सम्यक्त्व

(अ) मिथ्या मति ग्रन्थि भेदि, जगी निर्मल ज्योति।
जोग सो अतीत सो, तो निहचै प्रमानिये।

अर्थ—मिथ्यात्व का नाश होने से मन, वचन, काय के अगोचर

जो आत्मा की निर्विकार श्रद्धान की ज्योति प्रकाशित होती है उसे निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिए।

[समयसार नाटक चतुर्थ गुणस्थान अधिकार पृष्ठ ४९०]

(आ) केवलज्ञान आदि गुणों का आश्रय भूत निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है; इस प्रकार की रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व जो कि पहले तपश्चरण की अवस्था मे भावित किया था (भावना की थी, अनुभव किया था) उसके फलस्वरूप समस्त जीवादि तत्वो के विपय मे विपरीत अभिनिवेश (विरुद्ध अभिप्राय) से रहित परिणाम रूप परम क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है।

[वृहत द्रव्य सग्रह गा० १४ पृष्ठ ४१]

(इ) विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थ श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१७]

६. तत्त्व विचार की महिमा

(अ) देखो तत्वविचार की महिमा! तत्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे; वहुत शास्त्रो का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तपश्चरणादि करे उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नाही और तत्वविचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६०]

(आ) तत्व विचार मे उपयोग को तद्रूप होकर लगाये उससे समय-समय परिणाम निर्मल होते जाते है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६२]

(इ) पुरुपार्थ से तत्व निर्णय मे उपयोग लगाये तब स्वयमेव ही मोह का अभाव होने पर सम्यक्त्वादि रूप मोक्ष के उपाय का पुरुपार्थ वनता है, इसलिए मुख्यता से तो तत्त्व निर्णय मे उपयोग लगाने का पुरुपार्थ करना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१२]

(ई) सो इसका कर्तव्य तत्व निर्णय का अभ्यास ही है इसी से

दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है। उसमे जीव का कर्तव्य कुछ नही। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१४)

७. मिथ्यात्व ही आस्रव है और सम्यक्त्व ही सवर-निर्जरा, मोक्ष हैं

(अ) वास्तव मे मिथ्यात्व ही आस्रव है।

(समयसार नाटक पृष्ठ १५३ आश्रवाधिकार)

(आ) प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव-बन्ध है और मिथ्यात्व का अभाव सम्यक्त्व सवर-निर्जरा तथा मोक्ष है।

(समयसार नाटक पृष्ठ ३१० मोक्षद्वार)

(इ) सिद्धान्य मे मिथ्यात्व को ही पाप कहा है; जब तक मिथ्यात्व रहता है तब तक शुभाशुभ सर्व क्रियाओ को अध्यात्म मे परमार्थत पाप ही कहा जाता है।

(समयसार कलश १३७ के भावार्थ मे पृष्ठ ३०७)

(ई) मिथ्यात्व सम्बन्धी बन्ध जो कि अनन्त ससार का कारण है वही यहाँ प्रधानतया विवक्षित है अविरति आदि से जो बन्ध होता है वह अल्प स्थिति-अनुभाग वाला है दीर्घ ससार का कारण नही है।

(समयसार गा० ७२ के भावार्थ मे पृष्ठ १३३)

(उ) संसार का कारण मिथ्यात्व ही है, इसलिए मिथ्यात्व सबधी रागादि का अभाव होने पर, सर्व भावास्रवो का अभाव हो जाता है यह यहाँ कहा गया है। (समयसार कलश ११४ के भावार्थ मे पृष्ठ २६१)

(ऊ) मिथ्यात्व सहित राग को ही राग कहा है, मिथ्यात्व रहित चारित्र-मोह सम्बन्धी परिणाम को राग नही कहा।

(समयसार कलश १३७ के भावार्थ पृष्ठ ३०८)

(ए) मिथ्यात्व है सो ही ससार है। मिथ्यात्व जाने के बाद ससार का अभाव ही होता है समुद्र मे एक बूंद की गिनती ही क्या है?

(समयसार गा० ३२० के भावार्थ पृष्ठ ४५४)

(ऐ) सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय ना होने से उसे इस प्रकार के भावास्रव तो होते ही नही और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी बन्ध भी नही होता है।

(समयसार गा० १७३ से १७६ तक भावार्थ पृष्ठ २७०)

(ओ) बन्ध के होने मे मुख्य कारण मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी का उदय ही है' अनन्त ससार का कारण मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी ही है उसका अभाव हो जाने पर फिर उनका बन्ध नही होता 'वृक्ष की जड कट जाने पर फिर हरे पत्तो की अवधि कितनी ?

(समयसार कलश १६२ का भावार्थ पृष्ठ ३५६-३५७)

८. प्रयोजन और सब दुःखो का मूल मिथ्यात्व

(अ) जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो तथा दु ख का विनाश हो उस कार्य का नाम प्रयोजन है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६)

(आ) बाह्य अनुकूल सामग्री मिले यह प्रयोजन नही है क्योकि इस प्रयोजन से (अनुकूल सामग्री से) कुछ भी अपना हित नही होता।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८)

(इ) सर्व दु खो का मूल यह मिथ्यादर्शन है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(ई) सर्व बाह्य सामग्री मे इष्ट-अनिष्टपना मानता है, अन्यथा उपाय करता है, सच्चे उपाय की श्रद्धा नही करता, अन्यथा कल्पना करता है सो इन सबका मूल कारण एक मिथ्यादर्शन है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(उ) सब दु खो का मूल कारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असयम है ' मिथ्यादर्शनादिक है वे ही सर्व दु खो का मूल कारण है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४६)

(ऊ) मिथ्यात्व को सप्त व्यसन से भी बडा पाप कहा है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९१)

(ए) इस भव तरू का मूल एक मिथ्यात्व भाव है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २९३)

(ऐ) इस मिथ्यात्व वैरी का अश भी बुरा है इसलिए सूक्ष्म मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९३)

(ओ) सर्व प्रकार के मिथ्यात्वभाव को छोडकर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है क्योकि ससार का मूल मिथ्यात्व है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६७)

(औ) मिथ्यात्वभाव को छोडकर अपना कल्याण करा।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९२)

(अ) यही भाव दु खो के बीज है, अन्य कोई नही। इसलिये हे भव्य। यदि दु खो से मुक्त होना चाहता है तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभावभाव का अभाव करना ही कार्य है, इस कार्य के करने से तेरा परम कल्याण होगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ९४)

(अ) मिथ्यात्व कर्म अत्यन्त अप्रशस्त है। (श्री धवल)

(क) सुख का कारण स्वभाव प्रतिघात का (द्रव्य-भाव घाति कर्म का) अभाव है। (प्रवचनसार गा० ६१ की टीका)

(ख) इस जीव का प्रयोजन तो एक यही है कि दु ख न हो सुख हो। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ७८)

(ग) मोक्षमार्ग के प्रतिपक्षी जो मिथ्यादर्शनादिक उनका स्वरूप बताया। उन्हे तो दुःखरूप, दु ख का कारण जानकर, हेय मानकर उनका त्याग करना मोक्ष के मार्ग जो सम्यग्दर्शनादिक है उन्हे सुखरूप, सुख का कारण जानकर, उपादेय मानकर, अगीकार करना, क्योकि आत्मा का हित मोक्ष ही है।

(घ) दु ख न हो सुख हो, तथा अन्य भी जितने उपाय करते हैं वे सब इसी एक प्रयोजन सहित करते है दूसरा प्रयोजन नही।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०६)

९. भवितव्य

(अ) अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव, आप स्वयं अथवा अन्य सचेतन-अचेतन पदार्थ किसी प्रकार परिणमित हुए, अपने को वह परिणमन बुरा लगा, तब अन्यथा परिणमन करके उस परिणमन का बुरा चाहता है, परन्तु उनका परिणमन उसके आधीन नही है। इस प्रकार क्रोध से बुरा करने की इच्छा तो हो, परन्तु बुरा होना या न होना भवितव्य के आधीन है।

(आ) अन्य कोई अपने से उच्च कार्य करे तो उसे किसी उपाय से नीचा दिखाता है और स्वयं नीचा कार्य करे तो उसे उच्च दिखाता है। इस प्रकार मान से अपनी महतता की इच्छा तो हो, परन्तु महतता होना भवितव्य आधीन है।

(इ) छल-कपट द्वारा अपना अभिप्राय सिद्ध करना चाहता है। इस प्रकार माया से इष्ट सिद्धि के अर्थ छल तो करे, परन्तु इष्ट सिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

(ई) लोभ से इष्ट प्राप्ति की इच्छा तो बहुत करे, परन्तु इष्ट प्राप्ति होना भवितव्य के आधीन है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३९)

(उ) श्री गोमट्टसार कर्मकाण्ड मे पाँच प्रकार के एकान्तवादियो का कथन आता है उनका आशय (गाथा ८७९ से ८८३) इतना ही है कि इनमे से किसी एक से कार्य की उत्पत्ति मानता है वह मिथ्यादृष्टि है और जो कार्य की उत्पत्ति मे इन पाँचो के (स्वभाव, पुरुषार्थ, काल, नियति और कर्म) समवाय को स्वीकार करता है वह सम्यग्दृष्टि है। पण्डित बनारसीदास जी ने नीचे पद के अनुसार इसी तथ्य की पुष्टि की है

पद सुभाव पूरब उदै निहचै उद्यम काल
पच्छपात मिथ्यात्व पथ, सरवंगी शिवचाल ॥४१॥

तथा अष्ट सहस्त्री पृष्ठ २५७ मे अकलक देव ने कहा है .

तादृशी जायते बुद्धि, र्व्यवसायश्च तादृशः ।
सहायास्तादृशाः सन्ति, यादृशी भवितव्या ॥

अर्थ—जिस जीव की जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है उसकी वैसी ही बुद्धि हो जाती है। वह प्रयत्न भी उसी प्रकार का करने लगता है और उसे सहायक भी उसके अनुसार मिल जाते है। इस श्लोक मे भवितव्यता को मुख्यता दी गई है।

प्रश्न—भवितव्यता क्या है ?

उत्तर—जीव की समर्थ उपादान शक्ति का नाम ही तो भवितव्यता है।

प्रश्न—भवितव्यता का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है ?

उत्तर—भवितु योग्य भवितव्यम्, तस्य भाव॰ भवितव्यता।" अर्थात् जो होने योग्य हो उसे भवितव्य कहते है और उसका भाव भवितव्यता कहलाती है।

प्रश्न—भवितव्यता के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं ?

उत्तर—योग्यता, सामर्थ्य, शक्ति, पात्रता, लियाकत, ताकत यह सब भवितव्यता के पर्यायवाची शब्द हैं ?

(जैनतत्वमीमासा पृष्ठ ६५-६६)

(ऊ) यदि इनकी सिद्धि हो तो कषाय का उपशमन होने से दु ख दूर हो जावे, सुखी हो, परन्तु उनकी सिद्धि इसके किये उपायो के आधीन नही है। भवितव्य के आधीन है, क्योकि अनेक उपाय करते देखते हैं, परन्तु सिद्धि नही होती, तथा उपाय होना भी अपने आधीन नही हैं, भवितव्य के आधीन है, क्योकि अनेक उपाय करने का विचार करता है और एक भी उपाय नही होता है, तथा काकतालीय न्याय से भवितव्य ऐसा ही हो जैसा अपना प्रयोजन हो, वैसा ही उपाय हो, और उससे कार्य की सिद्धि भी हो जावे। तो उस कार्य सम्बन्धी किसी कषाय का उपशम हो।" (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५६)

(ए) इस प्रकार कार्य की उत्पत्ति के पूरे कारणों पर दृष्टिपात करने से भी यही फलित होता है कि जहां पर कार्य की उत्पत्ति अनुकूल द्रव्य का स्ववीर्य रूप उपादान शक्ति होती है वहां अन्य साधन सामग्री स्वयमेव मिल जाती है उसे मिलाना नहीं पडता है। जैन दर्शन मे कार्य की उत्पत्ति के प्रति उपादान और निमित्त होता है उसका ज्ञान कराया गया है। (जैनतत्वमीमासा पृष्ठ ६७)

(ऐ) वास्तव मे भवितव्यता उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण है। जो भी कार्य होना है उस समय पर्याय की योग्यता ही साक्षात् साधक है दूसरा कोई नही। प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति मे उसकी उस समय पर्याय की योग्यता ही है, ऐसा जानकर स्वभाव की दृष्टि करे तो जीव का कल्याण हो। जो कोई मात्र भवितव्यता की बातें करे अपनी ओर दृष्टि ना करे। तो उसने भवितव्यता को माना ही नहीं, एक कार्य मे अनेक कारण होते हैं। कार्य हमेशा उस समय पर्याय की योग्यता मे होता है और निमित्त भी स्वयं उस समय पर्याय की योग्यता मे होता ही है लाना-मिलाना नहीं पडता।

प्रश्न—भवितव्यता को किसने माना ?

उत्तर—जिसने अपने स्वभाव की सन्मुखता की उसने भवितव्यता को माना, दूसरो ने नहीं माना।

१०. जीव स्वयं नित्य ही हैं

(अ) आयुकर्म के उदय से मनुष्यादि पर्यायो की स्थिति रहती है। आयु का क्षय हो तब उस पर्यायरूप प्राण छूटने से मरण होता है। दूसरा कोई उत्पन्न करने वाला, क्षय करने वाला या रक्षा करने वाला है नहीं, ऐसा निश्चय करना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४२]

(आ) शरीर सम्बन्ध की अपेक्षा जन्मादिक है। जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। तथापि मोही जीव को अतीत-अनागत का विचार

नही है इसलिए अज्ञानी प्राप्त पर्याय मात्र ही अपनी स्थिति मानकर पर्याय सम्बन्धी कार्यों मे ही तत्पर हो रहा है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४३]

(इ) इस लोक मे जो जीवादि पदार्थ हैं वे न्यारे-न्यारे अनादि-निधन हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ११०]

(ई) अमूर्तिक प्रदेशो का पुन्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो सहित, अनादिनिधन, वस्तु आप है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३८)

११. संसारी जीवो का सुख के लिये झूठा उपाय

(अ) पर युक्त बाधा सहित, खण्डित, बंध कारण विषम छे।
जे इन्द्रियोंथी लब्ध ते, सुख ये रीते दु'ख ज खरे।।७६।।

जो इन्द्रियो से प्राप्त किया सुख है, वह पराधीन है, बाधा सहित है, विनाशीक है, बन्ध का कारण है, विषम है, सो ऐसा सुख इस प्रकार दु:ख ही है। (प्रवचनसार गा० ७६)

(आ) नहि मानतो-ये रीते, पुण्ये पाप माँ न विशेष छे।
ते मोहथी आच्छन्न घोर अपार ससारे भमे।।७७।।

इस प्रकार पुण्य और पाप मे फर्क नही है ऐसा जो नही मानता, वह मोहाच्छादित होता हुआ, घोर अपार ससार मे परिभ्रमण करता है (क्योंकि पुण्य पाप दोनो आत्मा का धर्म नही और शुद्धोपयोग शक्ति का तिरस्कार करने वाले हैं।) (प्रवचनसार गा० ७७)

(इ) सूणी घाति कर्म विहीननु, सुख सौ सुख उत्कृष्ट छे।
श्रद्धे न तेह अभव्य छे, ने भव्य ते सम्मत करे।।६२।।

टीका मे—इस लोक मे मोहनीय आदि कर्मजाल वालो को स्वभाव प्रतिघात के कारण और आकुलता के कारण 'सुखाभास' होने पर भी 'सुख' कहने की अज्ञानियो की अपरमार्थिक रूढि है।

(प्रवचनसार गा० ६२)

(ई) मिथ्यादृष्टि ससारी जीव द्वारा किये गये उपाय झूठे जानना। तो सच्चा उपाय क्या है ?

(१) जब इच्छा दूर हो जावे और (२) सर्व विषयो का युगपत् ग्रहण बना रहे तब यह दु ख मिटे। सो इच्छा तो मोह जाने पर मिटे और सब का युगपत ग्रहण केवलज्ञान होने पर हो। इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है और वही सच्चा उपाय जानना।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५०)

(उ) सज्ञी पचेन्द्रिय कदाचित् तत्व निश्चय करने का उपाय विचारे, वहाँ अभाग्य से कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का निमित्त बने तो अतत्व श्रद्धान पुष्ट हो जाता है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(ऊ) कदाचित सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र का भी निमित्त बन जाये तो वहाँ उनके निश्चय उपदेश का तो श्रद्धान नही करता, व्यवहार श्रद्धान से अतत्व श्रद्धानी ही बना रहता है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५१)

(ए) अज्ञानी जीव पर पदार्थों को अपनी इच्छानुसार परिणमाना चाहता है वह बन नही सकता, क्योकि प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है किसी के परिणमाये से परिणमती नही।

(ऐ) मिथ्यादृष्टि होकर पदार्थो को अन्यथा माने, अन्यथा परिणमित कराना चाहे तो आप ही दु खी होता है। उन्हे यथार्थ मानना और यह परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नही होगे ऐसा मानना, सो ही दु ख दूर होने का उपाय है। भ्रमजनित दु ख का उपाय भ्रम दूर करना ही है सो भ्रम दूर होने पर सम्यक् श्रद्धान होता है वही सत्य उपाय जानना। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५२)

(ओ) आशारूपी गड्ढा प्रत्येक अज्ञानी प्राणी मे पाया जाता है। विषयो से इच्छापूर्ण होती नही। इसका अभिप्राय तो सर्व कषायो का सर्व प्रयोजन सिद्ध करने का है, वह हो तो वह सुखी हो, परन्तु वह कदापि नही हो सकता है इसलिए अभिप्राय मे सर्वदा दु खी ही रहता

है। इसलिए कषायो के प्रयोजन को साधकर दु ख दूर करके सुखी होना चाहता है, सो यह उपाय झूठा ही है। तो सच्चा उपाय क्या है ? सम्यग्दर्शन ज्ञान से यथावत् श्रद्धान और जानना हो तब इष्ट-अनिष्ट बुद्धि मिटे। तब कषाय जन्य पीडा दूर हो, निराकुल होने से महासुखी हो। इसलिए सम्यग्दर्शनादिक ही यह दु ख मेटने का सच्चा उपाय है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५७)

(औ) व्यवहार धर्म कार्यों मे प्रवर्ते तब अवसर तो चला जावेगा और ससार मे ही भ्रमण करेगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१३)

(अ) कितने ही धर्म बुद्धि से धर्म साधते है, परन्तु निश्चय धर्म को नहीं जानते इसलिए अभूतार्थ धर्म को ही साधते हैं।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२१)

१२. बाह्य सामग्री से सुख-दु ख मानना यह भ्रम है

(अ) बाह्य सामग्री से सुख-दु ख मानते हैं सो ही भ्रम है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ५६)

(आ) आकुलता घटना-बढना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नही। कषाय भावो के घटने-बढने के अनुसार है। × ×

(इ) आकुलता का घटना-बढना रागादिक कषाय घटने-बढने के अनुसार है तथा पर द्रव्य रूप सामग्री के अनुसार सुख-दु ख नही है।

(ई) ×बाह्य सामग्री से किंचित् सुख-दु ख नही है×

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३०६)

(उ) सुखी-दु खी होना इच्छा के अनुसार जानना, बाह्य कारण के आधीन नही। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ७१)

(ऊ) पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से क्रोधादिक होते हैं, जब तत्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हो, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक उत्पन्न नही होते, तब सच्चा धर्म होता है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६)

(ए) सामग्री के अनुसार(आधीन)सुख-दुःख नही है साता-असाता का उदय होने पर मोह के परिणमन के निमित्त से ही सुख-दुख मानते है।

(ऐ) निर्धार करने पर मोह ही से सुख-दुःख मानना होता है; औरो के द्वारा सुख-दुःख होने का नियम नही।

(ओ) तू सामग्री को दूर करने का या होने का उपाय करके दुःख मिटाना चाहता है और सुखी होना चाहता है सो यह उपाय झूठा है। तो सच्चा उपाय क्या ? सम्यग्दर्शनादि मे भ्रम दूर हो तब सामग्री से सुख-दुःख भासित नही होता, अपने परिणामो से ही भासित होता है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६०)

(औ) जो अपने को सुखदायक हो, उपकारी हो उसे इष्ट कहते हैं तथा जो अपने को दुःखदायक हो, अनुपकारी हो उसे अनिष्ट कहते है। लोक मे सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं कोई किसी को सुख-दुःखदायक उपकारी-अनुपकारी है नही।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८६]

(अ) कषायभाव होते है सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते है सो इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्या बुद्धि है क्योकि कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नही। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८६]

(अः) पर द्रव्यो का दोष देखना मिथ्या भाव है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४३]

(क) प्रथम तो पर द्रव्यो को इष्ट-अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, क्योकि कोई द्रव्य किसी का मित्र-शत्रु है नही।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १७५]

(ख) पर द्रव्यो को इष्ट-अनिष्ट मानकर रागद्वेष करना मिथ्यात्व है क्योकि ससार का कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट होता तो मिथ्यात्व नाम नही पाता। परन्तु कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नही है और यह इष्ट-

अनिष्ट मानकर राग-द्वेप करता है इसलिए इस परिणमन को मिथ्यात्व कहा है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६०]

(ग) इसलिए सुख-दुःख का मूल बलवान कारण (निमित्त) मोह का उदय है। अन्य वस्तुये है वह बलवान (निमित्त) कारण नही हैं (निमित्त की अपेक्षा कथन है)। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४२)

१३. पुद्गलादि पर पदार्थों का कर्ता-हर्ता आत्मा नहीं

(अ) जो कर्म के उपशमादिक हैं यह पुद्गल की शक्ति है उसका आत्मा कर्ता-हर्ता नही है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३११)

(आ) तत्व निर्णय न करने मे किसी कर्म का दोष है नही, तेरा ही दोष है, परन्तु तू स्वय तो महन्त रहना चाहता है अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नही है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१२)

(इ) इसका तो कर्त्तव्य तत्व निर्णय का अभ्यास ही है, इसी से दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है उसमे जीव का कर्त्तव्य कुछ नही है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१४)

(ई) यहाँ कर्म के उपशमादिक से उपशमादि सम्यक्त्व कहे, सो कर्म के उपशमादिक इसके करने से नही होते।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३४०)

(उ) जसे—कोई अपने हाथ से पत्थर लेकर अपना सिर फोड ले तो पत्थर का क्या दोष ? उसी प्रकार जीव अपने रागादिक भावो से पुद्गल को कर्मरूप परिणमित करके अपना बुरा करे, तो कर्म का क्या दोष ? (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६०)

(ऊ) आप कर्मो के उपशमादि करना चाहे तो कैसे हो ? आप तो तत्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करे, उससे स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त्व होते हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७७)

(ए) तत्व विचारादिक का तो उद्यम करे और मोहकर्म के उपशमादिक स्वयमेव हो तब रागादिक दूर होते हैं।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १६७)

(ऐ) पर द्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाए, परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नही। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५२)

(ओ) बाह्य व्रतादिक हैं वे तो शरीरादि पर द्रव्य के आश्रित हैं, पर द्रव्य का आप कर्ता है नही। इसलिए उसमे कर्तापने की बुद्धि भी नही करना और वहा ममत्व भी करना।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५)

(औ) पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता होना तथा साक्षीभूत रहना यह परस्पर विरुद्ध है। साक्षीभूत तो उसका नाम है जो स्वयमेव जैसा हो उसी प्रकार देखता जानता रहे, परन्तु जो इष्ट-अनिष्ट मानकर किसी को उत्पन्न करे और नाश करे तो साक्षीभूत कैसे कहा जा सकता है। कभी नही। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १०६)

(अ) कर्म के उदय से जीव को विकार होता है। यह मान्यता भ्रम मूलक है 'हे मित्र ! × × × पर द्रव्य ने मेरा द्रव्य मलिन किया जीव स्वय ऐसा झूठा भ्रम करता है। × × तू उनका दोष जानता है, यह तेरा हरामजादीपना है।' (आत्मावलोकन पृष्ठ १४३)

(अ) समयसार कलश ५१, ५२, ५३, ५४, ५६, १६६, २००, २०१ मे स्पष्ट समझाया है कि जीव शरीरादि पर द्रव्य की क्रिया नही कर सकता है। और निमित्त से सचमुच कार्य होता है, ऐसा मानना भ्रम है।

(क) मैं पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता हू ऐसी मान्यता वाला पद पद पर धोखा खाता है। (प्रवचनसार गा० ५५)

(ख) पर द्रव्य का मैं करता हूँ यह अज्ञान मोह अज्ञान अन्धकार है उसका सुलटना अत्यन्त दुर्निवार है। (समयसार कलश ५५)

(ग) मैं पर द्रव्य का करा सकता हूँ यह सम्यक्त्व से रहित पुरुषो का व्यवहार है। (समयसार गा० ३२४ से ३२७ की टीका)

(घ) जो व्यवहार के कथन को निश्चय का कथन मानता है उसके लिए "तस्य देशना नास्ति" कहा है। (पुरुषार्थसिद्धिउपाय गा० ६)

(ङ) व्यवहार से लोग आत्मा को घडा, वस्त्र, इन्द्रियो, द्रव्यकर्म और शरीरादि नोकर्म का करता है ऐसा मानना व्यवहारी जीवो का व्यामोह (भ्रान्ति अज्ञान) है। (समयसार गा० ९८)

१४. इच्छा का प्रकार और दु ख

(अ) दु ख का लक्षण आकुलता है और आकुलता इच्छा होने पर होती है। अज्ञानी जीवो को अनेक प्रकार की इच्छा पायी जाती है—

(आ) विपय ग्रहण की इच्छा—इन्द्रियो के विषय पुद्गल पदार्थों को जानने-देखने की इच्छा होती है अर्थात् भिन्न-भिन्न रग रूप देखने की, राग सुनने की इस इच्छा का नाम विषय है।

(इ) एक इच्छा कषाय भावो के अनुसार कार्य करने की है—जैसे किसी का बुरा करने को, उसे नीचा दिखाने की इच्छा होती है, जब तक यह कार्य ना हो तब तक महाव्याकुल रहता है, इस इच्छा का नाम कषाय है।

(ई) एक इच्छा पाप के उदय से शरीर मे या बाह्य अनिष्ट कारण मिलते हैं, उनको दूर करने की होती है। जब तब वह दूर न हो तब तक महाव्याकुल रहता है, इस इच्छा का नाम पाप का उदय है।

इस प्रकार इन तीन प्रकार की इच्छा होने पर सभी मिथ्यादृष्टि दु ख मानते हैं सो दु ख ही हैं। इन तीन प्रकार की इच्छाओ मे एक-एक प्रकार की इच्छा के अनेक प्रकार हैं।

(उ) कितने ही प्रकार की इच्छा पूर्ण होने के कारण पुण्योदय से मिलते हैं, परन्तु उनका साधन एक साथ नही हो सकता है। इसलिए

एक को छोड़कर अन्य में लगता है, फिर भी उसे छोडकर अन्य मे लगता है, जैसे किसी को अनेक प्रकार की सामग्री मिली, वहाँ वह किसी को देखता है, उसे छोडकर राग सुनता है, फिर उसे छोड़कर किसी का बुरा करने लग जाता है, उसे छोडकर भोजन करता है अथवा देखने मे ही एक को देखकर अन्य को देखता है। इसी प्रकार अनेक कार्यों की प्रवृत्ति मे इच्छा होती है इस इच्छा का नाम पुण्य का उदय है इसे जगत सुख मानता है, परन्तु यह सुख है नहीं, दुख ही है।

(ऊ) देवादिको को भी सुखी मानते हैं वह भ्रम ही है। उनके चौथी इच्छा की मुख्यता है इसलिए आकुलित है।

इस प्रकार जो इच्छा होती है वह मिथ्यात्व-अज्ञान-असयम से होती है।

(ए) जव मिथ्यात्व, अज्ञान, असयम का अभाव हो और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति हो तो इच्छा दूर हो इसलिए इस कार्य का उद्यम करना योग्य है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६९ से ७१]

(ऐ) आत्मा का भला सुख पाने मे है और सुख उसे कहते है जिसमे आकुलता, चिन्ता, क्लेप ना हो। आकुलता मोक्ष मे नही है, इसलिए मोक्ष मे लगना चाहिए। सम्यग्दशन-ज्ञान-चारित्र इन तीनो की एकता ही मोक्ष का मार्ग है उसका कथन दो प्रकार से है। जो यथार्थ निश्चय स्वरूप है वह निश्चय है और निश्चय का निमित्त कारण है वह व्यवहार है। [छहढाला तीसरी ढाल का पहला काव्य]

१५ परम कल्याण

(अ) मिथ्यादृष्टि जीव एक-एक समय करके अनादि से मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हो रहा है। इसी परिणमन से ससार मे अनेक प्रकार का दुख उत्पन्न करने वाले कर्मों का सम्बन्ध

पाया जाता है। यही भाव दुखो के बीज हैं अन्य कोई नही। इसलिए हे भव्य ! यदि दुःखो से मुक्त होना चाहता है तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभाव भावो का अभाव करना ही कार्य है; इस कार्य के करने से तेरा परम कल्याण होगा। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ६४]

(आ) इस जीव का मुख्य कर्तव्य आगम ज्ञान है उसके होने से तत्वो का श्रद्धान होता है, तत्वो का श्रद्धान होने से सयम भाव होता है और उस आगम से आत्मज्ञान की भी प्राप्ति होती है तब सहज ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म के अनेक अग हैं उनमे ध्यान बिना उससे ऊँचा और धर्म का अग नही है इसलिए जिस-तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है इसके अभ्यास मे प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २०]

(इ) हे भव्य ! तू यह मान कि 'मेरे अनादि से एक-एक समय करके ससार रोग पाया जाता है उसके नाश का उपाय (अपने त्रिकाली के आश्रय से) मुझे करना" इस विचार से तेरा कल्याण होगा।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४४)

(ई) हे भव्य ! तू ससार से छूटकर सिद्धपद प्राप्त करने का हम जो उपाय कहते है वह कर, बिलम्ब मत कर। यह उपाय करने से तेरा कल्याण होगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ७५)

(उ) अन्य सब मत मिथ्यादर्शनादिक के पोषक हैं तो त्याज्य हैं। सच्चे जिनधर्म का स्वरूप जानकर उसमे प्रवर्तन करने से तुम्हारा कल्याण होगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक १६७)

(ऊ) इसलिए बहुत कहने से क्या ? सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है वर्तमान मे (दिगम्बर धर्म मे भी) इनकी प्रवृत्ति विशेष पाई जाती है। इसलिए उसे जानकर मिथ्यात्व भाव को छोडकर अपना कल्याण करो।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९२)

(ए) सर्व प्रकार के मिथ्यात्व भाव को छोडकर सम्यग्दृष्टि होना

योग्य है। ससार का मूल मिथ्यात्व है मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नही है। मिथ्यात्व का अभाव होने पर शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त करता है। इसलिए जिस तिस प्रकार से सर्व प्रकार से मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६७)

(ऐ) मोक्षमार्ग मे पहला उपाय आगम ज्ञान कहा है, आगम ज्ञान विना धर्म का साधन नही हो सकता, इसलिए तुम्हे भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा परम कल्याण होगा।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३०५)

(ओ) हे भव्य! इतना ही सत्य कल्याण (आत्मा) है जितना यह ज्ञान है ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र से ही, सदा ही रति प्राप्त कर इससे तुझे वचन अगोचर ऐसा सुख प्राप्त होगा और उस सुख को उसी क्षण तू ही स्वयमेव देखेगा। दूसरो से पूछना नही पडेगा।

(समयसार गा० २०६)

१६. प्रत्येक जीव आत्मा भिन्न-भिन्न हैं

(अ) प्रत्येक जीव आत्मा को भिन्न भिन्न मानता है सो यह तो सत्य है। परन्तु मुक्त होने के पश्चात् भी भिन्न ही मानना योग्य है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १२८)

(आ) इस लोक मे जो जीवादि पदार्थ हैं वे न्यारे-न्यारे अनादि-निधन हैं, तथा उनकी अवस्था का परिवर्तन होता रहता है, उस अपेक्षा से उत्पन्न-विनष्ट कहे जाते हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ११०)

(इ) एक जीव द्रव्य, उसके अनन्त गुण, अनन्त पर्याये एक-एक गुण के असख्यात् प्रदेश, एक-एक प्रदेश मे अनन्त कर्मवर्गणाये, एक-एक कर्म वर्गणा मे अनन्त-अनन्त पुद्गल परमाणु, एक-एक पुद्गल परमाणु अनन्त-गुण अनन्त-पर्याय सहित विराजमान हैं। यह एक ससार अवस्थित जीव पिण्ड की अवस्था। इसी प्रकार अनन्त जीव द्रव्य ससार अवस्था मे सपिण्ड रूप जानना (और मोक्ष मे प्रत्येक जीव

जुदा-जुदा अनन्त गुण और पर्याय सहित अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मे विराजमान है)

(मोक्षमार्गप्रकाशक परमार्थ वचनिका पृष्ठ १०)

१७ जीव का सदैव कर्त्तव्य

(अ) जोवाजोवादीना तत्वार्थाना सदैव कर्तव्यम् ।
श्रद्धान विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूप तत् ॥२२॥

जीव अजीवादि तत्वार्थों का विपरीत अभिनिवेश रहित अर्थात् अन्य को रूप समझने अन्यरूप जो मिथ्याज्ञान है उससे रहित श्रद्धान निरन्तर ही करना कर्तव्य है, क्योकि वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है। (पुरुपार्थसिद्धयुपाय गाथा २२)

(आ) विपरीताभिनिवेश से रहित जीव-अजीवादि तत्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। यह श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर होने पर प्रगट होता है, इसलिए आत्मा का स्वभाव है। चतुर्थादि गुण स्थान मे प्रगट होता है पश्चात् सिद्ध अवस्था मे भी सदाकाल इसका सद्भाव रहता है ऐसा जानना।

(मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२० से ३२१)

१८. सर्व उपदेश का तात्पर्य

(अ) ससार अवस्था मे पण्य के उदय से इन्द्र अहमिन्द्रादि पद प्राप्त करे, तो भी निराकुलता नही होती, दु खी ही रहता है, इसलिए ससार अवस्था हितकारी नही है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१०)

(आ) मोक्ष अवस्था मे किसी भी प्रकार की आकुलता नही रही, इसलिए आकुलता मिटाने का उपाय करने का भी प्रयोजन नहो है। सदाकाल शान्तरस से सुखी रहते हैं, इसलिए मोक्ष अवस्था ही हितकारी है। पहले भी ससार अवस्था के दु ख का और मोक्ष अवस्था के सुख का विशेष वर्णन किया है, वह इसी प्रयोजन के अर्थ किया है।

उसे भी विचारकर मोक्ष का हितरूप मानकर मोक्ष का उपाय करना सर्व उपदेश का तात्पर्य इतना है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१०)

(इ) यह अवसर चूकना योग्य नही है। अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। इसलिये श्री गुरु-दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश दे, उसमे भव्य जीवो को प्रवृत्ति करना। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१५)

(ई) तत्वार्थ श्रद्धान करने का अभिप्राय केवल उनका निश्चय करना मात्र ही नही है, यहाँ अभिप्राय ऐसा है कि जीव-अजीव को पहिचानकर अपने को तथा पर को जैसा का तैसा माने, तथा आस्रव को पहिचान कर उसे हेय माने, तथा बन्ध को पहिचानकर उसे अहित का कारण माने, सवर को पहिचान कर उसे उपादेय माने, तथा निर्जरा को पहिचान कर उसे हित का कारण माने तथा मोक्ष को पहिचानकर उसको अपना परम हित माने। ऐसा तत्वार्थ श्रद्धान का अभिप्राय है। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२०)

(उ) आश्रय करने के लिये एक मात्र अपना त्रिकाली एक परम शुद्ध पारिणामिक भाव ही है यह परम उपादेय है। सवर-निर्जरा एक देश प्रगट करने के लिए उपादेय है मोक्ष पूर्ण प्रगट करने के लिए उपादेय है; हित का कारण है परमहित है परन्तु आश्रय करने के लिए नही है। आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप हेय है और अजीव ज्ञेय हैं।

(नियमसार गा० ३८ से५० तक)

(ऊ) अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति, जिनागमस्य संक्षेप ॥ ४४ ॥

अर्थ—वास्तव मे राग आदि भावो का प्रगट न होना यह अहिसा है और उन्ही रागादि भावो की उत्पत्ति होना हिंसा है। यही जैन सिद्धान्त का सक्षिप्त रहस्य है। [पुरुषार्थसिद्धयुपाय गा० ४४]

(ए) जीव जुदा हैं, पुद्गल जुदा हैं यही तत्व का सार है अन्य जो कुछ कथन है सब इसी का विस्तार है। [इष्टोपदेश गा० ५०]

(ऐ) लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, नित आतम ध्यावो ॥
[छहढाला चौथी ढाल]

(ओ) निश्चय धर्म तो मात्र वीतरागभाव है यह ही धर्म है यह जिनागम का सार है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

(औ) मिथ्यात्व ही ससार है सम्यक्त्व ही मोक्ष है।
[सर्व शास्त्रो का रहस्य]

१६. सम्यग्दर्शन

(अ) विपरीताभिनिवेशरहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष यह सात तत्त्वार्थ है। इनका जो श्रद्धान ऐसा ही है, अन्यथा नही है, ऐसा प्रतीतिभाव सो तत्वार्थश्रद्धान तथा विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय उससे रहित सो सम्यग्दर्शन है।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१७]

(आ) जो तत्वार्थ श्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है वही सम्यग्दर्शन है।

(ई) विपरीताभिनिवेश से रहित जीव अजीवादि तत्वार्थो का श्रद्धान सदाकाल करने योग्य है यह श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है।
[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२०]

(इ) सम्यग्दर्शनरूप श्रद्धान का बल इतना है कि केवली सिद्ध भगवान रागादिरूप परिणमित नही होते, ससार अवस्था को नही चाहते। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२४]

(उ) सच्चा तत्वार्थ श्रद्धान, व आपा पर का श्रद्धान व आत्मश्रद्धान व देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान यह सम्यक्त्व का लक्षण है इन सर्व लक्षणो मे परस्पर एकता भी है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२६]

(ऊ) श्री अरहन्त देव के जो गुण कहे है उनमे कितने तो विशेपण

पुद्गलाश्रित हैं और कितने ही जीवाश्रित है। जीव के यथावत् विशेपण जाने तो मिथ्यादृष्टि न रहे। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २२१]

(ए) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग वह ही मुनियो का सच्चा लक्षण है। उसकी पहिचान हो जावे तो मिथ्यादृष्टि रहे नही। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २२३]

(ऐ) वीतरागी शास्त्रो मे अनेकान्तरूप सच्चे जीवादि तत्वो का निरूपण है और सच्चा रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग दिखलाया है उसीसे जैन शास्त्रो की उत्कृष्टता है। उसकी पहिचान हो जावे तो मिथ्यादृष्टि-पना रहता नही। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २२४]

(ओ) सर्व प्रकार प्रसिद्ध जानकर विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थो का श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व का लक्षण है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३३२]

(औ) जो वास्तव मे अरहन्त देव को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह वास्तव मे आत्मा को जानता है। उसी समय त्रिकाली आत्मा को समझ लेने वाला जीव चिद्‌विवर्तो (पर्याय) को ही चेतन (द्रव्य) मे ही अन्तर्गत करके, चैतन्य (गुण) को चेतन (द्रव्य) मे ही अन्तर्हित करके केवल आत्मा को जानता है। उसको कर्ता, कर्म, क्रिया का विभाग क्षय को प्राप्त हो जाने से निष्क्रय (रागरहित) चिन्मात्र भाव (निर्विकल्प दशा) को प्राप्त हो जाता है यह सम्यग्दर्शन है। यह निर्विकल्प तथा निष्क्रिय दशा है।

[प्रवचनसार गा० ८०]

(अ) ज्ञेय अधिकार मे सम्यक्त्व की व्याख्या करी है—

तम्हा तस्स णमाई किच्चा णिच्चपि तं मणो होज्ज।
वोच्छामि संग हादो परमट्ठ विणिच्छयाधिगमं ॥१॥

अर्थ—क्योकि सम्यग्दर्शन के बिना साधु होता ही नही है। इस कारण से उस सम्यक्त्व सहित सम्यक्‌चारित्र से युक्त साधु को नमस्कार करके नित्य ही उन साधुओ को मन मे धारण करके

परमार्थ एक शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावरूप परमात्मा है। उसको विशेष करके सशय आदि से रहित निश्चय कराने वाले सम्यक्त्व को अथवा अनेक धर्मरूप पदार्थों के समूह का अधिगम जिसमे होता है उसको सक्षेप मे कहूंगा। (वहाँ जिन परमात्मा को परमार्थ शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव रूप है उसकी श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य ज्ञेय अधिकार के शुरू मे]

(अ) "दर्शनमात्मविनिश्चिति" अर्थात् अपनी आत्मा का श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा है और विनिश्चित का अर्थ अपनी आत्मा किया है।

[पुरुषार्थसिद्धि उपाय गा० २१६]

(क) आ जाणी, शुद्धात्मा बनी ध्यावे परम निज आत्मने।
साकार अण-आकार हो, ते मोहग्रंथी क्षय करे ॥१९४॥

टीका—इस यथोक्त (गा० १९२-१९३) विधि द्वारा शुद्ध आत्मा को जो ध्रुव जानता है। उसको उसमे ही लीनता द्वारा शान्ति-आनद रूप शुद्धात्म तत्व प्राप्त होता है। इसलिए अनन्त शक्ति वाला चैतन्यमात्र परम आत्मा मे एकाग्रसचेतन लक्षण ध्यान होता है। उससे साकार उपयोग वाला व अनाकार उपयोग वाले को अविशेष रूप से एकाग्र सचेतन की प्रसिद्धि होने से अनादि ससार से बँधी हुई अतिदृढ मोह दुर्ग्रथी छूट जाती है। इस प्रकार दर्शनमोहरूपी गाँठ का भेदना-तोडना वह शुद्धात्मा की उपलब्धि का फल है।

[प्रवचनसार गा० १९४ को टीका सहित]

(ख) सम्यग्दृष्टि का ज्ञान, (i) आनन्दरूपी अमृत का नित्य भोजन करने वाला है, (ii) अपनी जाननेरूप क्रिया सहज अवस्था को प्रगट करने वाला, (iii) धीर है, (iv) उदार (अर्थात् महान विस्तार वाला, निश्चित है) है। (v) अनाकूल है (अर्थात् जिसमे किंचित् भी आकुलता का कारण नही है)। (vi) उपाधि रहित (अर्थात् परिग्रह या जिसमे कोई पर द्रव्य सम्बन्धी ग्रहण-त्याग नही है) है। सम्य-

दर्शन होते ही अमृतरूप आनन्द प्रगट होता है वह जीव उसे हर समय भोगता है। [समयसार कलश १६३]

(ग) जब आत्मा ज्ञानी होता है तब ज्ञान के कारण ज्ञान के प्रारम्भ से (चौथे गुण स्थान से) लेकर पृथक्-पृथक् स्वाद का अनुभव होने से (पुद्गल कर्म और अपने स्वाद का एक रूप नही, किन्तु भिन्न-भिन्न रूप अनुभव होने से) जिसकी भेद सवेदन शक्ति प्रगट हो गई है ऐसा होता है इसलिए वह जानता है कि "अनादिनिधन, निरन्तर स्वाद मे आने वाला, समस्त अन्य रसो से (शुभाशुभ भावो से) विलक्षण (भिन्न), अत्यन्त मधुर चैतन्य रस ही एक जिसका (अनाकुलता) रस है ऐसा आत्मा है और कषाये (शुभाशुभभाव) उससे (आत्मा मे) भिन्न रस वाली है, उनके साथ (शुभाशुभ और आत्मा मे) जो एकत्व का विकल्प करना है वह अज्ञान से है।"

इस प्रकार पर को (शुभाशुभभाव) और अपने को भिन्नरूप जानता है, इसलिए अकृत्रिम (नित्य) एक ज्ञान ही मैं हूँ, किन्तु कृत्रिम (अनित्य) अनेक जो क्रोधादिक है यह मैं नही हूँ, ऐसा जानता हुआ 'मै क्रोध हूँ इत्यादि आत्म विकल्प भी किंचित मात्र भी नही करता' इसलिए समस्त (द्रव्य कर्म, नोकर्म, भाव कर्म के) कर्तृत्व को छोड देता है, अत सदा ही उदासीन (निर्विकल्प) अवस्था वाला होता हुआ मात्र जानता ही रहता है, और इसलिए निर्विकल्प, अकृत्रिम, एक विज्ञाघन होता हुआ अत्यन्त अकर्ता प्रतिभासित होता है।

[समयसार गा० ९७ की टीका पृष्ठ १७२]

(घ) जब यही आत्मा जिनाज्ञा द्वारा मार्ग को प्राप्त करके उपशान्त क्षीण मोहपने के कारण (दर्शन मोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम के कारण) जिसे विपरीत अभिनिवेश नष्ट हो जाने से सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट हुई है ऐसा होता हुआ कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके सम्यक्‌रूप से प्रगट प्रभुत्व शक्तिवान होता हुआ ज्ञान का ही अनुसरण करने वाले मार्ग मे विचरता है (प्रवर्तता है,

परिणमित होता है, आचरण करता है) तब वह विशुद्ध आत्मतत्व की उपलब्धि रूप अपवर्ग नगर को (मोक्षपुर को) प्राप्त करता है।

[पचास्तिकाय गा० ७० की टीका से]

[यहाँ उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने पर जीव जिनाज्ञा द्वारा मार्ग को प्राप्त हुआ अर्थात् चौथे गुणस्थान से मार्ग प्राप्त होता हुआ जैसे-जैसे अपने स्वभाव को एकाग्रता करता जाता है वैसे-वैसे श्रावक, मुनि, श्रेणी, सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेता है क्योकि उसको सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट हो गई है।]

(च) ऐसे दर्शन मोह के अभावतै सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थज्ञान प्रगट होय है। अरु अनन्तानुबन्धी के अभावतै स्वरूपाचरण चरित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होय है। यद्यपि अप्रत्याख्यानावरण के उदयतै देश-चारित्र नाहि भया है अरु प्रत्याख्यानावरण का उदयतै सकल चारित्र नाही प्रगट भया है। तो हूँ सम्यग्दृष्टि के देहादिक पर द्रव्य तथा राग-द्वेपादिक कर्म जनित परभाव इनमे दृढ भेद विज्ञान ऐसा भया है जो अपना ज्ञानदर्शनरूप ज्ञानस्वभाव ही मे आत्म-बुद्धि धारनेंतै अरु पर्याय मे आत्मबुद्धि स्वप्न मे हूँ नाहि होने से ऐसा चिन्तवन करै हैं, हे आत्मन! अष्ट प्रकार स्पर्श··· · · · ·ये समस्त कर्म का उदय जनित विकार है मेरा स्वरूप तो ज्ञाता-दृष्टा है।

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार गा० ४१ की टीका पृष्ठ ६८-६६]

(छ) स्वसम्वेदन ज्ञान प्रथम अवस्था मे चौथे, पाँचवे गुणस्थान वाले गृहस्थ के भी होता है। वहाँ पर सराग देखने मे आता है इसलिए रागसहित अवस्था के निषेध के लिए वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञान ४-५ वें गुणस्थानी को प्रगट हुआ है।

[परमात्मा प्रकाशक गा० १२ की टीका पृष्ठ २१]

(ज) मिथ्यात्व तथा राग आदि को जीतने के कारण असयत सम्यग्दृष्टि आदि एकदेशी जिन है।

[वृहत द्रव्यसग्रह गाथा १, टीका पृष्ठ ५]

(झ) स्वाभाविक अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुण का आधारभूत निज परमात्मद्रव्य उपादेय है तथा इन्द्रिय सुख आदि (द्रव्य कर्म, नोकर्म, भावकर्म) परद्रव्य त्याज्य है इस तरह सर्वज्ञदेव प्रणीत निश्चय व्यवहारनय को साध्य-साधक भाव से जानता है।' यह अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती का लक्षण है।

[वृहत द्रव्य सग्रह गा० १३ की टीका पृष्ठ ४०]

(ञ) 'जीवादि सद्दहण सम्मत्त' वीतराग सर्वज्ञ देव द्वारा कहे हुए शुद्ध जीव आदि तत्वो मे चल, मलिन, अगाढ दोष रहित श्रद्धान, रुचि अथवा 'जो जिनेन्द्र ने कहा वही है जिस प्रकार से जिनेन्द्र ने कहा है उसी प्रकार है।' ऐसी निश्चयरूप बुद्धि (निर्णयरूप ज्ञान) सम्यग्दर्शन आत्मा का परिणाम है। [वृहत द्रव्यसग्रह गा० ४१ टीका पृष्ठ १८८]

(ट) मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियो के उपशमादि होने पर, (२) अथवा अध्यात्म भाषा के अनुसार निजशुद्ध आत्मा के सम्मुख परिणाम होने पर शुद्ध आतमभावना से उत्पन्न यथार्थ सुखरूपी अमृत को उपादेय करके, ससार शरीर और भोगो मे जो हेय बुद्धि है, वह सम्यग्दर्शन से शुद्ध है वह चतुर्थ गुणस्थान वाला व्रतरहित दार्शनिक है। [वृहत द्रव्यसग्रह गाथा ४५ टीका पृष्ठ २२०]

(ठ) व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है ऐसा ऋषि-श्वरो ने बताया है जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। [समयसार गाथा ११]

२०. जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति क्यो नहीं होती ? उसका कारण

(अ) जीव का द्रव्यकर्म नोकर्म से तो किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। परन्तु अनादि से अज्ञानी जीव एक-एक समय करके कर्मकृत शुभाशुभ भावो की, जो अपने साथ एकमेक नही है, पृथक है;

परन्तु उनके साथ एकत्व करता है, इसलिए सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती।

(आ) एवमयं कर्मकृतैर्भावैर समाहितोऽपि युक्त एव ।
प्रतिभाति बालिशानां, प्रतिभासः स खलु भवबीजं ॥१४॥

अन्वयः—एव अय कर्मकृतै असमाहित अपि बालिशाना युक्तः इव प्रतिभाति। स प्रतिभास खलु भव बीज (अस्ति)।

अर्थ—इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत भावो से (कर्म का उदय है निमित्त जिनमे ऐसे दया, दान पूजा यात्रा आदि विभाव भावो से) सयुक्त न होने पर भी (स्वभाव और विभाव का तादात्म्य न होने पर भी, एक द्रव्य न बन जाने पर भी, पारिणामिक और विभाव भाव एक न होने पर भी) सयुक्त सरीखा (एक द्रव्य सरीखा) प्रतिभासित होना ही निश्चय करके ससार का बीज है। अर्थात् ध्रुव स्वभाव और क्षणिक विभाव की इस एकता की मान्यता को ही मिथ्यात्व कहते है, यह मिथ्यात्व का पक्का लक्षण है। [पुरुषार्थसिद्धि उपाय गाथा १४]

(इ) जिन्हे सयोग सिद्ध सबध है ऐसे आत्मा और क्रोधादि आस्रवो मे भेद ज्ञान ना होने से ही सम्यक्त्व प्राप्त नही होता है।

[समयसार गाथा ६९-७० टीका]

(इ) स्व-पर का विवेक न होने से सम्यक्त्व नही होता।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ४६]

(उ) जीवादि सात तत्व जो प्रयोजनभूत है इनका उलटा श्रद्धान होने से सम्यक्त्व नही होता है। [छहढाला दूसरी ढाल]

(ऊ) अपनी आत्मा को छोडकर अनन्त आत्मा, अनतानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, लोक प्रमाण असख्यात काल-द्रव्य तथा शुभाशुभ भावो के साथ एकत्व बुद्धि, एकत्व का ज्ञान, एकत्व का आचरण होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति नही होती है।

२१. वस्तु का परिणमन बाह्य कारणो से निरपेक्ष है

(अ) मिथ्यादृष्टि शास्त्रो का अभ्यासी कहता है कि कर्म के उदय

से विकार होता है और जीव विकार करे तो नया बन्ध होता है। विकार स्वतन्त्र है और कर्म का उदय उपशमादि स्वतन्त्र है। यह बात तुमने कहाँ से निकाली ऐसे अज्ञानी को समझाने के लिए श्री वीरसेन स्वामी जयधवलपुस्तक सातवी पृष्ठ १७७ के प्रारम्भ मे लिखा है। कि—"वज्झ कारण निरपेक्खो वत्थु परिणामो" अर्थात् वस्तु का परिणमन बाह्य कारणो से निरपेक्ष होता है।

आचार्य भगवान ने यह कथन विकारी परिणामो के सम्बन्ध मे कहा है क्योकि जीव अपने दोष से अज्ञानी रहता है ऐसा होने पर भी अपना दोष बाह्य कारणो के ऊपर लगाता है।

[जय धवल पु० सातवी पृष्ठ १७७]

(आ) सर्व द्रव्यो की प्रत्येक पर्याय मे यह छह कारक एक साथ वर्तते है इसलिए आत्मा और पुद्गल शुद्ध दशा मे या अशुद्ध दशा मे स्वय छहो कारक रूप परिणमन करते हैं और दूसरे कारको की (निमित्त कारणो की) अपेक्षा नही रखते।

[पचास्तिकाय गा० ६२ टीका सहित]

(इ) निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकपने का सम्बन्ध नही है, कि जिससे शुद्धात्मा स्वभाव को प्राप्ति के लिए सामग्री (बाह्य साधन) खोजने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते है।

[प्रवचनसार गाथा १६ की टीका]

(उ) अज्ञानी जीव को समझाने के लिए आचार्यदेव उपदेश देते है कि राग द्वेष की उत्पत्ति अज्ञान से आत्मा मे ही होती है और वे आत्मा के अशुद्ध परिणाम है। इसलिए अज्ञान का नाश करो, सम्यग्ज्ञान प्रगट करो, आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ऐसा अनुभव करो, परद्रव्य को रागद्वेष उत्पन्न करने वाला मानकर उस पर कोप न करो।

[समयसार कलश २२० का भावार्थ]

(ऊ) वास्तव मे कोई भी पर्याय हो, चाहे विकारी हो या अवि-कारी हो वह निरपेक्ष है उसका दूसरा कोई कारण नही है। क्योकि

एक पर्याय का उसकी पहली पर्याय और अगली पर्याय से सम्बन्ध नही है, तब उस पर्याय को दूसरा करे, यह बात कहाँ से आई ? अज्ञानता मे से आई।

२२. वासना का प्रकार

(अ) प्रतीति करने मे आता हुआ वह इन्द्रियजनित सुख-दुख है। प्रश्न कैसे है ? उत्तर वह केवल वासनामात्र है। जीव को (देहादि पदार्थों) उपकारक तथा अपकारक नही होने से परमार्थ से देहादि (पदार्थ) विषै वह उपेक्षणीय है। उसमे तत्वज्ञान के अभाव से "यह मुझे उपकारक होने से इष्ट है और अपकारक होने से अनिष्ट है" ऐसे विभ्रम से उत्पन्न हुआ सस्कार वह वासना है। वह (वासना इष्ट-अनिष्ट पदार्थों के अनुभव के अनन्तर उत्पन्न हुआ स्व सवेद्य अभिमान-युक्त परिणाम है, वह वासना ही है, स्वाभाविक आत्मा का स्वरूप नही। [नोट--इस स्व सवेद्य अभिमान युक्त परिणाम को मिथ्यात्व-पूर्वक का अनन्तानुवन्धी मान कहा जाता है। इस वासना का अभाव सम्यग्दर्शन होने पर ही होता है।] [इष्टोपदेश गा० ६ की टीका मे]

(आ) जीवन का विशेष (गुण) विशेष्य (द्रव्य) की वासना है। उसका अन्तर्धान-सम्यक्दर्शन होने पर होता है।

[प्रवचनसार गा० ८०]

(इ) परन्तु जब द्रव्य को द्रव्य प्राप्त करने मे आवे (अर्थात् द्रव्य का द्रव्य प्राप्त करता है, पहुचता है, ऐसा द्रव्यार्थिकनय से कहा जाता है) तब समस्त गुणवासना का उन्मेश अस्त हो जाता है ऐसा वह जीव को "शुक्ल वस्त्र ही है" इत्यादि की भाँति, ऐसा द्रव्य ही है ऐसा समस्त ही अतद्भाविक भेद निमग्न होता है। रागद्वेप मोह की वासना अनादि से एक-एक समय करके है। नोट—यहाँ गुण-गुणी के भेद को वासना का उन्मेश कहने मे आया है क्योकि भेद से भी राग उत्पन्न होता है। [प्रवचनसार गा० ९८ की टीका से]

(ई) जिन जीवो के तत्वज्ञान नही है वे यथार्थ आचरण नही आचरते। वही विशेष वतलाते है—कितने ही जीव पहले तो प्रतिज्ञा धारण कर वैठते है, परन्तु अन्तरग मे विषय-कषाय वासना मिटी नही है इसलिए जैसे-तैसे प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं। वहाँ उस प्रतिज्ञा से परिणाम दु खी होते है। जैसे—कोई वहुत उपवास कर वैठता है और पश्चात् पीडा से दु खी हुआ रोगी की भाँति काल गँवाता है, धर्म साधन नही करता। तो प्रथम सवतो जाने उतनी ही प्रतिज्ञा क्यो न ले ? दु खी होने मे तो आर्त्तध्यान हो उसका फल अच्छा कैसे लगेगा ? × × × × × × विषय वासना नहीं छूटी थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा किसलिए की ? × × × × क्योकि वहाँ तो उल्टा रागभाग तीव्र होता है। नोट—यहाँ पर जीव को विषय वासना और कषाय वासना अनादि से एक-एक समय करके चली आ रही है ऐसा वताया है सम्यग्दर्शन के विना इस वासना का अभाव नहीं हो सकता।) [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २३८ से २३९]

(उ) देवगति मे विषय वासना है और इसे कषाय वासना भी कहते हैं। [पुरुषार्थ सिद्धयुपाय]

(ऊ) प्रतिज्ञा के प्रति निरादर भाव न हो, परिणाम चढते रहे, ऐसी जिनधर्म की आम्नाय है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २३९]

(ए) किसी ने प्रतिज्ञा द्वारा विषय प्रवृत्ति रोक रखी थी, अन्तरग आसक्ति वढती गई, और प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही अत्यन्त विषय प्रवृत्ति होने लगी, सो प्रतिज्ञा के काल मे विषय-वासना मिटी नही। आगे पीछे उसके वदले अधिक राग किया, सो फल तो राग भाव मिटने मे होगा, इसलिए जितनी विरक्ति हुई हो, उतनी ही प्रतिज्ञा करना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २४०]

(ऐ) भाव शुद्धि विना गृहस्थपना छोडे तो मुनिपना कैसे हो ? उसका फल अच्छा कैसे होय ? कभी नही होय। उसको शुभ भाव की वासना मिटती नही, मुनिलिंग का वेश धारण करके स्वय विवाह

न करे, तो भी गृहस्थो को विवाहादि की बाते बताये, सम्बन्ध कराये बैटरी आदि रक्खे, जीव हिंसा स्वय करे और गृहस्थ के पास से करावे तो पापी होकर नरक जाता है। [लिंगपाहुड गा० ९]।

(ओ) परन्तु अल्प परिग्रह ग्रहण करने का फल निगोद कहा है, तब ऐसे पापो का फल तो अनन्त ससार होगा ही होगा।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १७९]

(औ) सम्यग्दर्शन प्राप्त किये विना विषय और कपाय की वासना का अभाव नही होता है। इसलिये प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना पात्र जीव का प्रथम कर्त्तव्य है।

२३ अन्तरंग श्रद्धा और उसका फल केवलज्ञान

(अ) कर्मोदय जनित शुभाशुभरूप कार्य करता हुआ तद्रूप परिणमित हो, तथापि अन्तरग मे ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नही है। यदि शरीराश्रित व्रत-सयम को भी अपना माने तो मिथ्यादृष्टि होय। [मोक्षमार्गप्रकाशक, चिट्ठी मे पृ० २]।

(आ) जो ज्ञान मति-श्रुतिरूप हो प्रवर्तता है वही ज्ञान वढते-वढते केवलज्ञानरूप होता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी मे पृ० २]

(इ) (१) निर्विकल्प दशा मे केवल आत्मा को ही जानता है एक तो यह विशेषता है। (२) मात्र स्वरूप से ही तादात्म्यरूप होकर प्रवृत्त हुआ यह दूसरी विशेषता है। (३) ऐसी विशेपताएँ होने पर कोई वचनातीत ऐसा अपूर्व आनन्द होता है जो कि विपय सेवन मे उसकी जाति का अश भी नही है। इसलिए उस आनन्द को अतीन्द्रिय कहते है। [मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृ० ६-७]।

(ई) भला यह है कि चैतन्य स्वरूप के अनुभव का उद्यमी रहना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ ९]

सम्यग्दृष्टि को स्वपर के स्वरूप मे न सशय, न विमोह, न विभ्रम यथार्थ दृष्टि है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्दृष्टि से मोक्ष-पद्धति

को साधना जानता है। बाह्यभाव बाह्य निमित्तरूप मानता है, वह निमित्त नानारूप है, एकरूप नही है। अन्तर्दृष्टि के प्रमाण मे मोक्ष-मार्ग साधे और सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरण की कणिका जागने पर मोक्ष-मार्ग सच्चा। मोक्षमार्ग को साधना वह व्यवहार, शुद्ध द्रव्य अक्रियारूप सो निश्चय। इस प्रकार निश्चय-व्यवहार का स्वरूप सम्यग्दृष्टि जानता है। मूढ जीव न जानता है न मानता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक परमार्थ वचनिका पृ० १३-१४]

(३) सम्यग्दर्शन होने पर नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है चाहे देर लगे, इसलिए जिसकी अन्तरग श्रद्धा सच्ची है उसका फल केवलज्ञान है। सम्यग्दृष्टि के ज्ञान मे और केवलज्ञान मे जानने मे फर्क नही है, मात्र प्रत्यक्ष परोक्ष का भेद है।

प्रकरण दूसरा—जीव ज्ञान स्वभावी है

(१) ज्ञान का जीव उपादान कारण है और वह ज्ञान उपादेय है जो कि यावत् द्रव्य मात्र मे रहता है।

[धवल पुस्तक ७ पृ० ६८-६९]

(२) ज्ञानदर्शन जीव का लक्षण है—उपयोग जीव का लक्षण है। जिसके अभाव मे जीव का अभाव होता है। इसलिए ज्ञान-दर्शन व उपयोग जीव का लक्षण है। [धवल पुस्तक ५ पृ० २२३]

(३) प्रश्न—सयम, कषाय जीव का लक्षण नहीं कहा उसका क्या कारण है ?

उत्तर—सयम जीव का लक्षण नही है—क्योकि सयम के अभाव से जीव का अभाव नही होता। [धवल पुस्तक ७ पृष्ठ ९६]

कषाय जीव का लक्षण नही है क्योकि कषाय कर्म जनित है। [धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २२३]

(४) जो यथार्थ वस्तु का प्रकाशक है—अथवा जो तत्वार्थ को प्राप्त करावने वाला है, वह ज्ञान है। [धवल पुस्तक ७ पृष्ठ ७]

ज्ञान दर्शन को जीव का लक्षण असिद्ध नही है, उसका अभाव नही होता। कहा भी है कि—

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत, मात्र-आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब सयोग लक्षित, भाव मुझ से है परे॥

अर्थ—ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है। शेष सब सयोग लक्षण वाले भाव मुझसे बाह्य है।

[नियमसार गा० १०२]

(५) जीव दुख स्वभावी नही—क्योकि जीव का लक्षण (स्वरूप) ज्ञान और दर्शन के 'विरोधी' दुख को जीव का स्वभाव मानने मे विरोध आता है। [धवल पुस्तक ६ पृ० ११]

(६) सुख जीव का स्वभाव है—सुख कर्म से उत्पन्न नही होता।

[धवल पुस्तक ६ पृ० ३५]

(७) द्रव्य कर्म जीव का कुछ करता है—वह परमार्थ कथन नही, उपचार कथन है। जिसके द्वारा मोहित हो, वह मोहनीय कर्म है।

शका—इस प्रकार की व्युत्पत्ति करने पर जीव मोहनीयत्व को प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशका नही करना चाहिए, क्योकि जीव से अभिन्न और कर्म ऐसी सज्ञा वाले पुद्गल द्रव्य मे उपचार से कर्तृत्व का आरोपण करके उस प्रकार की व्युत्पत्ति की गई है। अभिन्न का अर्थ एक क्षेत्रावगाही है अभिन्न भाव (कहने मे आता है पर है भिन्न)

[धवल पुस्तक ६ पृ० ११]

(८) वस्तुओ का परिणमन जीव की इच्छा से नही होता है। भिन्न रुचि होने से अमधुर स्वर भी मधुर समान रूप है। परन्तु इससे उसकी (आत्मा की) मधुरता नही होती है क्योकि पुरुपो की इच्छा से वस्तु का परिणमन प्राप्त नही होता है। नीम कितने ही

जीवो को अच्छा लगता है इसलिए वह मधुरता को प्राप्त नही होता है। इससे विरुद्ध माने तो अव्यवस्था प्राप्त होती है।

[धवल पुस्तक ६ पृ० १०६]

(६) स्वास्थ्य लक्षण सुख जो जीव का स्वाभाविक गुण है।

[धवल पुस्तक ६ पृ० ४६१]

(१०) केवलज्ञान—क्षरण अर्थात् विनाश का अभाव होने से केवल ज्ञान अक्षर कहलाता है। उसका अनन्तवा भाग पर्याय नाम का मतिज्ञान है (वह सूक्ष्म निगोदियो को उघाडरूप होता है)

[धवल पुस्तक ६ पृ० २१]

केवलज्ञान सहाय निरपेक्ष होने से बाह्य पदार्थो की उपेक्षा के विना उनके अर्थात् नष्ट, अनुत्पन्न पदार्थों के ज्ञान की उत्पत्ति मे कोई विरोध नही है। [धवल पुस्तक ६ पृ०२६]

(११) वस्तु का स्वरूप—वस्तु त्रिकाल गोचर अनन्त पर्यायो से उपचित है। [धवल पुस्तक ६ पृ० २७]

(पुण्य पवित्रता)

(१२) मनुष्य सर्व गुणो को उत्पन्न करता है उसका स्पष्टीकरण

(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन पर्ययज्ञान (५) केवलज्ञान (६) सम्यक्त्वमिथ्यात्व (७) सम्यक्त्व (८) सयमासयम (९) सयम (१०) बलदेवत्व (११) वासुदेवत्व (१२) चक्रवर्तीत्व (१३) तीर्थकरत्व (१४) अन्त' कृत केवली होकर सिद्ध (१५) बुद्ध (१६) मुक्त (१७) परिनिर्वाण (१८) सर्व दु'खो के अन्त का अनुभव करते है।

[धवल पु० ६ पृ० ४९४-४९५]

(१३) ज्ञानी कर्म बँधाता नही—ज्ञान परिणत जीव कर्म को प्राप्त नही होता (अर्थात् ज्ञानी कर्म बँधाता नही)। अज्ञान परिणत जीव के परिणाम के निमित्त से कर्म बँधाता है।

[धवल पु० ६ पृ० १२]

(१४) जीव के स्वभावभूत चारित्र के एक देशरूप ५-६-७वे गुण-स्थान मे आविर्भाव पाया जाता है। (फिर ८वे तथा १२वे गुण-स्थान वालो को बात कहाँ रही) [धवल पु० ५ पृ० २३३]

(१५) सम्यक्त्व—तत्वार्थ के श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। अथवा तत्वो मे रुचि होना ही सम्यक्त्व है। [धवल पु० ७ पृ० ७]

(१६) अध्यात्मिक भाव—मोक्ष को उत्पन्न करने वाले अध्यात्मिक भाव है। [धवल पु० ७ पृ० ९]

(१७) सम्यग्दर्शन सब का समान है—चौथे से तेरहवे गुणस्थान तक के आस्रव सहित और चौदहवे गुणस्थानवर्ती आस्रव रहित ऐसे दोनो प्रकार के जीवो मे (सम्यग्दर्शन सब को समान ४ से १४ तक) सम्यग्दर्शन पाया जाता है अर्थात् होता है।

(धवल पु० ७ पृ० २३ मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३२४)

(१८) सम्यग्दृष्टि का ज्ञान स्व-पर विवेक वाला है। मति अज्ञान मे स्वपर के विवेकरूप अभावरूप सफलता होती है। (द्रष्टान्त—खम्भा आदि अज्ञान है क्योकि श्रद्धा सच्ची नही है।

(धवल पु० ७ पृ० ८५-८६)

मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अज्ञान है वह ज्ञान अपना कार्य करता नही।

(धवल पु० ५ पृ० २२४)

(१९) ज्ञान का कार्य—जाने हुए पदार्थों की श्रद्धा करना वह ज्ञान का कार्य है। (धवल पु० ५ पृ० २२४)

(२०) अज्ञानी की दया—दया-धर्म के ज्ञाताओ मे भी आप्त आगम और पदार्थ के श्रद्धान से रहित जीव के यथार्थ श्रद्धान होने मे विरोध है। (धवल पु० ५ पृ०२२४)

(२१) सम्यक्त्व प्राप्त होने पर सन्मार्ग (मोक्षमार्ग) जीव ने ग्रहण किया है। एक विभग ज्ञानी देव या नारकी जीव ने सन्मार्ग (मोक्षमार्ग) पाकर सम्यक्त्व ग्रहण किया। (फिर निश्चय सम्यक्त्व

कोई ८ वें गुणस्थान मे कोई १२वे मे कहते हैं यह बात कहाँ रही)।

(धवल पु० ७ पृ० २१९)

पर्यायार्थिकनय के अवलम्बन से जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नही किया, तब तक जीव को भव्यत्व अनादिअनन्त रूप है। किन्तु सम्यक्त्व के ग्रहण कर लेने पर अन्य ही भव्य भाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ भव्य जीव सादिसान्त होते है।

(धवल पु० ७ पृ० १७७)

(२२) सम्यग्दृष्टि को सम्यक् मति और सम्यक् श्रुतज्ञान होता है। (धवल पु० ७ पृ० १६२)

(२३) स्वभाव—आभ्यन्तर भाव को स्वभाव कहते हैं अर्थात् वस्तु या वस्तु स्थिति की उस अवस्था को उसका स्वभाव कहते हैं। जो उसका भीतरी गुण है और बाह्य परिस्थिति पर अवलम्बित नही है। (धवल पु० ७ पृ० २३८)(पर के अवलम्बन से स्वभाव प्रगट नही होता है)

समयसार गा० २०४ मे लिखा है कि 'जिसमे समस्त भेद निरस्त हुआ है ऐसा आत्मस्वभावभूत ज्ञान का ही अवलम्बन करना।

ज्ञान का उपादान कारण जीव है और ज्ञान उपादेय है, क्योकि वह सदा जीव मे द्रव्य और भाव रूप से रहता है।

(इसी प्रकरण का नम्बर १)

(२४) उपादान कारण आधीन कार्य-(श्री जयसेनाचार्य समयसार गा० २२० तथा २२७ की टीका मे कहा है कि) "अन्तरग स्वकीय उपादान कारण के आधीन होता है। (ज्ञान का उपादान कारण जीव है उससे (जीव) उसके आधीन शुद्धता होती है।

(२५) बध कारण के प्रतिपक्षी का प्रमाण इस प्रकार है—(१) सम्यक्त्व की उत्पत्ति (२) देशसयम (३) सयम (४) अनन्तानुबन्धी का विसयोजन (५) दर्शनमोह का क्षपण (६) चारित्र मोहनीय का उपशम (७) उपशान्तकपाय (८) चारित्रमोह क्षपण (९)क्षीण कपाय

(१०) सयोग केवली यह परिणाम मोक्ष के कारण भून है, क्योकि उनके द्वारा प्रतिसमय असख्यात गुण श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा पाई जाती है। किन्तु जीव, भव्य, अभव्य आदि जो पारिणामिक भाव हैं वे बध और मोक्ष दोनो मे से किसी के भी कारण नही है।

(धवल पु० ७ पृ० १३ तथा १४)

(यह भाव आत्मश्रद्धान भूत ज्ञान का, एक का ही अवलम्बन लेने से प्रगट होता है)

परावलम्बन—निमित्त के अवलम्बन से कभी भी प्रगट नही होता। (ऐसा २३वें नम्बर मे आ गया है।)

आत्मा के स्वभावभूत ज्ञान को परम पारिणामिक भाव कहते है। उसका अवलम्बन लेना अर्थात धर्म स्वावलम्बन से प्रगट होता है, परावलम्बन से नही।

श्री समयसार गा० २१४ मे "जीव को निरावलम्बन के कारण सवर पूर्वक निर्जरा होती है" कहा है। इसी गा० २१४ मे जयसेनाचार्य ने लिखा है कि "अनन्त ज्ञानादि गुण स्वरूप स्वस्वभाव का ही अवलम्बन होता है।

(२६) सयत के कितने गुणस्थान हैं ?

उत्तर—'सयत' कहते ही प्रमत्तसयत आदि आठ गुणस्थानो का ग्रहण है क्योकि सयत भाव की अपेक्षा कोई भेद नही है अर्थात् छठे गुणस्थान से १३वें गुणस्थान तक का ग्रहण है। १४वा गुणस्थान नही लिया है, क्योकि वहाँ बँधपने का अभाव है। (धवल पु० ६ पृष्ठ ८०, ८२ तथा ८५ से ८८ तक, ६५, १०७, १०६, ११४, ११७)

(अ) **प्रमत्तसयत**—सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, ७ नोकषाय, यह ११ प्रकृतियो मे चारित्र घातने की शक्ति का अभाव है इसलिए वह गुणस्थान क्षायोपशमिक भाव है।

(धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २२०, २२१)

(आ) **प्रमत्तसयत**--चार सज्वलन और सात नोकषाय यथाख्यात

चारित्र को आवरण करने वाला है इसलिए उसके होने पर भी जीव इस गुणस्थान को प्राप्त होता है।

(आधार धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २२०, २२१ मे ऊपर (अ) न० मे दे चुके हैं)

कर्म का उदय होते हुए भी जो जीव का गुण खण्ड (अश) उपलब्ध रहता है वह क्षायोपशमिक भाव है।

(धवल पुस्तक ५ पृष्ठ १८५)

शुद्धात्मप्रकाशक सर्व विरति, वह श्रमण है।

(प्रवचनसार गा० २५४)

(इ) ५-६-७वे गुणस्थान मे श्रावक और मुनि को निश्चय स्वभावभूत चारित्र का एक अश होता है। (धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २३३)

(ई) चारित्र दो प्रकार का है, देश चारित्र और सकल चारित्र।

सकल चारित्र तीन प्रकार का है, (१) क्षायोपशमिक, (२) औपशमिक, (३) क्षायिक। यह तीनो निश्चय स्वभावभूत चारित्र है।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ २६८)

(उ) चारित्र विनाशक कषायो की अपेक्षा चारित्र मे मल को उत्पन्न करने रूप फल वाले कर्मों की महत्ता नही बन सकती।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४६)

(ऊ) प्रत्याख्यान को सयम कहते हैं।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४३)

(ए) **सयम**—चारित्र का विनाश नही करने वाला सज्वलन कषाय को चारित्रावरण इसलिए कहने मे आता है। कषाय सयम मे मल उत्पन्न करता है, इसलिए उसे यथाख्यात चारित्र का प्रतिबन्धक कहा है। चारित्र के साथ जलना ही इसका सम्यक्पना है।

(धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४४ ४५)

(ऐ) चारित्र मोहनीय की व्याख्या—घातियाँ कर्मो को पाप कहते है। मिथ्यात्व, असयम, कषाय ये पाप की क्रिया हैं। इन पाप क्रियाओ

के अभाव को चारित्र कहते है। यह पापरूप क्रियाओ की निवृत्ति को चारित्र कहते हैं। उसको जो मोहित करता है वह चारित्र मोहनीय है। (धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४०)

(ओ) अनन्तानुवधी चारित्र मोहनीय—अनन्त भवो का बँधना जिसका स्वरूप है वह अनन्तानुबन्धी है।

जीव अविनष्ट स्वरूपमय भाव के साथ अनन्त भवो मे परिभ्रमण करता है, वह कषाय के उदय काल अन्तर्मूहर्त मात्र है और स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपम है, तो भी अनन्तानुबन्धी क अर्थ मे दोष नही हैं।

क्योकि इन कषायो द्वारा जीव मे उत्पन्न होने वाला सस्कार अनन्त भवो मे अवस्थान मानने मे आया है।

(मिथ्यात्व के सस्कार मे, प्रवचनसार गा० ६)

वृद्धिगत ससार अनन्त भवो मे अनुवन्ध को नही छोडता है, इसलिए 'अनन्तानुवन्धी' यह नाम ससार का है। अनन्तानुबन्धी चार कषाय यह सम्यक्त्व और चारित्र का विरोधक है क्योकि वे सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनो को घातने वाली दो प्रकार की शक्ति से सयुक्त है। (धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४२)

(औ) आप्त, आगम और पदार्थों मे अश्रद्धा वह मिथ्यात्व है। (चारित्रमोहनीय की व्याख्या मे पृष्ठ ६१ मे मिथ्यात्व की परिभाषा आ गई है)। (धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ३८)

(अ) अन्तरग कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है ऐसा निश्चय करना।

सभी कार्य एकान्त से बाह्य अर्थ की अपेक्षा करके ही उत्पन्न नही होते। [देखो न० २३,२४]

—शालीधान के वीज से जौ के अकुर की उत्पत्ति का प्रसग प्राप्त होगा, किन्तु उस प्रकार के द्रव्य तीनो ही कालो मे, कोई भी क्षेत्र मे नही है कि जिसके वल से शालीधान के वीज मे जौ के अकुर को

उत्पन्न करने की शक्ति हो सके। इसलिए कही पर भी अन्तरग कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है—ऐसा निश्चय करना।

[धवल पुस्तक ६ पृष्ठ १६४]

(अ) मिथ्यात्व तथा कषाय कर्मो की स्थिति मे अन्तर होने का कारण।

शका—मोहनीयत्व की अपेक्षा समान होने से मिथ्यात्व कर्म की स्थिति के समान ही कषायो की स्थिति क्यो नही हुई ?

समाधान—नही, क्योकि सम्यक्त्व और चारित्र के भेद से भेद को प्राप्त हुए कर्मो के भी समानता होने का विरोध है।

[धवल पुस्तक ६ पृष्ठ १६२]

(क) सयम के कारण भूत सम्यग्दर्शन की अपेक्षा तो इस गुणस्थान मे क्षायोपशमिक, क्षायिक और औपशमिक भाव निमित्तक सम्यग्दर्शन होता है। [धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७७]

(ख) मिथ्यादृष्टि जीवो को, सयत या देशसयत होय ही नही।

प्रश्न—कितने ही अज्ञानी संयमी जीव देखने में आते हैं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन के विना सयत और प्रत्याख्यान (चारित्र) होता ही नही। [धवल पुस्तक १ पृष्ठ ३७८ तथा पृष्ठ १७५]

निश्चय चारित्र का कारणभूत ज्ञान-श्रद्धान है।

[समयसार गा० २७३ की टीका से]

(ग) भावसयम-द्रव्य सयम।

सयमन करने को सयम कहते है। सयम का इस प्रकार का लक्षण करने पर द्रव्यसयम अर्थात् भावचारित्र शून्य द्रव्यचारित्र सयम नही हो सकता, क्योकि सयम शब्द मे 'स' शब्द से उसका निराकरण हो जाता है। 'सम्' उपसर्ग सम्यक् शब्दवाची है। इसमे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्वक 'यता' अर्थात् अन्तरग और बहिरग आस्रवो से विरत है उसे सयम कहते है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १४४ तथा पृष्ठ ३६९]

मिथ्यादृष्टियो के भी भावसयम रहित द्रव्यसयम होना सम्भव होता है। वह (द्रव्यसयम) सम्यक्त्व और सयम से रहित होता है द्रव्य सयम ने नव ग्रवेयको मे उत्पन्न हो सकता है।

[धवल पुस्तक ६ पृष्ठ ४६५-४७३]

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७५ तथा ३७८]

(घ) सिद्ध भगवान का सयम।

उनके बुद्धिपूर्वक निवृत्ति का अभाव होने से वह सयत, सयतासयत और असयतरूप भी नही है क्योकि उनको सम्पूर्ण पापरूप क्रियाये नष्ट हो चुकी है। [धवल पुस्तक १ पृष्ठ ३७८]

त्रण मूढ़ता

१ देवमूढता, २ गुरुमूढता, ३ लोकमूढता।

(अ) आप्त, आगम आर पदार्थो मे जिस जीव को श्रद्धा उत्पन्न नही हुई तथा उसका चित्त त्रण मूढताओ से व्याप्त है। जो त्रण मूढता से व्याप्त होय उसे सयम की उत्पत्ति नही हो सकती है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७७]

(आ) त्रण मूढताओ से रहित सम्यग्दर्शनरूप उन्नत तिलक मे विराजमान है। [धवल पुस्तक १ पृष्ठ ६]

(इ) त्रण मूढताओ से रहित अमूढदृष्टि कहलाता है। उसकी व्याख्या—क्योकि सम्यग्दृष्टि टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमयता के कारण सभी भावो मे मोह का अभाव होने से, अमूढ दृष्टि है।

[समयसार गा० २३२ की टीका से]

(ई) अब तीन प्रकार मूढता है, वे सम्यक्त्व के घातक है याते तीन प्रकार की मूढता का स्वरूप जानि सम्यग्दर्शन को शुद्ध करना योग्य है।

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक २२ के ऊपर हैडिंग पृष्ठ ३२]

प्रश्न—लोकमूढता क्या है ?

उत्तर—जिन मूर्खनिनै तत्वनिज्ञा निश्चयरूप द्रव्य को देखा नही और ज्ञानरूप समुद्र नही देखा और समता नाम नदी नाही देखी। वह गगादिक (सम्मेदशिखर, गिरनार) तीर्थाभासन मे दौडता फिरता है। अनेक प्रवृत्ति मे दया, दान, पूजा आदि मे धर्म होना, पवित्रता होना तथा कितने भेषधारी अनेक क्रिया-काण्ड, होम कराना आदि कर, कल्याण होना बतावे है। कितने ही स्नानकर रसोई करने मे स्नानकरि जीमने मे तथा आला वस्त्र पहरि जीमने मे अपनी पवित्रता शुद्ध माने है परम धर्म माने हैं तो समस्त मिथ्यात्व के उदय से लोकमूढता है। [रत्नकाण्ड श्रावकाचार गा० २२ की टीका से]

प्रश्न—देवमूढता क्या है ?

उत्तर—ससारी जीव इस लोक मे राज्य सम्पदा, स्त्री, पुत्र, आभरण, धन-ऐश्वर्य को वाछा सहित व्यन्तर क्षेत्रपालादिक कू अपना सहाई माने हैं तथा सासारिक सम्पदा के लिए सच्चे जिनेन्द्र की भक्ति से लौकिक पद की इच्छा करे हैं तथा पद्मावती देवी की पूजा करे हैं। ताते ऐसा निश्चय जानना कि जो अनेक देव-देवी को आराधै है, पूजै है सो देवमूढता है। (रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० २३)

प्रश्न—गुरुमूढता क्या है ?

उत्तर—जिनेन्द्र के श्रद्धान ज्ञानकर रहित होय नाना प्रकार के खोटे भेष धारण करके आपको ऊँचा मान जगत के जीवो से अपनी पूजा वन्दना चाहता है। आपको आचार्य, पूज्य धर्मात्मा कहावता रागी-द्वेषी हुआ प्रवत है। शुभ भावो से, निमित्तो मे भला होता है, कर्म चक्कर कटाता है तथा शुभ भाव करो और शुभ भाव करते-करते धर्म हो जावेगा। मुनि साधु नाम धराके मन्त्र, जप, होम, निद्य आचरण करे हैं, वह पाखण्डी है जो उन पाखण्डियो का वचन प्रमाण कर उनका सत्कार करते है। सो सब गुरुमूढता है। इसलिए मिथ्यादिक मलता का नाश करने वाला जो आपा-पर का भेद जानने रूप विवेक

है, उसका श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र रूप परिणमन करना चाहिए।
[रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० २४ से]

कुगुरु सेवा, कुदेव सेवा तथा कुधर्म सेवा यह तीन भी सम्यक्त्व के मूढता नाम के दोष हैं। [छहढाला, तीसरी ढाल]

तत्वज्ञान से परम श्रेय होता है।

(अ) जो श्रुत ज्ञान के प्रसिद्ध बारह अगो से ग्रहण करने योग्य है अर्थात् बारह अगो का समूह जिसका शरीर है। जो सर्व प्रकार के मल और तीन मूढताओ से रहित सम्यग्दर्शनरूप उन्नत तिलक से विराजमान है और विभिन्न प्रकार के निर्मल चारित्र ही जिसके आभूषण हैं, ऐसे भगवती श्रुत देवता चिरकाल तक प्रसन्न रहो।
(धवल पुस्तक १ पृष्ठ ६)

(आ) शब्द से पद की सिद्धि होती है। पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है और अर्थ निर्णय से तत्वज्ञान अर्थात् हेय उपादेय के विवेक की प्राप्ति होती है और तत्वज्ञान से परम कल्याण होता है। (धवल पुस्तक १ पृष्ठ १०)

(इ) हेय-उपादेय के विवेक की प्राप्ति के लिये मनुष्य की उत्कृष्ट अर्थात सूक्ष्म विचार आदि सातिशय उपयोग से युक्त है उसे मनुष्य कहते है।

जिस कारण जो सदा हेय-उपादेय का विचार करते हैं अथवा जो मन से गुण-दोष आदि का विचार करने मे निपुण हैं अथवा मन से जो उत्कट अर्थातृ (दूरदर्शन) सूक्ष्म विचार चिरकाल धारण आदि रूप उपादेय सहित है, उसे मनुष्य कहते हैं।
(धवल पुस्तक १ पृष्ठ २०२-२०३ सस्कृत श्लोक १३०)

(ई) हेय-उपादेय का ज्ञान और विवेक प्राप्त करने के लिये नय ज्ञान जरूरी है और वह सब नय है और उसका नाम द्रव्यार्थिक नय पर्यायार्थिकनय। तीर्थंकरो के वचनो का सामान्य प्रस्तार का मूल

व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिकनय है और उसके वचनो का विशेप प्रस्तार का व्याख्यान करने वाला पर्यायार्थिकनय है।

नय का विषय इस प्रकार है

अनेक गुण और पर्याय सहित, अथवा उसके द्वारा एक परिणाम से दूसरे परिणाम मे, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे, एक काल से दूसरे काल मे अविनाशी स्वभावरूप से रखने वाला द्रव्य को जो ले जाता है अर्थात् उसका ज्ञान कराता है, वह नय है।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयो के विषय मे निम्न प्रकार है

वाकी तमाम भेदो के दो नय है। (घवल पुस्तक १ पृष्ठ ११-१२)

(उ) जीवो को अनादि से पर्यायो के भेदो का ज्ञान होता है, परन्तु द्रव्य का ज्ञान नही होने से उनको तात्विक हेय-उपादेय का ज्ञान नही होता है। इसलिए इन दो नयो का ज्ञान ना हो तो, जो योग्य हो वह अयोग्य प्रतीत हो, और जो अयोग्य हो वह योग्य प्रतीत हो, और अज्ञान मिटे नही। (घवल पुस्तक १ पृष्ठ ७७)

(घवल पुस्तक ३ पृष्ठ १७)(घवल पुस्तक १३ पृष्ठ ४)

[त्रिल्लोकपरिणति भाग १ पृष्ठ ८२)

(परमात्मप्रकाश अध्याय दूसरा गा० ४३)

इन सब मे हेय-उपादेय के विवेक के लिये आदेश दिया है।

(ऊ) उपदेश मे कोई उपादेय, कोई हेय तथा कोई ज्ञेय तत्वो का निरुपण किया जाता है, वहाँ उपादेय हेय तत्वो की तो परीक्षा कर लेना। क्योकि इनमे अन्यथापना होने से अपना बुरा होता है। उपादेय को हेय मान ले तो बुरा होगा, हेय को उपादेय मान ले, तो बुरा होगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६)

(ए) हेय-उपादेय के विवेक का फल सर्वज्ञ से स्वय जाना हुआ होने से, सर्व प्रकार से अवाधित है। ऐसा शब्द प्रमाण को प्राप्त करके क्रीडा करने पर, उसके सस्कार से विशिष्ट सवेदन शक्तिरूप सम्पदा (सम्यकदर्शन) प्रगट होता है। (प्रवचनसार गा० ८६ की टीका से)

(ऐ) सम्यग्दशन ज्ञान चारित्र रूप परिणित हुई, वही आत्मतत्व मे एकाग्रता है। (प्रवचनसार गा० २३२ की टीका से)

(ओ) यह अमूर्तिक आत्मा वह मैं हूँ और यह समान क्षेत्रावगाही शरीरादिक (द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म) वह पर है तथा यह उपयोग वह मैं हूँ और यह उपयोग मिश्रित मोह-राग द्वेष भाव, वह पर है। ऐसा स्व-पर का भेद विज्ञान होता है तथा आगम उपदेशपूर्वक स्वानु-भव होने से 'मै ज्ञान स्वभावी एक परमात्मा हूँ" ऐसा परमात्मा का ज्ञान होता है। (प्रवचनसार गा० २३३ के भावार्थ से)

(औ) द्रव्यार्थिकनय तो एक सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट स्वभाव है वह सदाकाल स्थिति (कायमी) स्वभाव रहता है। ऐसा ज्ञान हुए बिना उस स्वभाव का अवलम्बन जीव नही ले सकता है। इसलिए हेय-उपादेय की विवेक दृष्टि होने पर उसका अवलम्बन लिया जा सकता है और पर्यायार्थिकनय का विषय बाह्य स्थितरूप है इसलिए उसका अवलम्बन छोडता है।

(अ) द्वादशाग का नाम आत्मा है, क्योकि वह आत्मा का परिणाम है और परिणाम परिणामी से भिन्न होता नही, क्योकि मिट्टी द्रव्य से पृथग्भूत घटादि पर्याये पायी नही जाती।

शका—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत ये दोनो ही आगम सामान्य की अपेक्षा समान हैं। अतएव जिस प्रकार भावस्वरूप द्वादशागो को "आत्मा" माना है उसी प्रकार द्रव्यश्रुत को भी आत्मा मानने का प्रसग आयेगा ?

समाधान—नही, क्योकि वह द्रव्यश्रुत आत्मा का धर्म नही है, उसे जो आगम सज्ञा प्राप्त है। वह उपचार से प्राप्त है। वास्तव मे वह आगम नही है। (धवल पुस्तक १३ पृष्ठ २८२-२८३)

(अ) श्रुतज्ञान स्वय आत्मा ही है। इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है।

(समयसार गा० १५ की टीका पृष्ठ ४३)

(क) प्रथम तो आत्मा का परिणाम वास्तव मे स्वय आत्मा ही है, क्योकि परिणामी परिणाम से अभिन्न है।

(प्रवचनसार गा० १२२ की टीका से)

(ख) पौद्गलिक शब्दब्रह्म, उसकी ज्ञप्ति (शब्दब्रह्म को जानने वाली ज्ञानक्रिया) वह ज्ञान है। श्रुत (सूत्र) तो उसका (ज्ञान का) कारण होने से ज्ञान तरीके उपचार से कहा जाता है। जैसे अन्न को प्राण कहते है (वैसे शब्द ब्रह्म को ज्ञान कहा जाता है। वह है नही, निमित्तादि की अपेक्षा कथन है)।

(प्रवचनसार गा० ३४ की टीका से)

इस प्रकार श्री समयसार श्री प्रवचनसार और धवल पुस्तक १३ मे द्रव्यश्रुत और भावश्रुत का स्वरूप एक ही प्रकार कहा है।

(ग) सर्व जगह परमार्थ है, वही सत्यार्थ है। इसी प्रकार समयसार मे लिखा है, "व्यवहार अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है। द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है।"

(समयसार गा० ६ का भावार्थ पृष्ठ १७)

(घ) व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है, इसलिये वह अविद्यमान, असत्य, अभूत, अर्थ को प्रकट करता है, शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को प्रगट करता है।

(समयसार गा० ११ की टीका से)

(ङ) पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सम्पूर्ण छुडाया है और उस व्यवहार को हेय, त्याज्य कहा है तब फिर यह सत्पुरुष एक सम्यक् निश्चय को ही निश्चलतया अगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन-स्वरूप निज महिमा मे (आत्मस्वरूप मे) स्थिरता क्यो धारण नही करते ? (समयसार कलश १७३)

(ट) धवल पुस्तक १३ पृष्ठ २८२-२८३ मे कहा है, कि द्वादशाग भाव श्रुतज्ञान है, वह आत्मा का परिणाम है—ऐसा कहा। श्रुतज्ञान

घनस्वरूप निज स्वरूप का अवलम्बन, उसमे स्थिरता, करने के लिए कहा है।

स्वभाव का अवलम्बन लेना और बाह्य का अवलम्बन छोडना. ऐसा २३ नम्बर मे कहा जा चुका है।

(ठ) इसलिये जिसमे भेद दूर हुए हैं ऐसे आत्म स्वभावभूत एक ज्ञान का ही अवलम्वन करना चाहिए। उसके अवलम्बन से ही निज पद की प्राप्ति होती है, भ्रान्ति का नाश होता है, आत्मा का (जीव का लाभ होता है, और अनात्मा (अजीव) का परिहार होता है; (ऐसा होने से) कर्म बलवान नही होते, राग-द्वेष-मोह उत्पन्न नही होते; (राग-द्वेष-मोह भाव के बिना) पुन कर्मास्रव नही होता, (आस्रव के बिना) पुनः कर्म बन्ध नही होता, पूर्वबद्ध कर्म भुक्त होकर निर्जरा को प्राप्त हो जाता है, समस्त कर्मों का अभाव हाने से साक्षात् मोक्ष होता है। ऐसे (आत्मा) के अवलम्बन का ऐसा महात्म्य है।

(समयसार गा० २०४ टीका पृष्ठ ३१४)

प्रश्न—क्या सम्यग्दर्शन संयम का अंश है?

उत्तर—हाँ है।

(अ) देशावधि किसे कहते हैं? **उत्तर**—देश अर्थात् सम्यग्दर्शन। क्योकि वह सम्यग्दर्शन सयम का अवयव (अश) है।

(धवल पुस्तक १३ पृष्ठ ३२३)

(आ) कहूँ शुद्ध निश्चय कथा, कहूँ शुद्ध व्यवहार।
मुक्ति पंथ कारन कहूँ, अनुभव का अधिकार।।

अर्थ—शुद्ध पर्याय प्रगटी वह सद्भूत व्यवहार है। भूमिकानुसार राग असद्भूत व्यवहार है। त्रिकाली द्रव्य शुद्ध निश्चयनय है।

(समयसार नाटक)

(इ) सयम का कारण सम्यग्दर्शन है। (दर्शनपाहुड गा० ३१)।

(ई) निश्चय चारित्र के कारणरूप ज्ञान-श्रद्धान है।

(समयसार गा० २७३ की टीका से)।

प्रकरण तीसरा सम्यक्त्व की व्याख्या

(१)(क)तत्वार्थ श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। (ख)अथवा तत्वो से रुचि होना ही सम्यक्त्व है। (ग) अथवा प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य की अभिव्यक्ति ही जिसका लक्षण है वही सम्यक्त्व है।

(धवल पुस्तक ७ पृष्ठ ७, धवल पुस्तक १० पृष्ठ ११५)

(I) प्रशम=अनन्तानुबधी कषाय के अभाव पूर्वक बाकी की कपायो का अशरूप से मद होना [पचाध्यायी गाथा ४२८] (II) सवेग—ससार से भय और धर्म तथा धर्म के कार्यो मे परम उत्साह होना साधर्मी और पचपरमेष्टियो मे प्रीति। (III) अनुकम्पा=प्राणी मात्र पर दया भाव। (IV) आस्तिक्य=पुण्य-पाप तथा परमात्मा का विश्वास।

(२) सम्यक्त्व की उत्पत्ति ही मोक्ष का कारण है—

वह गुणश्रेणी रूप निर्जरा का कारण है। बन्ध के कारण का प्रतिपक्षी है। [धवल पुस्तक ७ पृ० १४]

(३) सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व भाव, अत्यन्त अप्रशस्त है, और उसके निमित्त से बँधने वाला मिथ्यात्व कर्म अत्यन्त अप्रशस्त है।

(४) चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक सर्व जीवो को सम्यक्त्व समान है। [धवल पुस्तक ७ पृ० २२-२३, १०७]

(५) सम्यग्दर्शन में जीव के गुण स्वरूप श्रद्धान की उत्पति पायी जाती है उससे आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है।

[धवल पुस्तक ५ पृ० २०८, २०९ तथा पृ० २३५]

(६) क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदक सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ है। [धवल पुस्तक ५ पृ० २६४]

(७) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमादि आदि को जीवत्व नही। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद आदि मे मगलपना सिद्ध नही हो सकता, क्योकि उसमे जीवत्व का अभाव है। मगल तो जीव ही है और वह जीव केवलज्ञानादि अनन्त धर्मात्मक है। [धवल पुस्तक १ पृ० ३६]

आस्रव अशुचि, अपवित्र, जड स्वभावी, दु:ख का कारण, लाख के समान, अनित्य, अध्रुव, अशरण, वर्तमान मे दु खरूप और आगामी दु खस्वरूप है और भगवान आत्मा तो सदा ही अति निर्मल, चैतन्य-स्वभावी, विज्ञानघन स्वभावी, निराकुल स्वभावी, नित्य, ध्रुव, शरण वर्तमान मे सुखस्वरूप और आगामी मे सुखस्वरूप है।

[समयसार गा० ७२, ७४ की टीका से]

(८) सम्यक्त्व प्राप्त करने वालो ने सन्मार्ग ग्रहण किया है। देव तथा नारकी जीवो मे चतुर्थ गुणस्थान ही होता है, ऊपर के गुणस्थान वहाँ नही हो सकते है। देव नारकी अज्ञान दशा मे विभग ज्ञानी होते हैं और जब सम्यक्त्व प्रगट करते हैं, तब सन्मार्गी होते हैं।

[धवल पुस्तक ७ पृ० २१९]

(९) सम्यक्त्व का फल निश्चय चारित्र है। और निश्चय चारित्र का फल केवलज्ञान तथा सिद्ध दशा है। जो जीव चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है, वह नियम से सिद्ध होगा ही। इससे वह भावि नैगमनय से सिद्ध है।

(१०) अनादि होने से आस्रव नित्य नही हो जाता, क्योकि कूटस्थ अनादि को छोडकर प्रवाह अनादि मे नित्यत्व नही पाया जाता। यदि प्रवाह रूप से अनादि होय तो उसको (मिथ्यात्व) नित्यपना प्राप्त नही होता है। [धवल पुस्तक ७ पृ० ७३]

(११) सम्यग्दृष्टि को आप्त, आगम तथा पदार्थो की श्रद्धा होती है मिथ्यादृष्टि को उसकी श्रद्धा नही होती। भले दया धर्म को जानने वाला (बातें करने वाला) ज्ञानी कहलाता हो उसका ज्ञान, श्रद्धा का कार्य करता नही, इसलिए मिथ्या है। [धवल पुस्तक ५ पृ० २२४]

(१२) चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करने से जीव को सम्यक्त्व प्राप्त होता है वहाँ उस गुणस्थानी जीव को ४१ प्रकृतियो का वन्ध नही होता तथा और प्रकृतिया की स्थिति और अनुभाग अल्प बाँधता है,

तो भी वह ससार स्थिति का छेदक होता है। इसलिए मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा उसे अवन्धक कहने मे आया है।

[समयसार पृ० १३३, ३०९, ३०७, २६१]

[गोमट्टसार कर्मकाण्ड गा० ९४]

(१३) द्रव्यानुयोग तथा करणानुयोग का तीनो काल सुमेल होता है। दोनो वीतरागी शास्त्र है। उनमे विरोध जरा भी नही। उनका समन्वय आगे इस प्रकार है—

सिद्धान्त मे गुणस्थानो की परिपाटी मे चारित्र मोह के उदय के निमित्त से सम्यग्दृष्टि के जो बन्ध होता है वह भी निर्जरारूप ही समझना चाहिए। क्योकि सम्यग्दृष्टि के जैसे पूर्व मे मिथ्यात्व के उदय के समय बंधा हुआ कर्म खिर जाता है, उसी प्रकार नवीन बधा हुआ भी खिर जाता है। उसके उस कर्म के स्वामित्व का अभाव होने से वह आगामी वधरूप नही, किन्तु निर्जरारूप ही है। × × × ज्ञानी द्रव्य कर्म को पराया मानता है, इसलिए उसे उसके प्रति ममत्व नही होता अत उसके रहते हुए भी वह निर्जरित हुए के समान ही है ऐसा जानना। [समयसार गाथा २३६ का भावार्थ पृ० ३५५]

सम्यग्दृष्टि को कर्म का उदय वर्तता होने पर भी, सम्यग्दृष्टि को पुन कर्म का बध किंचित मात्र भी नही होता, परन्तु जो कर्म पहिले बधा था। उसके उदय को भोगने पर उसको नियम से उस कर्म की निर्जरा ही होती है। [समयसार कलश १६१ पृ० ३४६]

(१४) धवल मे भी इस कथन से कोई विरोध नही आता। धवल मे लिखा है—जीव के रागादि परिणामो के निमित्त से पुद्गल कर्म रूप परिणमाता है। परन्तु ज्ञान परिणत है, उसको जो अल्प स्थिति तथा अनुभागवाली कितनी कर्म प्रकृतियाँ बधने पर भी, उसका स्वामी न होने से वह कर्म को प्राप्त नही होता।

[धवल पुस्तक ९ पृ० १२]

(१५) सर्व सम्यग्दृष्टियो को चौथे गुणस्थान से १४वें गुणस्थान

तक स्वभाव भूत अवस्था प्राप्त होती हैं। [धवल पु० १ पृ० ३९६]

(१६) १४वें गुणस्थान मे निश्चय सम्यग्दर्शन ही होता है। चौथे गुणस्थान से स्वभावरूप अवस्था शुरू होती है, इसलिए सर्वत्र श्रद्धा गुण की स्वभावरूप अवस्था शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

[धवल पु० १ पृ० ३९६, ३९७]

(१७) मेरु समान निष्कम्प आठ मल रहित, तीन मूढताओ से रहित और अनुपम सम्यग्दर्शन परमागम के अभ्यास से होता है।

[धवल पु० १ पृ० ५९]

(१८) सम्यग्दर्शन रत्नगिरि का शिखर है।

[धवल पु० १ पृ० १९६]

(१९) जो पुरुष सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वही शुद्ध है। जिसका दर्शन शुद्ध होता है वही निर्वाण को प्राप्त करता है, दूसरा नही। निर्वाण प्राप्ति मे वह(सम्यग्दर्शन)प्रधान है। [मोक्षपाहुड गा० ३९]

(२०) यह श्रेष्ठतर सम्यग्दर्शन ही जन्म-जन्म का नाश करने वाला है। उसकी जो श्रद्धा करता है वह सम्यक्त्वी है। वह सम्यक्त्व मुनियो, श्रावको तथा चतुर्गति के भव्य सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो को ही होता है। [मोक्षपाहुड गाथा ४० महावीरजी से प्रकाशित हुआ अष्टपाहुड पृ० ५२३]

(२१) जैसे तारो के समूह मे चन्द्रमा अधिक है, पशुओ के समूह मे सिंह अधिक है, उसी प्रकार मुनि और श्रावक दोनो प्रकार के धर्म मे सम्यक्त्व, वह अधिक है।

[भावपाहुड गाथा १४४ जयचन्द्र वचनिका पृ० २६८]

(२२) **प्रश्न—श्रावक को क्या करना ?**

उत्तर—प्रथम श्रावक को सुनिर्मल मेरुवत् निष्कम्प अचल तथा चल मलिन अगाढ दोष रहित अत्यन्त निश्चल सम्यग्दर्शन को ग्रहण करके उसके ध्यान मे दुःख क्षय के लिए ध्यावना।

[मोक्षपाहुड गा० ८६]

(२३) सम्यक्त्व अमूल्य माणिक्य समान है। जो जीव निरन्तर सम्यक्त्व का ध्यान करते हैं, चितवन करते है, वारम्बार भावना करते हैं, वह निकट भव्य जीव सम्यग्दृष्टि हो जाता है और सम्यक्त्व रूप परिणमित जीव दु खदायी आठ कर्मों को क्षय करता है। कर्म के क्षय का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से ही होता है। इस पूर्ण प्रयत्न से सर्व प्रथम उसको ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

[मोक्षपाहुड गा० ८७ संस्कृत टीका हिन्दी महावीरजी से प्रकाशित अष्टपाहुड पृ० ५७५]

(२४) वारम्बार सम्यग्दर्शन के महात्म्य का वर्णन करते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि "अधिक कहने का क्या प्रयोजन ? अतीतकाल मे जितना भरत, सगर, राम, पाडव आदि श्रेष्ठ भव्य जीवो ने मोक्ष प्राप्त किया, तथा भविष्य काल मे मोक्ष प्राप्त करेगा और वर्तमान मे करता है वह सम्यग्दर्शन का महात्मय है।"

[मोक्षपाहुड गाथा ८८ अष्टपाहुड प्रकाशित महावीरजी पृ ५७७]

(२५) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप यह चारो आत्मा मे स्थित है इसीलिए आत्मा ही मेरे शरण है।

[मोक्षपाहुड गा० १०४ अष्टपाहुड महावीरजी पृ ५९२]

(२६) आत्मा ही आत्मा की श्रद्धा करता है, आत्मा ही आत्मा का ज्ञान करता है, आत्मा ही आत्मा के साथ तत्मयपने का भाव करता है। आत्मा ही आत्मा मे तपता है। आत्मा ही आत्मा मे केवलज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करता, इसी प्रकार चार प्रकार से आत्मा ही आत्मा की आराधना करता है इसलिए आत्मा ही मेरे शरण है।

[मोक्षपाहुड गा० १०५, अष्टपाहुड महावीरजी से प्रकाशित पृ० ५९२]

(२७) आत्मा ही मेरा शरण है ऐसा निर्णय करने वाला जीव सदाकाल भूतार्थ का आश्रय करता है और उसके आश्रय से ही

सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। "भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है।" [समयसार गाथा ११]

२८. शुद्ध का अर्थ क्या है ?

नहि अप्रमत्त, प्रमत्त नहि जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञाक वो तो वो हि है॥ ६॥

अर्थ—जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नही और प्रमत्त भी नही है। इस प्रकार इसे शुद्ध कहते हैं और जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह तो वही है, अन्य कोई नही। ज्ञायक भाव अप्रमत्त भी नही, और प्रमत्त भी नही, वह तो समस्त अन्य द्रव्यो के भावो से भिन्न रूप से उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है। [समयसार गा० ६]

एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है। वहाँ द्रव्य अपेक्षा तो पर द्रव्य से भिन्नपना और अपने गुणो से अभिन्नपना उसका नाम शुद्धपना है और पर्याय अपेक्षा औपाधिक भावो का अभाव होना शुद्धपना है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १९९]

(२९) आत्मा ही शरण होने से आत्माश्रित निश्चयनय है पराश्रित व्यवहारनय है। ऐसा कहकर पराश्रित भाव छुडाया है और आत्माश्रित को ग्रहण कराया है। जीव को अनादि से जो पराश्रय से मेरा भला होगा ऐसी खोटी मान्यता को छुडाकर ध्रुव ज्ञायक त्रिकाली स्वभाव का आश्रय कराया है। अबन्धभाव आत्माश्रित है और बन्धभाव पराश्रित है ऐसा बताया है।

[समयसार गा० २७२ सस्कृत टीका से]

(३०) आत्मा ही एकमात्र शरण होने से वह ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि है अर्थात् उसके आश्रय से ही अबन्धदशा प्रगट होती है और पराश्रय से बन्ध होता है।

[समयसार गा० २७६-२७७ की टीका से]

(३१) शुद्ध आत्मा ही दर्शन है, क्योकि वह (आत्मा) दर्शन का

आश्रय है ऐसा जो समयसार गा० २७६-२७७ मे कहा है उसी प्रकार जो सिद्धान्त समयसार की ११वी गाथा मे कहा है, वह ही बन्ध अधिकार मे लगाना चाहिए।

(३२) शुद्ध आत्मा ही दर्शन (सम्यक्त्व) का आश्रय है, क्योकि जीवादि नव पदार्थो के सद्भाव मे या असद्भाव मे उसके (शुद्ध आत्मा के) सद्भाव से ही सम्यक्दर्शन का सद्भाव है। अवन्ध आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन है।

[समयसार गा० २७६-२७७ की टीका से]

(३३) क्योकि दर्शनमोहनीय देशघाती प्रकृति का उदय रहने पर भी जीव को एकदेश स्वभावरूप रहने मे कोई विरोध नही है।

[धवल पुस्तक १ पृष्ठ ३९८]

यहाँ पर बतलाया है कि चौथे गुणस्थान से १४वें गुणस्थान तक जीवो को सम्यग्दर्शन स्वभावरूप अवस्था है उसी से आत्मा का ज्ञायक स्वभावपना प्रकट होता है।

ज्ञान वह अभेदनय से आत्मा ही होने से उपादेय है अन्य सब हेय है। इस प्रकार वीतरागी शास्त्रो मे चाहे वह करणानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो कोई भी किसी मे विरोध नही है।

(३४) कदो दसण मोहोदये सति जीव गुणीभूत सदहणस्स उधत्तिएउवलय"। अर्थ—क्योकि दर्शनमोहनीय होने पर (सम्यक् प्रकृति का उदय होने पर भी) जीव को गुणीभूत श्रद्धा की उत्पत्ति की प्राप्ति होती है। (यहाँ पर श्रद्धा से जीव को गुणीभूत कहा—इसलिए सिद्ध हुआ कि जीव को त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से इस गुणीभूत की श्रद्धा उत्पन्न होती है पराश्रय से कभी नही। धवल पुस्तक ७ पृष्ठ २३८ मे लिखा है कि बाह्य स्थिति ऊपर" अवलम्बित नही है।

(३५) चौथे गुणस्थान से १४वे गुणस्थान तक सम्यक्त्व का एकत्व है। इस सम्बन्ध मे कहा है कि दर्शनमोहनीय के उपशम से

उपशम सम्यक्त्व होता है, क्षय से क्षायिक होता है और क्षयोपशम से क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व होता है। इन तीनो का एकत्व ही उसका नाम सम्यग्दृष्टि है, क्योकि यह तीनो भाव सम्यग्दृष्टियो के ही होते है। [धवल पु० ७ पृ० १०७]

(३६) क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ है। [धवल पु० ५ पृ० २६४]

इस पचम काल मे भरत क्षेत्र मे जन्मा हुआ जीव क्षायिक-सम्यक्त्व प्रगट करे, ऐसी योग्यता किसी जीव को नही। ऐसा त्रिकाल सर्वज्ञदेव के ज्ञान मे आया है। अहो सर्वज्ञ का अद्भुत सर्वज्ञपना।

(३७) ज्ञान जीव को सारभूत है और ज्ञान की अपेक्षा सम्यक्त्व सारभूत है, क्योकि सम्यक्त्व से ही चारित्र होता है और चारित्र से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है।

[दर्शनपाहुड गा० ३१]

[धवल पु० १ पृ० १७७]

(३८) सम्यक्त्व से ज्ञान होता है और ज्ञान से समस्त पदार्थों की उपलब्धि होती है और वह जीव अपने कल्याण का और अकल्याण का विशेष अन्तर भेद जानता है। [दर्शनपाहुड गा० १५]

ज्ञान ज्योति प्रगट होती है। [पचास्तिकाय गा० ७०]

जैसी द्रव्यानुयोग और करणानुयोग मे सम्यक्त्व की महिमा बतलायी है उसी तरह से चरणानुयोग के शास्त्रो मे भी बतलायी है।

(३९) तीन काल और तीन लोक मे सम्यग्दर्शन के समान कोई हितकारी नही। और मिथ्यात्व के समान कोई अहितकारी नही।

[रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० ३४]

(४०) जिस पुरुष को सम्यक्त्वरूप जल का प्रवाह निरन्तर प्रवर्तता है उसे कर्मबन्ध नही होता। उसको कर्मरज का आवरण लगता नही और पूर्व बँधा हुआ कर्म नाश को प्राप्त होता है।

[दर्शनपाहुड सूत्र ७]

दर्शन रत्न जो परिणति सम्यग्दर्शन को धारण करता है वह रत्न-त्रय मे सार उत्तम गुण को धारण करता है वह मोक्ष का प्रथम सोपान है। [दर्शनपाहुड सूत्र २१]

जीव विशुद्ध सम्यग्दर्शन से कल्याण की परम्परा को प्राप्त होता है। [दर्शनपाहुड सूत्र ३१]

हेय-उपादेय सम्यग्दृष्टि ही जानता है। जिन प्रणीत जीव-अजीव आदि का बहुविधि अर्थ है। उसमे जो हेय-उपादेय को जानता है वह ही सम्यग्दृष्टि है। [सूत्रपाहुड गा० ५]

(४१) केवली-सिद्ध भगवान रागादि रूप नही परिणमते, ससार अवस्था की इच्छा नही करते यह श्रद्धान का बल जानना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३२४]

(४२) सम्यक्त्व गुण, तिर्यंच आदिक और केवली सिद्ध भगवान को सम्यक्त्व गुण समान ही कहा है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३२४]

(४३) सम्यग्दर्शन रत्न अर्घ है जिस जीव को विशुद्ध सम्यग्दर्शन है वह परम्परा कल्याण को प्राप्त करता है वह सम्यग्दर्शन रत्न लोक मे सुर-असुर द्वारा पूज्य है।

[दर्शनपाहुड तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार]

देव और दानवों से युक्त इस ससार मे सम्यग्दर्शन सर्व द्वारा पूजने मे आता है। इस रत्न का मूल्य कोई भी करने को समर्थ नही।

[अष्टपाहुड महावीरजी से प्रकाशित पृ० ४४]

(४४) सम्यक्त्व परिणत जीव सम्यक्त्व है। अतः द्यानतराय जी कृत सम्यग्दर्शन की अष्टद्रव्य सहित पूजा, सम्यग्दृष्टि जीव को लागू होती है। तथा बनारसीदास जी ने समयसार नाटक मे सम्यग्दृष्टि को वन्दन किया है।

(४५) सम्यग्दृष्टि नमस्कार के योग्य है—

पद्मपुराण मे लिखा है कि "निश्चित ही इसका यह शरीर अन्तिम शरीर है ऐसा जानकर उसने, हस्त-कमल शिर से लगा, तथा तीन

प्रदक्षिणाये देकर अपनी स्त्रियो के साथ बालक के उस चरम शरीर को नमस्कार किया ।"

इसमे राजा प्रतिसूर्य ने सम्यग्दृष्टि हनुमान बालक की तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया, तब सम्यग्दृष्टि पूजने योग्य है ऐसा प्रथमानुयोग का शास्त्र बताता है ।

(४६) सम्यग्दृष्टि कैसा जानता है कि—

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं ।
अपने रस सौ भर्यौ आपनी टेक हौं ॥
मोह कर्म मम नाहि भ्रम कूप है ।
शुद्ध चेतना सिन्धु हमारौ रूप है ॥३३॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष ऐसा विचार करता है कि मैं सदैव अकेला हूँ, अपने ज्ञान-दर्शन रस से भरपूर अपने ही आश्रय से हूँ । भ्रमजाल का कूप मोह कर्म मेरा स्वरूप नही है, नही है । मेरा स्वरूप तो शुद्ध चैतन्य सिन्धु है ॥३३॥ [समयसार नाटक जीव द्वार]

समयसार द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग सतशास्त्र एक आवाज से सम्यग्दृष्टि की वदना करने को कहते हैं ।

प्रकरण चौथा—निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्पष्टीकरण

(१) सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है । वह परमात्मा नही और बहिरात्मा भी नही । परमात्मा और बहिरात्मा को व्यवहार नही होता है, क्योकि वीतराग परमात्मा को राग नही, कुछ बाधकपना नही है ।

जिसको अशरूप से शुद्धि प्रगट हुई है उसे भूमिकानुसार बाधकपना होता है । यहाँ उस बाधकपने को व्यवहार कहा है और जो शुद्धि प्रगटी है उसे निश्चय कहा है । क्योकि सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र गुण की पर्याय मे दो अश हो जाते हैं वहाँ जितनी शुद्धि होती है वह मोक्षमार्ग है और जो अशुद्धि है वह बन्धमार्ग है ।

मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को सम्पूर्ण बाधकपना है इसलिए मिथ्या-

दृष्टि को व्यवहारपना होता ही नही, क्योंकि निश्चय हो तो व्यवहार-पना नाम पावे।

(२) साधक अन्तरात्मा को एक साथ साधक-बाधक कहा है, क्योकि उसको ज्ञानधारा और कर्म धारा एक साथ होती है।

चौथे गुणस्थान मे प्रथम निर्विकल्पता आती है तब निश्चय सम्यक् दर्शन प्रगट होता है। सविकल्पदशा आने पर निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होते हुए, चारित्र मोह के उदय की कमजोरी के कारण सच्चेदेव, गुरु, शास्त्र सम्बन्धी ही विकल्प होता है कुगुरु आदि का नही। इसलिए सम्यग्दृष्टि के देव-गुरु-शास्त्र के शुभो-पयोग को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है, क्योकि व्यवहार सम्यग्दर्शन-रूप राग क्रम-क्रम से निर्जरा को प्राप्त हो जाता है।

पाँचवाँ गुणस्थान भी निर्विकल्प दशा मे प्राप्त होता है। सविकल्प दशा आने पर दो चौकडी कषाय के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है उसके साथ बारह अणुव्रतो का विकल्प होता है अन्य प्रकार का नही। इसलिए देशचारित्र श्रावक के १२ अणुव्रतादि को व्यवहार श्रावकपना कहा है, क्योकि अणुव्रतादि का राग क्रम-क्रम से निर्जरा को प्राप्त हो जाता है।

पाँचवें गुणस्थान से प्रथम सातवे गुणस्थान मे आता है तब तो निर्विकल्पता होती है। छठे गुणस्थान मे सविकल्पदशा होती है वहाँ पर भावलिंगी मुनि को तीन चौकडी कषाय के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है और उसके साथ सज्वलन क्रोधादि का तीव्र उदय होने से अर्थात् अपनी कमजोरी से २८ मूलगुण सम्बन्धी ही विकल्प आता है, अन्य नही। इसलिए भावलिंगी मुनि के २८ मूलगुण आदि के विकल्प को व्यवहार मुनिपना कहा है क्योकि व्यवहार मुनिपने का राग क्रम-क्रम से निर्जरा को प्राप्त हो जाता है। सातवे गुणस्थान से इस प्रकार का राग होता नही है अबुद्धि पूर्वक राग की बात यहाँ गौण है।

मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को निश्चय सम्यग्दर्शन; सच्चा श्रावकपना, सच्चा मुनिपना होता ही नही, इसलिए उसको व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार श्रावक, व्यवहार मुनिपना भी नही होता है। क्योकि निश्चय के बिना व्यवहार कैसा ? अर्थात् निश्चय के बिना व्यवहार होता ही नही है।

(३) भूमिकानुसार साथ-साथ रहने वाला निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या—

"जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम्।
व्यवहारात्-निश्चयतः, आत्मैव भवति सम्यक्त्वम् ॥२०॥

अर्थ—जीव आदि कहे हुए जो पदार्थ उनकी श्रद्धा वह व्यवहार सम्यक्त्व जिनवर ने कहा है। निश्चय से अपना आत्मा वह ही सम्यक्त्व है। निश्चय सम्यक्त्व का विषय निज आत्मा है और व्यवहार सम्यक्त्व का विषय निज आत्मा नही, परन्तु उनसे जुदा विषय अर्थात् जीवादि नव पदार्थ हैं। [दर्शनपाहुड श्लोक २०]

स्वाश्रितो निश्चय-पराश्रितो व्यवहार। [समयसार गा० २७२]

(१) आत्मा के श्रद्धा गुण मे सम्यक्त्व प्राप्ति के साथ एक चौकडी कषाय के अभावरूप शुद्धि निश्चय सम्यग्दर्शन, भूमिकानुसार देव गुरु, शास्त्र का राग व्यवहार सम्यग्दर्शन है। (२) दो चौकडी कषाय के अभावरूप शुद्धि निश्चय श्रावकपना है १२ और अणुव्रतादि का विकल्प व्यवहार श्रावकपना है। (३) तीन चौकडी कषाय के अभावरूप शुद्धि निश्चय मुनिपना है और २८ मूलगुण का विकल्प व्यवहार मुनिपना है।

प्रश्न—व्यवहार कब कहा जावेगा ?

उत्तर—व्यवहार निश्चय को बताये तो व्यवहार है। जैसे—सोने मे जो खोट है वह यह बताता है, मैं सोना नही हूँ, उसी प्रकार भूमिकानुसार जो राग है उस पर व्यवहार का आरोप आता है वह निश्चय को बतलाने मात्र है तब व्यवहार है।

(४) ज्ञानी को व्यवहार सम्यग्दर्शन मे विपरीत अभिनिवेश होता

नही, क्योकि चौथे गुणस्थान मे सम्यग्दर्शन होने पर विपरीत अभिनिवेश का अभाव ही होता है।

जीवादि नव पदार्थो का विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। उन पदार्थो मे भूतार्थ द्वारा अभिगत पदार्थो मे शुद्धात्मा का भिन्नरूप से सम्यक् अवलोकन करना सम्यग्दर्शन है।

[समयसार जयसेनाचार्य गा० १५५]

(५) निज तत्व मे जिसका मार्ग विशेषरूप से हुआ है ऐसे जीवो को व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है।

"काल सहित पचास्तिकाय के भेदरूप नव पदार्थ, वे वास्तव मे "भाव" है। उन "भावो का" मिथ्यादर्शन के उदय से प्राप्त होने वाला जो अश्रद्धान उसके अभाव स्वभाव वाला जो भावान्तर (नव पदार्थों के श्रद्धान रूप भाव) श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है।

[पचास्तिकाय गा० १०७ की टीका से]

यह छठे गुणस्थान धारी तीन चौकडी कषाय के अभावरूप परिणमे हुए भावलिंगी मुनि के व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या है। यह चौथे, पाँचवे गुणस्थानधारी जीवो को भी निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ रहा हुआ व्यवहार सम्यग्दर्शन इसी प्रकार लागू पडता है।

(६) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सो मोक्षमार्ग है ऐसा निश्चय कहा तथा वहाँ छह द्रव्यरूप और नव पदार्थरूप जिनके भेद हैं ऐसे धर्मादि के तत्वार्थ श्रद्धानरूप भाव जिसका स्वभाव है ऐसा 'श्रद्धान' नाम का भाव विशेष सो सम्यक्त्व है।

[पचास्तिकाय गा० १६० की टीका से]

ऊपर गा० १६० की टीका मे छठे गुणस्थानवर्ती को मिथ्यात्व तथा तीन चौकडी कषाय के अभावरूप परिणत भावलिंगी मुनि की शुद्धि के साथ वर्तता हुआ व्यवहार सम्यक्त्व का वर्णन किया है।

(७) पचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ को भी व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। वहाँ व्यवहार मोक्षमार्ग के स्वरूप का निम्न वर्णन किया है—

"वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत जीवादि पदार्थों सम्बन्धी सम्यक्श्रद्धान तथा ज्ञान गृहस्थो और तपोधन को समान होता है। चारित्र तपोधनो को आचारादि चरणग्रन्थो मे विहित किये हुए मार्ग अनुसार प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थान योग्य पच महाव्रत-पच समिति-त्रिगुप्ति आदिरूप होता है और गृहस्थो को उपासकाध्ययन ग्रन्थ मे विहित किये हुए मार्ग अनुसार पचम गुणस्थान योग्य दान शील-पूजा आदिरूप होता है इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग का लक्षण है।

[पचास्तिकाय गा० १६० जय सेनाचार्य कृत]

यहाँ श्रावक और मुनि को निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग साथ-साथ होता है ऐसा बताया है।

वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत जीवादि पदार्थों का सम्यक्श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। यह व्यवहार सम्यक्त्व की व्याख्या जयसेनाचार्य जी ने की है। साथ-साथ व्यवहारज्ञान और व्यवहार चारित्र भी लिखा है।

(८) "विपरीत अभिविनेश रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।"

[नियमसार गा० ५१]

(९) प्रवचनसार गा० १५७ मे क्षायोपशमिकसम्यक्त्व और क्षायोपशमिक चारित्र, ५-६ गुणस्थान मे शुद्धरूप है उसके साथ उसी समय वर्तता व्यवहार श्रद्धा शुभोपयोग साथ रहता है।

"वशिष्ट (खास प्रकार की) क्षयोपशम दशा मे रहा हुआ दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीयरूप पुद्गलो के अनुसार परिणति मे लगा हुआ होने के कारण शुभ उपराग ग्रहण करने से जो उपयोग परम भट्टारक महादेवाधिदेव परमेश्वर ऐसे अरहत और सिद्ध की और साधु की श्रद्धा करने मे तथा समस्त जीव समूह की अनुकम्पा का होना वह शुभोपयोग है" (यहाँ पर देव-गुरु की श्रद्धा व्यवहार सम्यक्त्व है और इसे शुभोपयोग कहा है। क्योकि वह चारित्र मोहनीय के उदय के साथ जुडा हुआ है। जो दर्शनमोह के क्षयोपशम के

अनुसार परिणति है वह निश्चय सम्यक्त्व है और चारित्र मोहनीय क्षयोपशम के अनुसार जो परिणति है वह निश्चय चारित्र है।)

[प्रवचनसार गा० १५० की टीका]

(१०) जो सम्यक्त्व कहा है वह चौथे गुणस्थान से १४वे गुण-स्थान तक का वर्णन होने से निश्चय सम्यग्दर्शन है। क्योकि निश्चय सम्यक्त्व के साथ रहने वाला व्यवहार सम्यक्त्व सातवे गुणस्थान से आगे नही होता है।

यहाँ पर निश्चय सम्यक्त्व को परमार्थ, भूतार्थ, शुद्ध, निर्मल, पवित्र, आभ्यन्तर, अनुपचार सत्यार्थ सम्यग्दर्शन कहा है और व्यव-हार सम्यत्व को अपरमार्थ, अभूतार्थ, अशुद्ध, अपवित्र, अनिर्मल, बाह्य, उपचार, असत्यार्थ सम्यक्त्व कहा है।

निश्चय सम्यग्दर्शन का आश्रय शुद्ध आत्मा है और व्यवहार सम्यक्त्व का आश्रय जीवादि नव पदार्थ है।

[समयसार गा० २७६-२७७]

व्यवहार सम्यग्दर्शन पराश्रित होने से जिनवरो ने उसे हेय, त्याज्य, बध का कारण कहा है, क्योकि वह दूसरे के आश्रय से होता है। ज्ञानियो को अस्थिरता सम्बन्धी विकलल्प छोडने का पुरुषार्थ वर्तता है।

(११) **प्रश्न—४-५वें गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को किसी-किसी समय अशुभभाव व्यक्तरूप होता है और शुभभाव भी सदा एक प्रकार का नहीं होता, तो उस काल सम्यग्दृष्टि के व्यवहार सम्यक्त्व का क्या हुआ?**

उत्तर—उस सयय वह व्यक्तरूप ना होकर शक्तिरूप होता है और जब होता है तब व्यक्त रूप होता है।

(शक्ति व्यक्ति का स्वरूप पचास्तिकाय गा० ४९ मे ज्ञान पर्याय के सम्बन्ध मे दिया है) और इष्टोपदेश मे राग द्वेप की शक्ति, व्यक्ति के विषय मे लिखा है।

(१२) प्रश्न—सातवें गुणस्थान से लेकर बाद के गुणस्थानो में व्यवहार सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ?

उत्तर—व्यवहार सम्यक्त्व शुभराग है, अशुद्धता है। सातवे गुणस्थान से आगे के गुणस्थानो मे निर्विकल्पता रहती हैं। अबुद्धिपूर्वक राग १०वे गुणस्थान तक रहता है। इसलिए सातवे गुणस्थान से आगे-आगे के गुणस्थानो मे चारित्र गुण की पर्याय मे शुद्धता बढती जाती है, अशुद्धता का अभाव होता जाता है। इसलिए सातवें से लेकर आगे के गुणस्थानो मे व्यवहार सम्यक्त्व नही है। निश्चय सम्यक्त्व चौथे से सिद्ध तक बराबर एक समान रहता है।

(१३) बहिरात्मा-अन्तरात्मा का स्वरूप :—

त्रिकाली ज्ञायक परम पारिणामिक जीवतत्व को आत्मा कहते हैं। पर्याय की अपेक्षा बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा का भेद है। इन तीन अवस्थाओ से रहित द्रव्य रहता है। इस प्रकार द्रव्य और पर्याय रूप जीव पदार्थ को जानना चाहिए।

प्रश्न—मोक्ष का क्या कारण है ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व मोह-राग-द्वेषरूप बहिरात्म अवस्था है। वह तो अशुद्ध हैं दु खरूप है वह तो मोक्ष का कारण नही है। (२) मोक्ष अवस्था तो फलस्वरूप है इसलिए यह भी मोक्ष का कारण नही है। (३) बहिरात्मा अवस्था तथा मोक्षपूर्ण अवस्था से भिन्न (अलग) जो अन्तरात्म अवस्था है वह मिथ्यात्व, रागद्वेष, मोह रहित होने के कारण शुद्ध है वह अन्तरात्म अवस्था सवर-निर्जरा अवस्था मोक्ष का कारण है।

चौथे गुणस्थान से जितनी शुद्धि है वह मोक्ष का कारण है, जो अशुद्धि है वह बन्ध का कारण है मोक्ष का कारण नही है।

[पुरुषार्थसिद्धि उपाय गा० २१२-२१३-२१४ मे देखो, उसमें जो शुद्धि अश है वह मोक्षमार्ग है वह मोक्ष का कारण है और अशुद्धि अश है, बन्धरूप है, हेय त्याज्य है।]

प्रश्न—अन्तरात्म अवस्था में ध्यान करने योग्य कौन है ?

उत्तर—त्रिकाली परम पारिणामिक ज्ञायक स्वय जीव ही (द्रव्य ही) ध्यान करने योग्य है। अपना त्रिकाली परमात्म द्रव्य, इस अन्तरात्म अवस्था से कथञ्चित् भिन्न है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० २३८ की टीका से]

अन्तरग और बहिरग दोनो प्रकार के परिग्रह से रहित उत्कृष्ट शुद्धोपयोगी मुनि (१२वे गुणस्थानवर्ती) उत्तम अन्तरात्मा है। अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती) जघन्य अन्तरात्मा है। उक्त दोनो की मध्य दशावर्ती देशव्रती श्रावक और मुनिराज (पाँचवे से ११वें गुणस्थान तक) मध्य अन्तरात्मा है। [नियमसार गा० टीका १४९]

(१४) तात्पर्य यह है कि ४-५-६ गुणस्थानो मे निश्चय सम्यग्दर्शन सहित व्यवहार सम्यक्त्व होता है। इन गुणस्थानो मे जो जो शुद्धि है वह सवर-निर्जरारूप है और मोक्ष का कारण है और जो भूमिकानुसार राग है वह अल्प स्थिति अनुभागरूप घातिकर्म बध का निमित्त कारण है, परन्तु अनन्त ससार का निमित्त कारण नही है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जुदा नव तत्वो का जानना मिथ्यादृष्टिपना है। कलश ६ मे नव पदार्थो का जानना मिथ्यात्व कहा है।

(१५) वस्तु तो द्रव्य है और द्रव्य का निज भाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त-नैमित्तिक भाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थों को जाने और शुद्धनय से आत्मा को न जाने तब तक पर्याय बुद्धि है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

[समयसार गा० १३ के भावार्थ मे से पृष्ठ ३३]

(१६) इससे सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन लागू नही पड़ता है।

मिथ्यादृष्टि जीव के देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान आभासमात्र होता है और इसके श्रद्धान मे विपरीताभिनिवेश का अभाव नही होता

इसलिए यहाँ निश्चय सम्यक्त्व तो है नही और व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। क्योकि इसके देव, गुरु, धर्मादिक का श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेश के अभाव को साक्षात् कारण (निमित्त) नही हुआ। कारण हुए विना उपचार सम्भव नही है; इसलिए साक्षात् कारण की अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी इसके सम्भव नही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३३३]

विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम वह तो निश्चय सम्यक्त्व है क्योकि यह सत्यार्थ सम्यक्त्व का स्वरूप है। सत्यार्थ ही का नाम निश्चय है। तथा विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान को कारणभूत (निमित्तभूत) श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है क्योकि कारण मे (निमित्त मे) कार्य का उपचार किया है। सो उपचार ही का नाम व्यवहार है। सम्यग्दृष्टि जीव के देव, गुरु धर्मादिक का सच्चा श्रद्धान है उसी निमित्त से इसके श्रद्धान मे विपरीताभिनिवेश का अभाव है। यहाँ विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान निश्चय सम्यक्त्व है और देव-गुरु, धर्मादिक का श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है। इस प्रकार साधक को एक ही काल मे दोनो सम्यक्त्व पाये जाते हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३३३]

जिसे स्व-पर का श्रद्धान नही है और जिनमत मे कहे, जो देव-गुरु-धर्म उन्ही को मानता है वा सप्त तत्वो को मानता है, अन्य मत मे कहे देवादि को नही मानता है, तो इस प्रकार केवल व्यवहार सम्यक्त्व से सम्यक्त्वी नाम नही पाता। (गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होने की अपेक्षा से व्यवहार सम्यक्त्व कहा है।)

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ २]

परन्तु व्यवहार तो उपचार का नाम है; सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयादि के कारणादिक हो।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५७]

वास्तव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जितना ज्ञान है वह

मिथ्याज्ञान है, जितना चारित्र है मिथ्याचारित्र है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किये विना व्यवहाराभासी, अनादिरूढ, मिथ्यादृष्टि, ससार तत्व ही कहलाता है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के वाद शुभाशुभ भावरूप कार्य को करता हुआ तद्रुप परिणमित हो, तथापि अन्तरग मे ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नही है। यदि शरीराश्रित व्रत-सयम को अपना माने तो मिथ्यादृष्टि होता है। ज्ञानी को सविकल्प परिणाम होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी पृष्ठ २]

सम्यक्त्वी के व्यवहार सम्यक्त्व मे वा अन्य काल मे अन्तरग निश्चय-सम्यक्त्व गर्भित है। सदैव गमनरूप (परिणमनरूप) रहता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी मे पृष्ठ ६]

तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव अपने स्वभाव का आश्रय लेकर अन्तरात्मा वनकर और क्रम से स्वरूप की स्थिरता करके, श्रेणी माड कर अरहत, सिद्ध दशा प्राप्त कर लेता है।

४-५-६ गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार सम्यक्त्व एक साथ होता है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

प्रकरण पांचवां

धर्म का मूल चारित्र है, वह (चारित्र) शुद्ध आत्मा मे प्रवृत्ति, जहाँ राग का अवलम्बन नही है।

(१) धर्म का मूल

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। धर्म का अर्थ चारित्र होता है क्योकि चारित्रधारी को ही निर्वाण की प्राप्ति होती है।

(अ) जैसे—वीज ही नही, तव वृक्ष कैसे उपजेगा ? और वृक्ष ही नही उपज्या, तव स्थिति किसकी होवे ? वृद्धि किसकी होय ? और फल का उदय कैसे होय ? वैसे ही सम्यग्दर्शन नही होवे तव ज्ञान-

चारित्र भी नही होय। सम्यक्त्व विना जो ज्ञान है वह कुज्ञान है और चारित्र है वह कुचारित्र है। तव सम्यक्त्व विना ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति ही नही, तव स्थिति कहाँ से होवे ? और ज्ञान-चारित्र की वृद्धि कैसे होवे ? और ज्ञान-चारित्र का फल सर्वज्ञ परमात्मापना कैसे होय ? इसलिए सम्यक्त्व विना सत्य श्रद्धान ज्ञान-चारित्र कभी भी नही होता है। [रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ३२ की टीका से]

(आ) सम्यक्त्व सहित अल्प हूँ शुभभाव, अल्पज्ञान, अल्प चारित्र, अल्प तप इस जीव को कल्पवासी इन्द्रादिकनि मे उपजाय जन्म-मरण के दुःख रहित परमात्मा कर देता है। और सम्यक्त्व विना वहुत शुभभाव हो, ११ अग ६ पूर्व का पाठी हो, शुक्ललेश्या हो, घोर तप करे, तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिप मे तथा अल्प ऋद्धिधारी कल्पवासीनि मे उत्पन्न होकर फिर चारो गतियो मे भ्रमण करता हुआ निगोद को चला जाता है। इसलिए सम्यक्त्व सहित हो ज्ञान, चारित्र, तप धारण करना जीव का कल्याण है। [आत्मानुशासन श्लोक १५ की टीका से] तथा [रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ३२ पृष्ठ ६२]

(इ) सर्वज्ञदेव ने शिष्यो को ऐसा उपदेश दिया है कि जैसे— मन्दिर की नीव तथा वृक्ष की जड होती हैं वैसे चारित्र धर्म है। धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। "दसण मूलो धम्मो"। (दर्शनपाहुड गाथा २)

(ई) सम्यग्दर्शन बिना धर्मरूपी महल का वृक्ष होता ही नही। अर्थात् जैसे—जड के विना वृक्ष नही, नीव के विना मन्दिर नही, तैसे सम्यग्दर्शन के विना ज्ञान-चारित्र धर्म नही है।

द्रव्यानुयोग का यह कथन चरणानुयोग के साथ मेल वाला है।

(उ) "दसण भूमिह वाहिरा, जिय वयरूक्खण हुन्ति"

अर्थ—हे जीव सम्यग्दर्शन भूमि के बिना, व्रतरूपी वृक्ष नही होता है। यहाँ पर भी चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन कहा है।

(योगीन्द्र देवकृत श्रावकाचार) तथा (मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३८)

(ऊ) सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होता है ऐसी शका नही करनी

और अज्ञानी सयमी देखने मे आता है, ऐसी नही मानना चाहिए, क्योंकि सयमरूपी कार्य का कारणभूत सम्यग्दर्शन है और जहाँ सम्यग्दर्शन का अभाव होता है वहाँ भावसयम कभी नही होता है और द्रव्यसयम हो तो वह अज्ञान की और बध की पद्धति मे है।

(धवल पुस्तक १ पृष्ठ १७५, पृष्ठ ३७८)

(ए) श्रद्धान वह सम्यक्त्व है और सम्यक्त्व चारित्र का कारण है। जहाँ कारण न होय, तहाँ भाव चारित्र (भाव सयम) प्रकट होय ही कहाँ से। जीव ने अनन्तबार द्रव्य सयम धारण किया और ससार बढाया और अब मनुष्यभव पा करके भी ऐसा ही करे, तो ससार वृद्धिगत होता है। सम्यग्दृष्टि सदा रागवर्जक है, जबकि मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा द्रव्य सयमी रागवर्धक है।

(समयसार, छहढाला, रत्नकरण्डश्रावकाचार)

इस प्रकार द्रव्यानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग के वीतरागी शास्त्रो मे एक ही सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

प्रश्न—चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन होने पर जीव ने मोक्षमार्ग ग्रहण किया है, ऐसा कहलाया जाएगा या नही ?

उत्तर—कहलाया जायेगा, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर जीव को आत्मस्वरूप की प्राप्ति, आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति अथवा आत्मा के गुणीभूत स्वभाव की प्राप्ति होती है। इससे पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति १४वे गुणस्थान मे परमात्मा को होती है—उसी जाति की प्राप्ति चौथे गुणस्थान मे अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि को होती है।

(ए) भगवान का लघुनन्दन चौथा गुणस्थानधारी जीव शिवमार्ग मे केली करता है। निज पर का विवेक होने से मोक्षमार्ग मे आनन्द करता है, सुख भोगता है। अरहत देव का लघुपुत्र होने से थोडे काल मे ही अरहत पद प्राप्त करता है। मिथ्यादर्शन का नाश होने से निर्मल सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवो को आनन्दमय

अवस्था का निश्चय करके प० बनारसीदास जी हाथ जोडकर नमस्कार करते हैं :

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चन्दन।
केलि करें शिव मारग में, जगमांहि जिनेश्वर के लघुनन्दन॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन।
शान्त दशा तिनकी पहिचान, करै कर जोरि बनारसि बन्दन॥
[समयसार नाटक से]

(ऐ) सम्यग्दृष्टि को चारित्र मोहवश लेश भी सयम ना होय, तो भी सुरनाथ पूजते हैं। [छहढाला]

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ३६, ३७, ३८, ३९, ४०-४१ देखो]

(ओ) सन्मार्ग ग्रहण करता है वह ही सम्यक्त्व प्राप्त करता है, सन्मार्ग का अर्थ मोक्षमार्ग होता है। [धवल पुस्तक १]

इस प्रकार करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग का मेल जानना चाहिए, क्योंकि चारो अनुयोगो मे एक ही बात है। सम्यग्दर्शन बिना धर्म की शुरूआत नही होती है और सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र नही होता है। इसलिये पात्र जीव को प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है।

(२) मनाक (अल्प) चारित्र धर्म

प्रश्न—(अ) चतुर्थ गुणस्थान मे अल्पचारित्र की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर—होती है, क्योंकि चौथे गुणस्थान मे मिथ्याचारित्र का अभाव होता है और उत्पादरूप आंशिक शुद्धि प्रगट होती है, ऐसा सिद्ध होता है।

(आ) "ऐसे दर्शन मोहनीय के अभावतै सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थ

ज्ञान प्रगट होय है और अनन्तानुवन्धी के अभावतै स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होय है ।

[रत्नकरण्ड श्रावकाचार गा० ४१ पृष्ठ ६८]

प्रश्न—(इ) स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—शुद्धात्मानुभव से अविनाभावी चारित्र विशेष को स्वरूपाचरण चारित्र कहते है ।

[जैन सिद्धान्त प्रवेशिका गोपालदास जी पृष्ठ ५१ प्रश्न नं० २२३ देखो]

प्रश्न—(ई) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—दर्शन मोहनीय की तीन और अनन्तानुवन्धी की चार प्रकृतियाँ—इन सात प्रकृतियो के उपशम अथवा क्षय अथवा क्षयोपशम के सम्वन्ध से और अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय मे युक्त होने वाले, व्रतरहित तथा अशत स्वरूपाचरण चारित्र सहित निश्चय सम्यक्त्वधारी चौथे गुणस्थानवर्ती होते है । (अनादि मिथ्यादृष्टि को पाँच प्रकृतियो का उपशम होता है) ।

[जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला पृष्ठ ६८ प्रश्न नं० २१३]

[जैन सिद्धान्त प्रवेशिका गोपालदासजी पृष्ठ १५८ प्रश्न नं० ६११]

इसलिए चौथे गुणस्थान मे अनन्तानुवन्धी के अभावरूप स्वरूपाचरण चारित्र नियम से होता ही है ।

चारित्र की व्याख्या—घाति कर्मो को पाप कहते हैं और पाप क्रिया का नाम मिथ्यात्व असयम और कपाय कहा है ।

[देखियेगा मिथ्यात्व, असयम, कपाय के अभाव को चारित्र कहा है]

[धवल पु० ६ पृष्ठ ४०]

(अ) चौथे गुणस्थान मे मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कषाय की निवृत्ति होती है तभी चारित्र की कणिका प्रगट होती है और चारित्र गुण से सिखा फूटती है तव वहाँ धारा प्रवाहरूप से मोक्षमार्ग की तरफ चलता है, चारित्र गुण की शुद्धता के द्वारा चारित्र गुण निर्मल होता है और

वह निर्मलता यथाख्यातचारित्र का अकुर है। सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरण की कणिका जागृत होती है तब मोक्षमार्ग सच्चा होता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक उपादान निमित्त चिट्ठी से].

(आ) परिणति के स्वाद को चारित्र कहा है।

[प्रवचनसार गा० ११]

(इ) चारित्र की कणिका इतनी थोडी है कि सयम चारित्र ऐसे नाम को प्राप्त नही होती है इसलिए सम्यग्दृष्टि को असयत सम्यग्दृष्टि कहा है।

(ई) दर्शन विशुद्धि मूल है। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान ज्योति का मूल है। सम्यग्दर्शन वह सम्यग्ज्ञान मे उपयुक्त होने का मूल है।

(३) धर्म की व्याख्या

(अ) "चारित्त खलु धम्मो" चारित्र वह वास्तव मे धर्म है। (आ) धर्म है सो साम्य है। (इ) स्वरूप मे चरना वह चारित्र है स्व-समय मे प्रवृत्ति ऐसा उसका अर्थ है। (ई) मोह क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम वह धर्म है। [प्रवचनसार गा० ७]

(उ) अहिंसा लक्षण धर्म, सागर-अनगाररूप धर्म, उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म, मोह-क्षोभ रहित आत्म परिणाम धर्म।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० ११]

(ऊ) मिथ्यात्व रागादि सन्सरणरूप भाव ससार मे पडते प्राणियो को उद्धार कर निर्विकार शुद्ध चैतन्य को प्राप्त करे वह धर्म है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० ७]

(ए) जो नरक, तिर्यंचादिक गति मे परिभ्रमणरूप दुख तै आत्मा को छुडाय उत्तम, आत्मिक, अविनाशी, अतीन्द्रिय मोक्ष सुख मे धारण करे सो धर्म है।

(ऐ) धर्म तो आत्मा का स्वभाव है जो पर मे आत्म बुद्धि छोड

अपना ज्ञाता दृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान अनुभव तथा ज्ञायक स्वभाव मे ही प्रवर्तनरूप जो आचरण वह धर्म है।

(ओ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनो को धर्म के ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव धर्म कहते हैं।

[रत्नकरण्डश्रावकाचार गा० २-३ पृष्ठ २ मे तथा ७-८ ९ मे धर्म की व्याख्या की है]

ऊपर की व्याख्याओ से ऐसा सिद्ध हुआ श्रावक-मुनि दोनो धर्म है, इसलिए वह चारित्र है साम्य है। चौथे गुणस्थानधारी जीवो को मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कपाय के अभावरूप स्वरूपाचरणचारित्र होता है इसलिए वह भी धर्म है, साम्य है, ऐसा जानना।

(४) चारित्र की व्याख्या

(अ) स्वरूप मे चरना वह चारित्र है। स्वसमय मे प्रवृत्ति उसका अर्थ है। [प्रवचनसार गा० ७]

(आ) चरण वह स्वधर्म है। धर्म आत्म स्वभाव है और वह रागद्वेप रहित जीव के अनन्य परिणाम है। [मोक्षपाहुड सूत्र ५०]

(इ) जो जानता है वह ज्ञान और जो प्रतीति करता है वह दर्शन। दोनो के सहयोग (एकमेक) से चारित्र है।

[चारित्रपाहुड सूत्र ३]

(ई) आत्मलीन जीव सम्यग्दृष्टि है। जो आत्मा को जानता है वह सम्यग्ज्ञान है और उसमे रक्त वह चारित्र है।

[भावपाहुड गा० ३१]

(उ) शुद्धात्मा श्रद्धानरूप सम्यक्त्व का विनाश वह दर्शनमोह है। निर्विकार निश्चय चित्तवृत्ति विनाशक वह क्षोभ है।

[प्रवचनसार जयसेनाचार्य गा० ७]

इस प्रकार मे व्याख्या करता हुआ, धर्म, चारित्र, साम्य, मोह, क्षोभ रहित परिणाम ऐकार्थवाचक है।

(ऊ) घातिया कर्मो को पाप कहा है। मिथ्यात्व, असयम, कषाय ये पाप क्रिया हैं। इन पाप क्रियाओ का अभाव होना वह चारित्र है।
[धवल पु० ६ पृष्ठ ४०]

(ए) सयमन करने को सयम कहते है। सयम शब्द का अर्थ सम्यक् होता है। इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक अन्तरग और वहिरग आस्रवो से विरत, वह सयम है।
[धवल पु० १ पृ० १४४, ३६९]

(ऐ) चारित्र दो प्रकार का है देशचारित्र, सकलचारित्र। श्रावक को पाँचवाँ गुणस्थान और मुनियो को छठा, सातवाँ गुणस्थान है। वहाँ निश्चय स्वभावभूत चारित्र का सच्चा अश होता है।
[धवल पुस्तक ५ पृष्ठ २३३]

(ओ) सयम कहने से छठे गुणस्थान से १३वे गुणस्थान तक का ग्रहण है क्योकि सयम भाव की अपेक्षा कोई भेद नही है। इस प्रकार करणानुयोग के शास्त्रो का कथन स्पष्ट है। निश्चय चारित्र ५वे, ६वे गुणस्थानवर्ती श्रावक और मुनि को होता है। वह सच्चा चारित्र है।

इसलिए मुनि के योग्य स्वरूपाचरण चारित्र होवे, तव श्रावक को एकदेशस्वरूपाचरण चारित्र होता है। चौथे गुणस्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र का मूल ही होता है क्योकि दर्शन धर्म का मूल है। स्वरूपाचरण चारित्र धर्म है। उसको मनाक् (अल्प) धर्म परिणति अथवा स्वरूपाचरण चारित्र की कणिका की शिखा फूटना कहो, एक ही वात है।

(औ) अनन्तानुवन्धी के अभावतै स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होता है। [रत्नकरण्ड श्रावकाचार गा० ४१ पृ० ६८]

(अ) चौथेगुणस्थान मे 'सवर' शब्द को शुद्धोपयोग कहा है।
[वृहतद्रव्य सग्रह गा० ३४]

(अ) सम्यग्दर्शन स्वरूपाचरण चारित्र का मूल है। वहाँ अनन्तानुवन्धी का अभाव है। इसलिए चौथे गुणस्थान मे स्वरूपाचरण

चारित्र होता है ऐसा सिद्ध किया है। इस पर भी जो कहते है कि स्वरूपाचरण चारित्र नही होता, तो मिथ्याचारित्र होना चाहिए, परन्तु यह न्याय सगत नही है और जो कहते हैं कि चौथे गुणस्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र नही होता है वह मिथ्यादृष्टि, जिनमत से बाहर, पापी और जिनशासन का विरोध करने वाले है।

(क) तत्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट ना भासै तब स्वयमेव क्रोधादिक उत्पन्न नही होते, तब सच्चा धर्म होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२९].

(५) मोक्ष

जीव का हित मोक्ष है। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए कहा है कि सम्यग्दर्शन का फल चारित्र है और चारित्र का फल मोक्ष है। चारित्र बिना कोई भी जीव मोक्ष प्राप्त नही कर सकता है। इसलिए तीर्थंकर नाम कर्म सहित और तीन ज्ञान सहित जन्मे हुए जीवो को भी चारित्रदशा प्राप्त किए बिना अर्थात् भावलिंगी मुनिदशा पाये बिना मोक्ष नही होता। इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही सवर अर्थात् धर्म की शुरुआत होती है।

(अ) सवर की महिमा प० बनारसीदास जी ने गाई है :

आस्रवरूप राक्षस जगत के जीवो को अपने वश मे करके अभिमानी हो रहा है वह अत्यन्त दु खदायक और महाभयानक है। उसका वैभव नष्ट करने योग्य है। उसके वैभव को नष्ट करने के लिए जो उत्पन्न हुआ है वह धर्म का धारक है। कर्मरूप रोग को मेटने के लिए वैद्य समान है। जिसके प्रभाव से परद्रव्य जनित राग-द्वेष आदि विभावभाव भाग जाते हैं। जो अत्यन्त प्रवीण और अनादिकाल से प्राप्त नही हुआ था, इसलिए वह नवीन है। सुख समुद्र की सीमा को प्राप्त किया जिसने, ऐसे सवररूप को धारण किया है वह मोक्षमार्ग का साधक है ऐसे ज्ञानी बादशाह को मेरा प्रणाम। [४०७].

(आ) १३वे गुणस्थान मे जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है और १४वे गुणस्थान मे आयोगीदशा को प्राप्त होता है। १४वे गुणस्थान के अन्त मे सिद्धदशा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्व गुणस्थान जीव को देह सहित अवस्था मे होते हैं। मोक्षदशा गुणस्थानो की कल्पना से रहित है इसलिए गुणस्थान जीव का स्वरूप नही है, पर है, परजनित भाव है ऐसा जानकर गुणस्थानो के विकल्प रहित शुद्ध-बुद्ध आत्मा का अनुभव करना चाहिए।

[समयसार नाटक चतुर्दश गुणस्थान अधिकार अन्तिम]

(इ) आत्मा और बन्ध को अलग-अलग करना मोक्ष है। जो निर्विकार चैतन्य चमत्कार मात्र आत्म स्वभाव को और उस आत्मा के विकार करने वाले भाव बन्ध के स्वभाव को जानकर बन्धो से विरक्त होता है, वही समस्त कर्मों से मुक्त होता है।

[समयसार गाथा २९३]

(ई) बन्ध का स्वलक्षण तो आत्मद्रव्य से असाधारण ऐसे रागादि हैं। यह रागादि आत्मद्रव्य के साथ साधारणत धारण करते हुए प्रतिभासित नही होते, क्योकि वे सदा चैतन्य चमत्कार से भिन्न रूप प्रतिभासित होते हैं और जितना चैतन्य आत्मा की समस्त पर्यायो मे व्याप्त होता हुआ प्रतिभासित होता है, उतने ही रागादिक प्रतिभासित नही होते, क्योकि रागादि के बिना भी चैतन्य का आत्म-लाभ सम्भव है (अर्थात् जहाँ रागादि ना हो वहाँ भी चैतन्य होता है)। [समयसार गा० २९४ टीका से]

(उ) जो पुरुष पहले समस्त परद्रव्य का त्याग करके निजद्रव्य मे (आत्म स्वरूप मे) लीन होता है, वह पुरुष समस्त रागादिक (महाव्रतादि) अपराधो मे रहित होकर आगामी बन्ध का नाश करता है और नित्य उदयरूप केवलज्ञान को प्राप्त करके शुद्ध होकर समस्त कर्मों का नाश करके, मोक्ष को प्राप्त करता है। यह मोक्ष होने का क्रम है। [समयसार कलश १९१ का भावार्थ]

(ऊ) शुभोपयोग पुण्यभावो से कभी भी मोक्ष सुख की प्राप्ति नही होती, क्योंकि व प्रशस्तराग है। वह (प्रशस्त राग) स्वर्ग सुख का कारण है और मोक्ष सुख का कारण वीतराग भाव है इसलिए कारणो मे भी भेद है। परन्तु अज्ञानियो को प्रतिभासित नही होता।
[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २३४]

(ए) सम्पूर्णतया कर्ममल कलक रहित, शरीर रहित आत्मा के आत्यन्तिक स्वभाविक-अचिन्त्य-अद्‌भूत तथा अनुपम-सकल-विमल-केवलज्ञानादिक अनन्त गुणो का स्थानरूप जो अवस्थान्तर है वही मोक्ष है। [वृहत द्रव्य सग्रह गाथा ३७ की टीका पृ० १५३]

(ऐ) मुक्त आत्मा के सुख का वर्णन—

आत्मा उपादान कारण से सिद्ध, स्वय अतिशय युक्त, वाधा से शून्य, विशाल, वृद्धि-ह्रास से रहित, विपयो से रहित, प्रतिद्वन्द (प्रतिपक्षता) से रहित, अन्य द्रव्यो से निरपेक्ष, उपमा रहित, अपार, नित्य, सर्वदा उत्कृष्ट तथा अनन्त सारभूत परमसुख उन सिद्धो को होता है।
[वृहत द्रव्य सग्रह गा० ३७ की टीका पृष्ठ १५३] तथा
[पूज्यपाद कृत सिद्ध भक्ति गा० ७]

(ओ) प्रश्न—कौनसा जीव मोक्ष है?

उत्तर—सँवर से युक्त है ऐसा जीव सर्व कर्म की निर्जरा करता हुआ वेदनीय और आयु रहित होकर भव को छोडता है इसलिए वह जीव मोक्ष है। [पचास्तिकाय मूल गाथा १५३]

(६) पुण्य अर्थात् शुभभाव

(अ) जिनशासन मे जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है कि पूजा आदिक (भगवान की भक्ति, वन्दना, शास्त्र स्वाध्याय) विपय व्रत सहित हो, तो पुण्य हो और मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम धर्म है। (पुण्य धर्म का विरोधी है पुण्य से धर्म नही होता, किन्तु आस्रव-बन्धरूप अधर्म होता है ऐसा स्पष्ट बताया है)। [भावपाहुड गा० ८३]

(आ) लौकिक जन तथा अन्यमती कोई ऐसा कहे कि, जो पूजा-दिक शुभक्रिया और व्रतक्रिया सहित हो, वह जिन धर्म है किन्तु ऐसा नही है उपवास व्रतादि जो शुभक्रिया है, जिनमे आत्मा के राग सहित शुभ परिणाम हैं, उससे पुण्यकर्म उत्पन्न होता है इसलिए उसे पुण्य कहते है, और उसका फल स्वर्गादिक भोग की प्राप्ति है। जो विकार रहित शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप निश्चय हो वह आत्मा का धर्म है उस धर्म से सवर होता है, सवर पूर्वक निर्जरा होते हुए मोक्ष होता है इसलिए मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम धर्म है।

[भावपाहुड गा० ८३ का भावार्थ]

(इ) जो जैन पूजा व्रत दानादि शुभ क्रिया से धर्म माने, जिनमत से बाहर हैं। [भावपाहुड गा० ८४-८५ भावार्थ]

(ई) **प्रश्न—पुण्य से सवर-निर्जरा मोक्ष कौन मानता है ?**

उत्तर—श्वेताम्बर, "व्रतादिरूप शुभोपयोग ही से देवगति का बध मानते हैं और उसी से मोक्षमार्ग मानते है, सो बधमार्ग और मोक्षमार्ग को एक किया, परन्तु यह मिथ्या है।" [मोक्षमार्गप्रकाशक १५८]

(उ) व्यवहार कुछ तो मददगार है, व्यवहार को निमित्त कहा है ना; ऐसे पुण्यकर्म के पक्षपाती को अर्थात् व्रत-शीलादि को मोक्ष के कारणरूप मे अगीकार करते हैं उन्हे नपुसक कहा है।

[समयसार गा० १५४]

(ऊ) निश्चय के विषय को छोडकर विद्वान (मूर्ख) व्रतादि निमित्त व्यवहार के द्वारा ही प्रवर्ते है उन पण्डितो का कर्म क्षय नही होता है।

[समयसार गा० १५६]

(ए) भगवान द्वारा कहे हुए व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप करता हुआ भी अभव्य-अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि है। [समयसार गा० २७३]

(ऐ) सम्यग्दृष्टि के शुभभाव को मोक्ष का घातक कहा है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

(ओ) जो शुभभावों से मोक्ष सवर निर्जरा मानते हैं उन्हे मिथ्या-

दृष्टि, पापी मोही दुष्ट, अनिष्ट, मोक्ष का घातक आदि अनेक नामो से कहा है। [समयसार कलश १०० से लेकर ११२ तक]

(औ) (मिथ्यादृष्टि के शुभभावो) "समस्त अनर्थ परम्पराओ का रागादि विकल्प ही मूल है।" मिथ्यादृष्टि के शुभभावो को पापवध का कारण कहा है। [पचास्तिकाय जयसेनाचार्य गा० १६८]
[परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम गा० ६८]

(अ) देव-गुरु-शास्त्र पर है। इनके आश्रय से जो भाव है वह पराश्रित भाव है इसलिए वह भाव त्यागने योग्य और वध का कारण है, सवर-निर्जरा का कारण नही है पराश्रित भाव है, अतत्वश्रद्धान है, क्रोध, मान, अरति शोक, भय, जुगुप्सा यह छह द्वेष परिणति है और माया, लोभ, रति, हास्य, पुरुप, नपुसक, स्त्री वेद ये सात राग परिणति है। इनके निमित्त से विकार सहित मोह-क्षोभरूप चकाचक व्याकुल परिणाम हैं।

(अ.) जो परमात्मा की पूजा-भक्ति, शास्त्र-स्वाध्याय, दया-दान, यात्रादि शुभभावो से अपना हित होना माने, वह मिथ्यात्वलम्वी है। निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र गुण की पर्याय मे दो अश हो जाते है जितनी शुद्धि है वह मोक्षमार्ग है और जो अशुद्धि है वधमार्ग है। परन्तु ४-५-६ गुणस्थानो मे भूमिकानुसार, शुभभावो को व्यवहार धर्म कहा है, परन्तु वह आस्रव-वध का कारण है उससे अल्प ससार का बन्ध होता है ऐसा बताया है। परन्तु जीव मात्र शुभभावो से ही धर्म मानते हैं उनको तो कभी धर्म की प्राप्ति का अवकाश ही नही।

(क) मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण है ही नही। परन्तु सम्यग्दृष्टि को शुभोपयोग होने पर उसका अभाव करके नियम से शुद्ध मे आ जाता है। इस अपेक्षा चरणानुयोग मे कही-कही मोक्ष का कारण कहा है। उसका अर्थ 'ऐसा है नही, निमित्त की अपेक्षा कथन किया है'। वास्तव मे तो शुभभाव किसी का भी हो, वह बन्ध का ही कारण है ऐसा जानना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

एकदेश मोह-क्षोभ का अभाव होने पर जो-जो शुभ परिणाम होते है, उन्हे उपचार से धर्म कहा जाता है। वास्तव मे तो वह वीतरागता का शत्रु है किन्तु निमित्त का ज्ञान कराने के लिए व्यवहारनय से ऐसा कथन आता है।

(ख) भगवान कुन्द-कुन्द, अमृतचन्द्रादि आचार्यों ने शुभभाव को अपवित्र, जडस्वभावी, दु:खरूप, लाख के समान, अनित्य, अध्रुव, अशरण, वर्तमान मे दु खरूप, आगामी भी दु खरूप कहा है तब कोई मूर्ख शुभभावो से मोक्ष या सवर-निर्जरा कहे, आश्चर्य है।

[समयसार गा० ७२ ७४]

चौथे गुणस्थान से शुरू होकर यथाख्यातचारित्र तक साथ रहने मे विरोध नही है। जैसे अन्धकार और प्रकाश के तथा सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान के साथ रहने मे विरोध हैं, वैसे ही चौथे गुणस्थान से लेकर यथाख्यातचारित्र तक ज्ञानधारा और कर्मधारा के साथ रहने मे विरोध नही है। यथाख्यातचारित्र प्रगट होने पर कर्मधारा का अभाव हो जाता है।

(ग) जब तक पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री और परलक्षी-ज्ञान की मिठास रहेगी, तब तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव की श्रद्धा भी नही हो सकती अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही होगी और जब तक पर्याय मे शुभभाव रहेगा, तब तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नही बन सकता।

[समयसार गा० १६०]

(७) सोह और अनुभव

(अ) 'सोह' शब्द का तो अर्थ यह है 'सो मै हूँ'। यहाँ ऐसी अपेक्षा चाहिए कि—'सो' कौन ? तब उसका निर्णय करना चाहिए। क्योकि 'तत्' शब्द को और 'यत्' शब्द को नित्य सम्बन्ध है। इसलिए वस्तु का निर्णय करके उसमे अहवुद्धि धारण करने मे "सोह" शब्द बनता है। वहाँ भी आपको आपरूप अनुभव करे, वहाँ तो "सोह" शब्द

सम्भव नही है, परको अपने रूप बतलाने मे "सोहं" शब्द सम्भव है। जैसे—पुरुष आपको आप जाने, वहाँ "सो मै हूँ" ऐसा किसलिए विचारेगा ? कोई अन्य जीव जो अपने को न पहिचानता हो और कोई अपना लक्षण न जानता हो, तब उससे कहते हैं—'जो ऐसा है सो मैं हूँ" उसी प्रकार यहाँ जानना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १२१]

(आ) 'तत्' शब्द है वह 'यत्' शब्द की अपेक्षा सहित है इसलिए जिसका प्रकरण हो उसे 'तत्' कहते हैं और जिसका जो भाव अर्थात् स्वरूप है उसे तत्व जानना, क्योंकि 'तस्य भावस्तत्वम्' ऐसा तत्व शब्द का समास होता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१७]

(इ) ४-५-६ गुणस्थान मे शुद्ध के साथ शुभ से भी धर्म की प्राप्ति नही होती है। परन्तु शुद्ध के साथ शुभ होने से (वह शुभ शत्रु है बध का कारण है आत्मा का नाश करने वाला है, घातक है) शत्रु को भी भूमिकानुसार आ पडने से सहचारी (निमित्त) व्यवहारनय कहा है। परन्तु ज्ञानी का शुभ भाव भी बन्ध का कारण है, हेय है, आत्मा के स्वभाव मे विघ्नकारक है, इसलिए त्याज्य है।

(ई) जो श्रद्धा मे शुभ को मोक्ष का कारण माने वह मिथ्यादृष्टि ही होता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६)

(उ) दिगम्बर नाम धराके अपने को शुभरूप का श्रद्धान-ज्ञान और आचरण करता है अर्थात् अपने को अणुव्रती, महाव्रती आदि मानता है उसे 'सोहं' शब्द लागू नही हो सकता है।

(८) (अ) **आत्मा का अनुभव किस गुणस्थान में होता है ?**

उत्तर—चौथे से ही होता है, परन्तु चौथे मे तो बहुत काल के अन्तराल से होता है और ऊपर के गुणस्थानो मे शीघ्रातिशीघ्र होता है।

(आ) **प्रश्न—अनुभव तो निर्विकल्प है, वहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थानो मे भेद क्या है ?**

उत्तर—परिणामो की मग्नता मे विशेष है। जैसे दो पुरुष नाम

लेते है और दोनो ही के परिणाम नाम मे है, वहाँ एक को तो मग्नता विशेष है और एक को थोडी है। उसी प्रकार यहाँ जानना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी मे पृष्ठ ७]

(इ) **प्रश्न—ऐसा अनुभव किस भाव मे होता है ?**

उत्तर—वह परिणमन आगम भाषा से औपशमिक, क्षायोपशमिक क्षायिक ऐसे तीन भावरूप कहलाता है और अध्यात्मभाषा से 'शुद्धात्म अभिमुख परिणाम शुद्धोपयोग' इत्यादि पर्याय-सज्ञा नाम पाते हैं। यह भावनारूप (एकाग्रतारूप) मोक्षकारणभूत पर्याय है।

चौथे गुणस्थान मे यह तीनो भाव होते है इसलिए चौथे गुणस्थान से अनुभव होता है। [समयसार जयसेनाचार्य टीका गा० ३२०]

(ई) चौथे गुणस्थान मे सिद्धसमान क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है इसलिए सम्यक्त्व तो केवल यथार्थ श्रद्धानरूप ही है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक चिट्ठी मे पृष्ठ ४)

(६) शुद्ध आत्मा में ही प्रवृति करना योग्य है

मैं यह मोक्ष अधिकारी ज्ञायक स्वभावी आत्मतत्व के परिज्ञान-पूर्वक ममत्व के त्यागरूप और निर्ममत्व मे ग्रहणरूप विधि के द्वारा सर्व उद्यम से शुद्ध आत्मा मे प्रवर्तता हूँ। क्योकि मेरे मे अन्य कृत्य (महाव्रतादि) का अभाव है।

इस प्रकार से प्रथम तो मै स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ। केवल ज्ञायक होने से मेरा विश्व के साथ भी सहज ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध ही है। परन्तु अन्य लक्षणादि सम्बन्ध नही है। इसलिए मेरा किसी के भी प्रत्ये ममत्व नही, सर्वत्र निर्ममत्व ही हूँ।

"अब एक ज्ञायक भाव का सर्व ज्ञेयो को जानने का स्वभाव होने से" क्रम से प्रवर्तता अनन्त, भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्याय समूह वाला, अगाध स्वभाव और गम्भीर ऐसा समस्त द्रव्य मात्र को जानता हूँ। क्योकि सब द्रव्य ज्ञायक मे उत्कीर्ण हो गए हो, चित्रित हो गए हो, भीतर घुस गए हो, कीलित हो गए हो, डूब गये हो, समा गये हो,

प्रतिविम्बित हुए हो, ऐसा एक क्षण मे ही जो (शुद्ध आत्मा) प्रत्यक्ष करता है। ज्ञेय ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध की अनिवार्यता के कारण ज्ञेय-ज्ञायक को भिन्न करना अशक्य होने से, विश्व रूपता को प्राप्त होने पर भी जो (शुद्ध आत्मा) सहज शक्ति ज्ञायक स्वभाव द्वारा एक-रूपपने को छोडता नही है।

जो अनादि ससार से आज स्थिति तक (ज्ञायक स्वभाव रूप से ही) रहा है और जो मोह के द्वारा अन्यथा अवस्थित होता है (अर्थात दूसरे प्रकार जानता मानता है) वह शुद्ध आत्मा को यह मैं मोह को जड मूल से उखाडकर अति निष्कम्प वर्तता हुआ, यथास्थित ही (जैसा है वैसा हो) प्राप्त करता हूँ।

इस प्रकार दर्शन विशुद्ध जिसका मूल है ऐसा जो सम्यग्ज्ञान मे उपयुक्त रूप होने के कारण अव्यावाध लीनता होने से, साधु होने पर भी साक्षात् सिद्धभूत ऐसा निज आत्मा को, वैसे ही तथाभूत (सिद्ध-भूत) परमात्माओ को, वैसे ही एक परायणपणा जिसका लक्षण है, ऐसा भावनमस्कार सदा ही स्वयमेव हो।

[प्रवचनसार गाथा २०० की टीका से]

(१०) राग के अवलम्बन बिना वीतराग का मार्ग है।

(अ) निश्चय स्वभाव के आश्रित मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है। (आ) निज परमात्मा की भावना मोक्षमार्ग है—उनमे राग का अवलम्बन नही है। (इ) औपशमिकादि भाव वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है। (ई) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है। (उ) शुद्ध उपादान कारण वह मोक्षमार्ग है--उसमे राग का अवलम्बन नही है। (ऊ) भावश्रुत ज्ञान वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अव-लम्बन नही है। (ए) शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है। (ऐ) शुद्धात्मा का ध्यान रूप मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है। (ओ) शुद्धोपयोग

वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है। (औ) वीतराग भाव वह मोक्षमार्ग है—उसमे राग का अवलम्बन नही है।

प्रश्न—तीन बातें कौन-कौन सी याद रखनी चाहिए ?

(१) अपनी आत्मा के अलावा पर द्रव्यो से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। (२) अपनी पर्याय मे एक समय की भूल है। (३) भूल रहित स्वभाव मै हूँ, ऐसा जानकर भूतार्थ के आश्रय से अपने मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति करना ही प्रत्येक जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न—११—आत्महित के लिए प्रयोजनभूत कार्य क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। उसका चतुष्टय स्वतन्त्र है इसलिए पर को अपना मानना छोड। (२) दूसरे, जब वस्तु का परिणमन स्वतन्त्र है, तो तू उसमे क्या करेगा ? अगर वह तेरे द्वारा की हुयी परिणमेगी, तो उसका परिणमन स्वभाव व्यर्थ हो जायेगा और जो शक्ति जिसमे है ही नही, वह दूसरा देगा भी कहा से ? इसलिए मैं इसका ऐसा परिणमन करा दूं या यह यूं परिणमे तो ठीक। यह पर की कर्तृत्व बुद्धि छोड। (३) तीसरे जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छू भी नही सकता, सो भोगना क्या ? अत यह जो पर के भोग की चाह है इसे छोड। यह तो नास्ति का उपदेश है, किन्तु इस कार्य की सिद्धि 'अस्ति' से होगी और वह इस प्रकार है कि जैसे कि तुझे मालूम है तेरी आत्मा मे दो स्वभाव हैं एक त्रिकाली स्वभाव-अवस्थित, दूसरा परिणाम पर्याय धर्म। अज्ञानी जगत तो अनादि से अपने को पर्याय बुद्धि से देखकर उसी मे रत है। तू तो ज्ञानी बनना चाहता है। अपने को त्रिकाली स्वभावरूप समझ। वैसा ही अपने को देखने का अभ्यास कर। यह जो तेरा उपयोग पर मे भटक रहा है। उसको पर की ओर न जाने दे, स्वभाव की ओर इसे मोड। जहाँ तेरी पर्याय ने पर के बजाये अपने घर को पकडा और निज समुद्र मे मिली तो स्वभाव-पर्याय प्रगट हुई। बस उस स्वभाव पर्याय प्रगट होने का नाम ही

सम्यग्दर्शन है। तीन काल और तीन लोक मे इसकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नही है। इसके होने पर तेरा पूर्व का सब ज्ञान सम्यक् होगा। ज्ञान का झुकाव पर से हटकर स्व मे होने लगेगा। ये दोनो गुण जो अनादि से ससार के कारण बने हुए थे ये फिर मोक्षमार्ग के कारण होगे। ज्यो-ज्यो ये पर से छूटकर, स्वघर मे आते रहेगे त्यो-त्यो उपयोग की स्थिरता आत्मा मे होती रहेगी। स्व को स्थिरता का नाम ही चारित्र है और वह स्थिरता शनै शनै पूरी होकर, तू अपने स्वरूप मे जा मिलेगा अर्थात् सिद्ध हो जाएगा।

प्रश्न (१२)—कभी सम्यग्दर्शनादि को बंध का कारण और कभी शुभ-भावो को मोक्ष का कारण क्यो कहते हैं ?

उत्तर—(अ) शास्त्रो मे कभी-कभी दर्शन-ज्ञान चारित्र को भी यदि वे परसमय-प्रवृत्ति (राग) युक्त हो तो, कथचित् का कारण कहा जाता है और कभी ज्ञानी को वर्तते हुए शुभभावो को भी कथचित् मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है। शास्त्रो मे आने वाले ऐसे भिन्न-भिन्न, पद्धति के कथनो को सुलझाते हुए यह सारभूत वास्तिविकता ध्यान मे रखना चाहिए कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्ध रूप मिश्र पर्याय वर्तती है तब वह मिश्र पर्याय एकान्त से सवर-निर्जरा मोक्ष का कारणभूत नही होती अथवा एकान्त से आस्रव-बध का कारणभूत नही होती परन्तु उस मिश्र पर्याय, का शुद्ध अश सवर-निर्जरा मोक्ष का कारणभूत होता है और अशुद्ध अश आस्रव बध का कारणभूत होता है।

[पचास्तिकाय गा० १६४ टीका तथा फुटनोट]

(आ) ज्ञानी को शुद्धाशुद्ध रूप मिश्र पर्याय मे जो भक्ति-आदि रूप शुभ अश वर्तता है वह तो मात्र देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है और साथ ही साथ ज्ञानी को जो शुद्ध अश वर्तता है वह सवर निर्जरा का तथा (उतने अश मे) मोक्ष का हेतु है। वास्तव मे ऐसा होने पर भी शुद्ध अश मे स्थित सवर-निर्जरा-मोक्ष हेतुत्व का

आरोप और उसके साथ के भक्ति आदि शुभ अश मे उपचार करके उन शुभभावो को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्ष प्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है । यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है ऐसा समझना । [ऐसा कथचित् मोक्ष हेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही वर्तते हुए भक्ति आदिरूप शुभभावो मे किया जा सकता है । अज्ञानी को तो शुद्धि का अशमात्र भी परिणमन ना होने से यथार्थ मोक्ष हेतु बिल्कुल प्रकट ही नही हुआ है—विद्यमान ही नही है तो फिर वहाँ उसके भक्ति आदिरूप शुभभावो मे आरोप किसका किया जाये ?]

[पचस्तिकाय गा० १७० टीका तथा फुटनोट]

प्रश्न १३—व्यवहार मोक्षमार्ग को कैसे प्राप्त कर सकता है ?

उत्तर—यहाँ यह ध्यान मे रखने योग्य है कि जीव व्यवहार मोक्ष-मार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके ही प्राप्त कर सकता है; अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चय नय के—द्रव्यार्थिक नय के—विपयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पूर्व तो) व्यवहार मोक्षमार्ग भी नही होता अर्थात् चोथे गुणस्थान से पहले व्यवहार मोक्षमार्ग का प्रारम्भ भी नही होता ।

[पचास्तिकाय गा० १६१ टीका तथा फुटनोट]

प्रश्न १४—निश्चय व्यवहार का साध्य-साधनपना किस प्रकार है ?

उत्तर—"निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है" ऐसा जो कहा गया है वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है । उसमे से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'छठे गुणस्थान मे वर्तते हुए शुभ विकल्पो को नही, किन्तु छठे गुणस्थान मे वर्तते हुए शुद्धि के अश को और सातवें गुणस्थान योग्य निश्चय मोक्षमार्ग को वास्तव मे साध्य-साधन-पना है। छठे गुणस्थान मे वर्तता हुआ शुद्धि का अश वढकर, जब और

जितने काल तक उग्रशुद्धि के कारण शुभ विकल्पो का भी अभाव वर्तता है, तब और उतने काल तक सातवे गुणस्थान योग्य निश्चय मोक्षमार्ग होता है। [पचास्तिकाय गा० १६१ टीका तथा फुटनोट]

प्रश्न (१५)—द्रव्यलिगी मुनि को मोक्षमार्ग क्यो नहीं है ?

उत्तर—अज्ञानी द्रव्यलिगी मुनि का अन्तरग लेशमात्र भी समाहित न होने से अर्थात उसे (द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण) शुद्धि का अश भी परिणमित न होने से उसे व्यवहार मोक्षमार्ग भी नही है अर्थात् अज्ञानी के नौ पदार्थ का श्रद्धान, आचारादि के ज्ञान तथा षटकाय के जीवो की रक्षारूप चारित्र को व्यवहार मोक्षमार्ग की सज्ञा भी नही है। निश्चय के बिना व्यवहार कैसा ? पहले निश्चय हो तो व्यवहार पर आरोप दिया जाए।

[पचास्तिकाय गा० १६० के भावार्थ मे से]

प्रश्न १६—द्रव्यलिंगी मुनि के निश्चय रत्नत्रय क्यों प्रकट नहीं होता ?

उत्तर—(१) पहले दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप राग रहित जाने और उसी समय 'राग धर्म नही है या धर्म का साधन नही है' ऐसा माने। ऐसा मानने के बाद जब जीव राग को तोडकर अपने ध्रुव स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प होता है तब निश्चय मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है और तभी शुभ विकल्पो पर व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप आता है। (२) द्रव्यलिंगी तो उपचरित धर्म को ही निश्चय धर्म मानकर उस ही का निश्चयवत् सेवन करता है उसका व्यय करके निर्विकल्प नही होता। व्यवहार करते-करते निश्चय कभी प्रकट नही होता, किन्तु व्यवहार का व्यय करके निश्चय प्रकट होता है। (३) व्यवहार होता परलक्ष से है, निश्चय होता स्वाश्रय से है बड़ा अन्तर है। लाईन ही दोनो की भिन्न-भिन्न है। जब भव्य स्व सन्मुखता के बल से स्वरूप की तरफ झुकता है तब स्वयमेव सम्यग्दर्शनमय, सम्यक्-ज्ञानमय तथा सम्यक्चारित्रमय हो जाता है। इसलिए वह स्व से

अभेदरूप रत्नत्रय की दशा है और वह यथार्थ वीतराग दशा होने के कारण निश्चय रत्नत्रयरूप है। इससे यह बात माननी पडेगी कि जो व्यवहार रत्नत्रय है वह यथार्थ रत्नत्रय नही है। इसलिए उसे हेय कहा जाता है। (४) यह साधु मात्र उसी मे ही लगा रहे तो उसका तो वह व्यवहार मार्ग, मिथ्यामार्ग है और निरूपयोगी है। यो कहना चाहिए कि उस साधु ने उसे हेयरूप न जानकर यथार्थरूप समझ रक्खा है। जो जिसे यथार्थ जानता और मानता है वह उसे कदापि नही छोडता। इसलिए उस साधु का व्यवहार मार्ग मिथ्यामार्ग है अथवा वह अज्ञानरूप ससार का कारण है उसे ससार तत्व कहा है।

मुनिव्रत धार अनन्तवार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान विना सुख लेश न पायो॥

(१७) व्यवहार-निश्चय का सार

(१) निश्चय स्वद्रव्याश्रित है। जीव के स्वाभाविक भाव का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है, इसलिए उसके कथन का जैसा का तैसा अर्थ करना ठीक है। (२) व्यवहार पर्यायाश्रित तथा पर द्रव्याश्रित वर्तता है। जीव के औपाधिक भाव, अपूर्ण भाव, परवस्तु अथवा निमित्त का अवलम्बन लेकर वर्तता है। इसलिए उसके कथन के अनुसार अर्थ करना ठीक नही है, असत्य है। जैसे—जीव पर्याप्त, जीव अपर्याप्त, जीव सूक्ष्म, जीव बादर, जीव पचेन्द्रिय, जीव रागी आदि यह सब व्यवहार कथन है। जीव चेतनमय है—पर्याप्त नही, जीव चेतनमय है—अपर्याप्त नही, जीव चेतनमय है—सूक्ष्म-बादर नही, जीव चेतनमय है—रागी नही, ये निश्चय कथन सत्यार्थ है।

(१८) निश्चयनय स्वाश्रित है अनेकान्त और व्यवहारनय पराश्रित है—निमित्ताश्रित है। उन दोनो को जानकर निश्चय स्वभाव के आश्रय से पराश्रित व्यवहार का निषेध करना सो अनेकान्त है, परन्तु —(१) यह कहना कि कभी स्वभाव से धर्म होता है और कभी व्यव-

हार से भी धर्म होता है यह अनेकान्त नही, प्रत्युत एकान्त है। (२) स्वभाव से लाभ है और कोई देव शास्त्र-गुरु भी लाभ करा देते हैं यो मानने वाला दो तत्वो को एक मानता है, अर्थात् वह एकान्तवादी है। (३) यद्यपि व्यवहार और निश्चय दोनो नय हैं, परन्तु उनमे से एक व्यवहार को मात्र 'है' यो मानकर उसका आश्रय छोडना और दूसरे निश्चय को आदरणीय मानकर उसका आश्रय लेना, यह अनेकान्त है।

प्रकरण छठवां

निश्चय-व्यवहारनयाभाषावलम्बी का स्वरूप

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४८ से २५७ के अनुसार]

केऊ नर निहचै करि आतम को शुद्धिमान
भये हैं स्वछन्द न पिछाने निज शुद्धता ॥१॥
केऊ व्यवहार दान शील तप भाव ही को
आतम को हित जान छाडत न मुद्धाता ॥२॥
केऊ नर व्यवहारनय निहचै के मारग
भिन्न-भिन्न जान यह बात करे उद्धता ॥३॥
जब जाने निहचै के भेद व्यवहार सब
कारन को उपचार माने तब बुद्धता ॥४॥
इस भव तरू का मूल इक जानहु मिथ्या भाव
ताको करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥५॥

प्रश्न १—निश्चय-व्यवहार को समझने-समझाने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—दु:ख के अभाव और सुख की प्राप्ति के निमित्त निश्चय व्यवहार को समझने-समझाने की आवश्यकता है।

प्रश्न २—सातवाँ अधिकार लिखने का विकल्प किसके निमित्त हेय बुद्धि से आया है ?

उत्तर—(१) जो जीव दिगम्बर धर्मी है। (२) जिन आज्ञा को

मानते हैं। (३) निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करते हैं। (४) सच्चे देव गुरु और सच्चे शास्त्रो को ही मानते हैं अन्य को नही मानते हैं, फिर भी उनके मिथ्यात्व का अभाव नही होता—ऐसे दिगम्बर धर्मियो के मिथ्यात्वादि के अभाव और सम्यक्त्वादि की प्राप्ति के निमित्त सातवाँ अधिकार लिखने का विकल्प हेय बुद्धि से आया है।

प्रश्न ३—सातवाँ अधिकार मात्र दिगम्बर धर्मियो के निमित्त है, अन्य के लिए नहीं। यह बात आपने कहाँ से निकाली ?

उत्तर—पाँचवे अधिकार मे श्वेताम्बर, मुँहपट्टी आदि को अन्य-मतावलम्बी कहा है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० १५८]

प्रश्न ४—सातवें अधिकार के दोहे मे क्या बतलाया है ?

उत्तर—इस भवरूपी वृक्ष का मूल एक मात्र मिथ्यात्व भाव है। उसको निर्मूल करके मोक्ष का उपाय करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्व भाव सात व्यसनो से भी भयकर महा पाप है।

प्रश्न ५—जो जीव दिगम्बर धर्मी है, जिन आज्ञा को मानते हैं, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करते हैं, सच्चे देवादि को ही मानते हैं—फिर भी उनके मिथ्यात्वादि का अभाव क्यो नहीं होता है ?

उत्तर—जिन आज्ञा किस अपेक्षा से है, निश्चय-व्यवहार का स्वरूप कैसा है, सच्चे देवादि क्या कहते हैं—आदि बातो का यथार्थ ज्ञान न होने से मिथ्यात्वादि का अभाव नही होता है।

प्रश्न ६— हम दिगम्बर धर्मी अन्य कुगुरू, कुदेव, कुधर्म को मानते ही नहीं हैं क्योंकि हम वीतरागी प्रतिमा को पूजते हैं, २८ मूलगुण धारी नग्न भावलिंगी मुनि को पूजते हैं और उनके कहे हुए सच्चे शास्त्रों का अभ्यास करते हैं—तो हम किस प्रकार मिथ्यादृष्टि हैं ?

उत्तर—सत्तास्वरूप मे प० भागचन्द्र छाजेड ने कहा है कि—दिगम्बर जैन कहते हैं कि हम तो सच्चे देवादि को मानते हैं इसलिए हमारा गृहीत मिथ्यात्व तो छूट गया है। तो उनसे कहते हैं कि नही तुम्हारा गृहीत मिथ्यात्व नही छूटा है, क्योकि तुम गृहीत मि॰

को जानते ही नही। मात्र अन्य देवादि को मानना ही गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप नही है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा वाह्य मे भी यथार्थ व्यवहार जानकर करना चाहिए। सच्चे व्यवहार को जाने बिना कोई देवादि की श्रद्धा करे, तो वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न ७—(१) स्थूल मिथ्यात्व और (२) सूक्ष्म मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—(१) देव-गुरु-शास्त्र के विषय मे भूल स्थूल मिथ्यात्व है। (२) प्रयोजन भूत सात तत्त्वो मे विपरीतता, निश्चय व्यवहार मे विपरीतता और चारो अनुयोगो की कथन पद्धति का पता न होना—यह सूक्ष्म मिथ्यात्व है।

प्रश्न ८—जिनाज्ञा किस अपेक्षा से है—इसका ज्ञान करने के लिये क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर—निश्चय-व्यवहार का ज्ञान आवश्यक है, क्योकि जिनागम मे निश्चय-व्यवहार रूप वर्णन है।

(१) निश्चय व्यवहार का स्पष्टीकरण

प्रश्न ९—निश्चय-व्यवहार का लक्षण क्या है ?

उत्तर--यथार्थ (वास्तव) का नाम निश्चय है, उपचार (आरोप) का नाम व्यवहार है।

प्रश्न १०—यथार्थ का नाम निश्चय; उपचार का नाम व्यवहार; को किस-किस प्रकार जानना चाहिए ?

उत्तर—(अ) जहाँ अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा निर्मल शुद्ध परिणति (पर्याय) को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है। (आ) जहाँ निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ भूमिकानुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है। (इ) जहाँ जीव के विकारी भावो को यथार्थ का नाम

निश्चय कहा हो, उसकी अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है।

प्रश्न ११—(१) शास्त्रो मे कहीं विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय, कहीं शुद्ध भावो को यथार्थ का नाम निश्चय तथा कहीं त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है और (२) कहीं द्रव्यकर्म नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार, कहीं शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार तथा कहीं शुद्ध भावो को उपचार का नाम व्यवहार कहा है। इससे तो हमको भ्रान्ति होती है कि किसको निश्चय कहे और किसको व्यवहार कहे ?

उत्तर—अरे भाई ! यह भ्रान्ति मिटाने के लिए ही किस अपेक्षा यथार्थ का नाम निश्चय कहा है और किस अपेक्षा उपचार का नाम व्यवहार कहा है यह मर्म समझ ले तो मिथ्यात्वादि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति हो जावे।

प्रश्न १२—जीव के विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—पर्याय मे दोष अपने अपराध मे है, द्रव्यकर्म-नोकर्म के कारण नही है—इसका ज्ञान कराने के लिये शास्त्रो मे विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है।

प्रश्न १३—निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—एक मात्र प्रगट करने योग्य है—इसलिए निर्मल शुद्ध पणिति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है।

प्रश्न १४—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—एक मात्र आश्रय करने योग्य की अपेक्षा अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है क्योकि इसी के आश्रय से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न १५—द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

उत्तर—जब-जब विभाव-भाव उत्पन्न होते हैं तब-तब द्रव्यकर्म नोकर्म निमित्त होता है—इस अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्रश्न १६—भूमिकानुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग मे शुद्धि अश के साथ किस-किस प्रकार का राग होता है अन्य प्रकार का राग नही होता है। यह ज्ञान कराने के लिए भूमिकानुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्रश्न १७—निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

उत्तर—अनादिअनन्त न होने की अपेक्षा से तथा आश्रय करने योग्य न होने की अपेक्षा से निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्रश्न १८—"निर्मल शुद्ध परिणति-यथार्थ का नाम निश्चय और भूमिकानुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार" इस बोल को चौथे, पाचवें और छठवें गुणस्थानो में लगाकर बताओ ?

उत्तर—(अ) चौथे गुणस्थान मे श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी साथ मे अनन्तानुबन्धी के अभाव स्वरूप स्वरूपाचरण चारित्र प्रगटा सो निश्चय सम्यकदर्शन-यथार्थ का नाम निश्चय है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग तथा सात तत्त्वो की भेदरूप श्रद्धा बध का कारण होने पर भी सम्यग्दर्शन का आरोप करना-उपचार का नाम व्यवहार है। (आ) पाँचवे गुणस्थान मे दो चौकडी कषाय के अभावरूप देशचारित्र-रूप निर्मल शुद्ध परिणति, निश्चय श्रावकपना—यथार्थ का नाम निश्चय है। बारह अणुव्रतादि का राग, बन्धरूप होने पर भी श्रावक-पने का आरोप करना—उपचार का नाम व्यवहार है। (इ) छठवे

गुणस्थान मे तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकल चारित्ररूप, शुद्ध परिणति, निश्चय मुनिपना—यथार्थ का नाम निश्चय है। २८ मूलगुण आदि पालने का भाव, बन्धरूप होने पर भो मुनिपने का आरोप करना—उपचार का नाम व्यवहार है।

प्रश्न १६—शुद्धि और अशुद्धि मे निश्चय-व्यवहार क्यो बतलाया है ?

उत्तर—मोक्ष नही हुआ है मोक्षमार्ग हुआ है। मोक्षमार्ग की शुरूआत होने पर चारित्रगुण की पर्याय मे शुद्धि-अशुद्धिरूप दो अश हो जाते है। उसमे शुद्धि अश वीतराग है वह सवर (मोक्षमार्ग) है और जो अशुद्धि अश सराग है वह बन्ध है। इसलिए शुद्धि अश को निश्चय और अशुद्धि अश को व्यवहार बतलाया है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २८८]

नप्रश २०—उभयाभासी किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चयाभासी के समान निश्चय को मानता है और व्यवहाराभासी के समान व्यवहार को मानता है—उसे उभयावासी कहते हैं।

प्रश्न २१—उभयाभासी की मान्यतायें क्या-क्या हैं ?

उत्तर—(१) वास्तव मे वीतराग भाव एक ही मोक्षमार्ग है, परन्तु उभयाभासी दो मोक्षमार्ग मानता है। (२) निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट करने याग्य उपादेय है और व्यवहार हेय है, परन्तु उभयाभासी दोनो को उपादेय मानता है। (३) निञ्चय के आश्रय से धर्म होता है और व्यवहार के आश्रय से वध होता है परन्तु उभयाभासी कहता है कि हम श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं। ' आदि उल्टी मान्यताये उभयाभासी मे पाई जाती हैं।

प्रश्न २२—निश्चयाभासो किसे कहते हैं ?

उत्तर—भगवान ने जो बात शक्तिरूप बतलाई है, उसे प्रगट पर्याय मे मान लेना और भगवान ने शुभ भावो को बन्ध का कारण

हेय वताया है, तव शुभ भावो को छोडकर अशुभ भावो मे प्रवृत्ति करने वाले को निश्चयाभासी कहते है।

प्रश्न २३—भगवान ने शक्तिरूप क्या बात वतलाई है, जिसे निश्चयाभासी प्रगट पर्याय मे मान लेता है ?

उत्तर—(१) मैं सिद्ध समान शुद्ध हूँ, (२) केवलज्ञानादि सहित हूँ, (३) द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित हूँ, (४) परमानन्दमय हूँ, (५) जन्म-मरणादि दु ख मेरे नही है। यह बात भगवान ने शक्ति अपेक्षा वतलाई है, परन्तु निश्चयाभासी प्रगट पर्याय मे मान लेता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९९]

प्रश्न २४—सातवें अधिकार के प्रारम्भ मे निश्चयाभासी की चार भूलें कौन-कौन सी वताई हैं ?

उत्तर—(१) वर्तमान में आत्मा की ससार पर्याय होने पर भी सिद्धदशा मानता है। (२) वर्तमान मे अल्पज्ञ दशा होने पर भी केवल ज्ञान मानता है। (३) रागादि वर्तमान पर्याय मे होते ही नही है। (४) विकार का उत्पन्न होना द्रव्यकर्म के कारण मानता है।

प्रश्न २५—शुभ भावो को वन्ध का कारण हेय वतलाया है। तव निश्चयाभासी कैसे-कैसे शुभ भावो को छोड़कर अशुभ मे प्रवर्तता है ?

उत्तर—(१) शास्त्राभ्यास करना निरर्थक वतलाता है, (२) द्रव्यादिक के तथा गुणस्थान मार्गणा, त्रिलोकादिक के विचारो को विकल्प ठहराता है, (३) तपश्चरण करने को वृथा क्लेश करना मानता है; (४) व्रतादिक धारण करने को वन्धन मे पडना ठहराता है, (५) पूजनादि कार्यो को शुभास्रव जानकर हेय प्ररूपित करता है, इत्यादि सर्व साधनो को उठाकर प्रमादी होकर परिणमित होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २००]

प्रश्न २६—निश्चयाभासी के जानने से पात्र भव्य जीवो को क्या जानना-मानना चाहिए ?

उत्तर—पात्र भव्य जीवो को यह जानना चाहिये कि मेरे में सिद्धपने, केवलज्ञानादिपने की शक्ति मौजूद है। मेरी पर्याय मे दोष है वह मेरे अपराध से ही है—ऐसा जानकर शक्तिवान का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करनी चाहिए।

प्रश्न २७—व्यवहाराभासी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनागम मे जहाँ व्यवहार की मुख्यता से उपदेश है उसे मानकर बाह्य साधनादिक ही का श्रद्धानादिक करते हैं उसे व्यवहाराभासी कहते है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २१३]

प्रश्न २८—व्यवहाराभासियो मे किस-किस प्रकार की उल्टी मान्यतायें पाई जाती हैं ?

उत्तर—(१)कोई कुल अपेक्षा धर्म को मानते हैं, (२)कोई परीक्षारहित शास्त्रो की आज्ञा को धर्म मानते हैं, (३) कोई परीक्षा करके जैनी होते है, परन्तु मूल प्रयोजनभूत बातो की परीक्षा नही करते हैं, (४) कोई सगति से जैन धर्म धारण करते है, (५) कोई आजीविका के लिए वडाई के लिये, जैन धर्म धारण करते हैं, (६) अरहन्तभक्ति-गुरुभक्ति-शास्त्र भक्ति का अन्यथारूप श्रद्धान करते हैं, सच्चा श्रद्धान नही करते हैं, (७) जीव-अजीव, आस्रव-बध, सवर-निर्जरा और मोक्ष तत्त्वो का अन्यथारूप श्रद्धान करते हैं, (८) सम्यग्ज्ञान का अन्यथारूप का विश्वास करते है, (९)सम्यकचारित्र का अन्यथारूप आचरण करते हैं। इस प्रकार प्रथम व्यवहार चाहिए, व्यवहार करते-करते निश्चय धर्म प्रगट हो जावेगा। ऐसो-ऐसी उल्टी मान्यताये व्यवहाराभासियो मे पाई जाती है। जिसका फल चारो गतियो मे परिभ्रमण करते हुए निगोद है।

प्रश्न २९—"(१)यद्यपि इस प्रकार अगीकार करने में दोनो नयों के परस्पर विरोध हैं, (२) तथापि करें क्या ? सच्चा तो दोनो नयो का स्वरूप भासित हुआ नहीं, (३) और जिनमत मे दो नय कहे हैं, उनमें से किसी को छोड़ा नहीं जाता, (४) इसलिए भ्रम सहित दोनों

का साधन साधते हैं, वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना।" इस वाक्य को स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) मै निश्चय से सिद्ध समान शुद्ध हूँ—केवलज्ञानादि सहित हूँ और व्यवहार से ससारी हूँ, मति-श्रुतज्ञान सहित हूँ—यद्यपि इस प्रकार निश्चय-व्यवहार अगीकार करने मे दोनो नयो मे परस्पर विरोध है। क्या विरोध है ? उत्तर—एक ही समय मे पर्याय अपेक्षा सिद्ध भी हो और ससारी भी हो। एक ही समय मे पर्याय अपेक्षा केवलज्ञान-केवलदर्शन भी हो और मति-श्रुतज्ञान चक्षु-अचक्षुदर्शन भी हो—ऐसा कभी भी नही हो सकता है। (२) तथापि करें क्या ? उन्मत्त जैसी दशा हो जाती है। उन्मत्त जैसी दशा क्यो हो जाती है ? उत्तर—सच्चा तो निश्चय व्यवहार दोनो नयो का स्वरूप भासित हुआ नही। (३) सच्चा निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का स्वरूप भासित न होने का क्या फल हुआ ? उत्तर—जिनमत मे निश्चय-व्यवहार दो नय कहे है इनमे से (निश्चय-व्यवहार मे से) किसी को छोडा भी नही जाता, ऐसा मानकर दोनो नयो का साधन करता है। (४) प० टोडरमल जी क्या बतलाते है ? इसलिए भ्रम सहित निश्चय-व्यवहार दोनो का साधन साधने वाले जीवो को मिथ्यादृष्टि जानना।

प्रश्न ३०—"(१) यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने मे दोनो नयो के परस्पर विरोध हैं, (२) तथापि करें क्या ? सच्चा तो दोनो नयो का स्वरूप भासित हुआ नहीं, (३) और जिनमत मे दो नय कहे हैं, उनमे से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, (४) इसलिए भ्रमसहित दोनो का साधन साधते हैं, वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना।" इस वाक्य पर उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय व्यवहार मुनिपने को कैसा मानता है ?

उत्तर—(१) सकलचारित्र पर्याय मे प्रगट न होने पर भी सकल-चारित्र मुझे है यह निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि का पालन

व्यवहार मुनिपना—इस प्रकार अगीकार करने मे निश्चय-व्यवहार मुनिपने के परस्पर विरोध है। (२) उभयाभासी क्या करे ? सच्चा तो निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप भासित हुआ नही। (३) सच्चा निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप भासित न होने का क्या फल हुआ ? उत्तर—जिनमत मे निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का मुनिपना कहा है। उनमे से (निश्चय-व्यवहार मुनिपने मे से) किसी को छोडा भी नही जाता, ऐसा मानकर निश्चय-व्यवहार मुनिपने का साधन अपने को मानता है। (४) प० टोडरमल जी उभयाभासी के निश्चय व्यवहार मुनिपने के साधन को क्या बतलाते हैं ? इसलिए भ्रमसहित निश्चय-व्यवहार मुनिपने के साधन साधने वाले जीवो को मिथ्यादृष्टि जानना।

प्रश्न ३१—"(१) यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने में दोनो नयो के परस्पर विरोध है, (२) तथापि करें क्या ? सच्चा तो दोनों नयो का स्वरूप भासित हुआ नहीं, (३) और जिनमत में दो नय कहे हैं, उनमें से किसी को छोडा भी नहीं जाता, (४) इसलिए भ्रम सहित दोनों का साधन साधते हैं, वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना।" इस उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय-व्यवहार श्रावकपने को कैसा मानता है ? स्पष्टता से समझाइए।

उत्तर—प्रश्न ३० के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ३२—उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय-व्यवहार सम्यक्दर्शन को कैसा मानता है—इस पर प्रश्न और उत्तर को स्पष्टता करो ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर ३० के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो।

प्रश्न ३३—उभयाभासी मान्यता वाला जीव निश्चय-व्यवहार इर्या समिति को कैसा मानता है—इस पर प्रश्न और उत्तर की स्पष्टता करो ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर ३० के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो।

(२) "वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है।"

प्रश्न ३४—क्या निश्चय-व्यवहार दो मोक्षमार्ग हैं ?

उत्तर—बिल्कुल नही, क्योंकि मोक्षमार्ग तो एक वीतराग भाव ही है दो मोक्षमार्ग नहीं हैं। परन्तु मोक्षमार्ग का कथन का दो प्रकार से है।

प्रश्न ३५—उभयाभासी दो प्रकार का मोक्षमार्ग क्यों मानता है ?

उत्तर—अपने ज्ञान की पर्याय मे निर्णय करके यथावत निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग को नही पहिचानने के कारण उभयाभासी दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानता है।

प्रश्न ३६—उभयाभासी दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानता है, उसे प० टोडरमल जी ने क्या बताया है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग दो नही हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाये तो निश्चय मोक्षमार्ग है। और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नही, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है व सहचारी है उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र (चारो अनुयोगो मे) ऐसा ही लक्षण है। सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, इसलिए निरूपण अपेक्षा दो प्रकार का मोक्षमार्ग जानना। [किन्तु] एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

प्रश्न ३७—निमित्त व सहचारी हो, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जावे सो व्यवहार मोक्षमार्ग है। इसमें निमित्त व सहचारी ऐसे दो शब्द कहने का क्या रहस्य है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग होने पर ज्ञानी का शुभभाव निमित्त है और सहचारी भी है। परन्तु अशुभ भाव सहचारी तो है परन्तु निमित्त नही है। अत मोक्षमार्ग होने पर जिस भाव मे निमित्त व सहचारीपना पाया जावे उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है। यह बतलाने के

लिए निमित्त व सहचारी दो शब्द आचार्यकल्प प० टोडरमल जी ने डाले हैं।

प्रश्न ३८— क्या निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन— ऐसे दो प्रकार के सम्यग्दर्शन हैं ?

उत्तर—नही, सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है दो प्रकार का नही है, किन्तु उसका कथन दो प्रकार से है। जहाँ श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय को सच्चा सम्यग्दर्शन निरूपण किया है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है, तथा देव-गुरु-शास्त्र का राग जो सम्यग्दर्शन तो नही किन्तु सम्यग्दर्शन का निमित्त व सहचारी है उसे उपचार से सम्यग्दर्शन कहा जाता है। किन्तु व्यवहार सम्यग्दर्शन को सच्चा सम्यग्दर्शन माने तो वह श्रद्धा मिथ्या है, क्योकि निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है अर्थात् सच्चा निरूपण वह निश्चय और उपचार निरूपण वह व्यवहार है। निरूपण की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दो प्रकार कहे हैं, किन्तु एक निश्चय सम्यग्दर्शन है और एक व्यवहार सम्यग्दर्शन है—इस प्रकार दो सम्यग्दर्शन मानना वह यिथ्या है।

प्रश्न ३९—क्या निश्चय चारित्र और व्यवहारचारित्र—ऐसा दो प्रकार का चारित्र है ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४०—क्या निश्चय श्रावकपना और व्यवहार श्रावकपना— ऐसा दो प्रकार का श्रावकपना है ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४१—क्या निश्चय मुनिपना और व्यवहार मुनिपना—ऐसा दो प्रकार का मुनिपना है ?

उत्तर—प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४२—क्या निश्चय एषणा समिति और व्यवहार एषणा समिति—ऐसी दो प्रकार की एषणासमित हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४३—क्या निश्चय कायगुप्ति और व्यवहार कायगुप्ति—ऐसी दो प्रकार की कायगुप्ति हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४४—क्या निश्चय उत्तमक्षमा और व्यवहार उत्तमक्षमा—ऐसी दो प्रकार की उत्तमक्षमा है ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४५—क्या निश्चय क्षुधापरिषहजय और व्यवहार क्षुधापरिषहजय—ऐसी दो प्रकार की क्षुधापरिषहजय हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४६—क्या निश्चय अनित्य भावना और व्यवहार अनित्य भावना—ऐसी दो प्रकार की अनित्य भावना हैं ?

उत्तर—(प्रश्न ३८ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४७—निश्चय और व्यवहार के विषय में चरणानुयोग का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—(अ) एकदेश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावक दशा मुनिदशा होती है, क्योंकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। ऐसा जानकर श्रावक-मुनिधर्म के विशेष पहिचानकर जैसा अपना वीतराग भाव हुआ हो—वैसा अपने योग्य धर्म को साधते हैं। वहाँ जितने अश मे वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते है, जितने अश मे राग रहता है, उसे हेय जानते है। सम्पूर्ण वीतरागता को परम धर्म मानते हैं—ऐसा चरणानुयोग का प्रयोजन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७१]

(आ) धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है वही है, उसके साधनादिक उपचार से धर्म है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७७]

(इ) निश्चय धर्म तो वीतरागभाव है, अन्य नाना विशेष वाह्य साधन की अपेक्षा उपचार से किए है उनको व्यवहार मात्र धर्म सज्ञा जानना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

(ई) व्यवहार नाम उपचार का है। सो महाव्रतादि होने पर ही वीतरागचारित्र होता है—ऐसा सम्बन्ध जानकर महाव्रतादि मे चारित्र का उपचार किया है, निश्चय से नि कषाय भाव है, वही सच्चा चारित्र है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३०]

(उ) वीतराग भावो के और व्रतादि के कदाचित कार्य कारणपना है, इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे सो कथन मात्र ही है, परमार्थ से बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५३]

(ऊ) व्रत-तप आदि मोक्षमार्ग है नही (परन्तु जिनको निश्चय प्रगटा है उस जीव को) निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते है। इसलिए इन्हे व्यवहार कहा है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५०]

प्रश्न ४८—क्या वीतराग चारित्र और सराग चारित्र—ऐसा दो प्रकार का चारित्र है ?

उत्तर—नही, चारित्र तो मात्र वीतरागभाव रूप ही है, सराग चारित्र तो दोषरूप है। जैसे चावल दो प्रकार के हैं—एक तुष सहित है और एक तुष रहित हैं। वहाँ ऐसा जानना कि तुष है वह चावल का स्वरूप नही है, चावल मे दोष है। कोई समझदार तुष सहित चावल का सग्रह करता था, उसे देखकर कोई भोला तुषो को ही चावल मानकर सग्रह करे तो वृथा खेदखिन्न ही होगा, वैसे ही चारित्र दो प्रकार का कहा है—एक वीतराग है, एक सराग है। वहाँ ऐसा जानना कि—जो राग है--वह चारित्र का स्वरूप नही है, चारित्र मे दोष है। तथा कितने ही ज्ञानी प्रशस्त-राग सहित चारित्र धारण करते है, उन्हे देखकर कोई अज्ञानी प्रशस्त राग को ही चारित्र मान कर सग्रह करे तो वृथा खेदखिन्न ही होगा।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४५]

प्रश्न ४९—समयसार कलश ११० मे मोक्षमार्ग मे शुद्धिअश अशुद्धिअंश के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—एक जीव मे शुद्धपना-अशुद्धपना एक ही काल मे होता है। परन्तु जितना अश शुद्धपना है—उतना अश कर्मक्षपण है। जितना अश अशुद्धपना है उतना अश कर्मबध होता है। एक ही काल मे दोनो कार्य होते हैं ऐसा ही है, सन्देह नही करना। [द्रव्यसग्रह गा० ४७ तथा पुरुपार्थ सिद्धि उपाय गा० २१३ से २१४ मे ऐसा ही कहा है।]

(३) शुद्धि प्रगट करने योग्य उपादेय व्यवहार हेय है।

प्रश्न ५०—मोक्षमार्ग में हेय-उपादेय किस प्रकार है ?

उत्तर—शुद्धि अश प्रगट करने योग्य उपादेय है और अशुद्धि अश हेय है।

प्रश्न ५१—चौथे गुणस्थान मे हेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान मे श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगट हो जाती है—वह निश्चय सम्यग्दर्शन है तथा अनन्तानुबधी क्रोधादि के अभावरूप स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट हो जाता है—यह तो प्रगट करने योग्य उपादेय है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अस्थिरता का राग तथा सात तत्त्वो की भेदरूप श्रद्धा, यह हेय है।

प्रश्न ५२—पाँचवें गुणस्थान मे हेय उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—पाँचवे गुणस्थान मे दो चौकडी कषाय के अभावरूप देशचारित्र रूप शुद्ध प्रगट करने योग्य उपादेय है। बारह अणुव्रतादिक का अस्थिरता सम्बन्धी राग हेय है।

प्रश्न ५३—छट्ठे गुणस्थान में हेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—छट्ठे गुणस्थान मे तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकल चारित्ररूप शुद्धि प्रगट करने योग्य उपादेय है। २८ मूलगुणादि के पालन का अस्थिरता सम्बन्धी राग हेय है।

प्रश्न ५४—उभयाभासी शुद्धि अंश और अशुद्धि अंश को क्या जानता है ?

उत्तर—शुद्धि अश निश्चय और अशुद्धि अश व्यवहार—इस प्रकार दोनो को उपादेय मानता है।

प्रश्न ५५—उभयभासी मोक्षमार्ग मे निश्चय-व्यवहार दोनो को उपादेय मानता है—इस विषय मे प० जी ने क्या कहा है ?

उत्तर—निश्चय-व्यवहार दोनो को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है, क्योकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। समयसार ११वी गाथा मे कहा है कि व्यवहार अभूतार्थ है, सत्य स्वरूप का निरूपण नही करता, किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है। इस प्रकार इन दोनो का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है।

प्रश्न ५६—क्या निश्चय सम्यक्दर्शन और व्यवहार सम्यक्दर्शन दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—नही, क्योकि निश्चय सम्यक्दर्शन प्रगट करने योग्य उपादेय है और व्यवहार सम्यक्दर्शन हेय है। परन्तु जो निश्चय सम्यक्दर्शन और व्यवहार सम्यक्दर्शन दोनो को उपादेय मानता है वह भी भ्रम है क्योकि निश्चय सम्यक्दर्शन और व्यवहार सम्यक्दर्शन का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। समयसार की ११वी गाथा मे कहा है कि व्यवहार सम्यक्दर्शन अभूतार्थ है क्योकि वह निश्चय सम्यक्दर्शन का निरूपण नही करता, निमित्त की अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। तथा निश्चय सम्यक्दर्शन है वह भूतार्थ है जैसा सम्यक्दर्शन का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है। इस प्रकार निश्चय-व्यवहार सम्यक्दशन का स्वरूप तो परस्पर विरुद्धता सहित है। इसलिए निश्चय सम्यक्दर्शन प्रगट करने योग्य उपादेय है और व्यवहार सम्यक्दर्शन हेय है।

प्रश्न ५७—क्या निश्चय श्रावकपना और व्यवहार श्रावकपना दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५८—क्या निश्चय मुनिपना और व्यवहार मुनिपना दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५९—क्या निश्चय मनोगुप्ति और व्यवहार मनोगुप्ति दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६०—क्या निश्चय भाषा समिति और व्यवहार भाषा समिति दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६१—क्या निश्चय ब्रह्मचर्य और व्यवहार ब्रह्मचर्य दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६२—क्या निश्चय तृषापरिषहजय और व्यवहार तृषापरिषहजय दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६३—क्या निश्चय अशरण भावना और व्यवहार अशरण भावना दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६४—क्या निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र दोनो उपादेय हैं ?

उत्तर—प्रश्न ५६ के अनुसार उत्तर दो।

(४) "उभयाभासी की खोटी मान्यता का स्पष्टीकरण"

प्रश्न ६५—(१) तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय और व्रत-शील-संयमादिरूप प्रवृत्ति

सो व्यवहार; सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है। (२) क्योंकि किसी द्रव्यभाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार—ऐसा नहीं है। (३) एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है। (४) जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घडा निरूपित किया जाये सो निश्चय और घृत संयोग के उपचार से उसी को घृत का घड़ा कहा जाए सो व्यवहार । (५) ऐसे ही अन्यत्र जानना। इस वाक्य को स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) आचार्यकल्प प० टोडरमलजी उभयाभास मान्यता वाले शिष्य से कहते हैं कि—तू वर्तमान पर्याय मे सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय मानता है और व्रत-शील-सयमादिरूप प्रवृत्ति (शुभभाव) सो व्यवहार है, ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप मानना ठीक नही है, (२) ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप मानना ठीक क्यो नही है ? उत्तर—किसी द्रव्य की पर्याय का नाम निश्चय और किसी द्रव्य की पर्याय का नाम व्यवहार, ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप जिनागम मे नही है, (३) जिनागम मे निश्चय-व्यवहार का स्वरूप कैसा वताया है ? उत्तर—जिनागम मे एक ही द्रव्य के कार्य को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के कार्य को दूसरे द्रव्य के कार्यरूप निरूपण करना सो व्यवहार है। (४) जैसे—मिट्टी मे हर समय कार्य हो रहा है, कार्य मे नय का प्रयोजन नही है। जैसे--दस नम्बर के कार्य का नाम घडा रक्खा तो उस घडे को मिट्टी का घडा कहा जावे सो निश्चय है और उपचार से उस घडे मे घी का सयोग होने से उस घडे को घी का घडा कहा जावे सो व्यवहार, (५) ऐसा ही सव स्थानो पर जान लेना।

प्रश्न ६६— **"तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय, और व्रत-शील-सयमादिरूप प्रवृत्ति सो**

व्यवहार; सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है; (२) क्योंकि किसी द्रव्य भाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार—ऐसा नहीं है; (३) एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है;" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) प० जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हैं कि तू पर्याय मे प्रगट ना होने पर भी सकलचारित्र को निश्चय मुनिपना मानता है और २८ महाव्रतादि के पालन को व्यवहार मुनिपना मानता है—सो ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप मानना ठीक नही है, (२) क्यो ठीक नही है ? आत्मा के चारित्रगुण की शुद्ध पर्याय का नाम निश्चय मुनिपना और चारित्रगुण की विकारी पर्याय का नाम व्यवहार मुनिपना--ऐसा निश्चय व्यवहार मुनिपने का स्वरूप जिनागम मे नही है, (३) जिनागम मे निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप कैसा बताया है ? उत्तर—आत्मा के चारित्रगुण मे प्रगट सकलचारित्र रूप शुद्धि को मुनिपना निरूपण करना सो निश्चय मुनिपना कहा है और प्रगट सकलचारित्र मुनिपने के साथ २८ महाव्रतादि का भाव होने से २८ महाव्रतादि को उपचार से मुनिपना निरूपण करना—सो व्यवहार मुनिपना कहा है।

प्रश्न ६७—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६८—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ६९—ईर्या समिति पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७०—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७१—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७२—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर ६६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७३—(१) "इसलिए तू किसी को निश्चय माने और किसी को व्यवहार माने वह भ्रम है। (२) तथा तेरे मानने मे भी निश्चय-व्यवहार को परस्पर विरोध आया। (३) यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो व्रतादिक किसलिये करता है ? (४) यदि व्रतादिक के साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो वर्तमान मे शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ। (५) इस प्रकार दोनो नयो के परस्पर विरोध हैं, (६) इसलिए दोनो नयो का उपादेयपना नहीं बनता।" इस वाक्य को स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) प० जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हुए कहते हैं कि तू शुद्धि को निश्चय माने और अशुद्धि को व्यवहार माने—वह तेरा भ्रम है। (२) तेरी मान्यता के अनुसार भी निश्चय-व्यवहार मे परस्पर विरोध आता है, (३) क्या विरोध आता है ? यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो तू व्रतादिक क्यो करता है ? (४) और यदि व्रतादिक साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो तेरा वर्तमान पर्याय मे शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ, (५) इस प्रकार तेरी मान्यता के अनुसार निश्चय व्यवहार के मानने मे परस्पर विरोध है, (६) इसलिए निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का उपादेयपना नही हो सकता है।

प्रश्न ७४—(१) "इसलिए तू किसी को निश्चय माने और किसी को व्यवहार माने वह भ्रम है, (२) तथा तेरे मानने मे भी निश्चय-व्यवहार का परस्पर विरोध आया, (३) यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो व्रतादिक किसलिये करता है ? (४) यदि व्रतादिक साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो वर्तमान में शुद्ध

आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ; (५) इस प्रकार दोनो नयो के परस्पर विरोध हैं; (६) इसलिए दोनो नयों का उपादेयपना नहीं बनता।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझइये ?

उत्तर—(१) तू अपने को सकलचारित्ररूप शुद्धि को निश्चय मुनिपना माने और २८ महाव्रतादिरूप अशुद्धि को व्यवहार मुनिपना माने—वह भ्रम है, (२) तेरे मानने मे भी निश्चय-व्यवहार मुनिपने को परस्पर विरोध आता है; (३) क्या विरोध आता है ? उत्तर—यदि तू अपने को सकलचारित्ररूप शुद्ध मुनिपना मानता है तो २८ महाव्रतादि का साधन किसलिये करता है ? (४) यदि २८ महाव्रतादि के साधन द्वारा मुनिपने की सिद्धि चाहता है तो वर्तमान मे सकल-चारित्ररूप मुनिपने का अनुभवन मिथ्या हुआ, (५) तेरी मान्यता के अनुसार निश्चय-व्यवहार मुनिपने मे परस्पर विरोध है, (६) इसलिए निश्चय व्यवहार दोनो मुनिपने का उपादेयपना नही बनता है।

प्रश्न ७५—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७६—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७७—ईर्यासमिति पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७८—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ७९—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८०—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८१—उत्तमक्षमा पर प्रश्नोत्तर ७४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८२—शुद्धपने के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—शुद्धपना दो अर्थों मे प्रयुक्त होता है —(१) द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना। (२) पर्याय अपेक्षा शुद्धपना।

प्रश्न ८३—द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना क्या है ?

उत्तर—पर द्रव्यो से भिन्नपना और अपने भावो से (गुणो से) अभिन्नपना—उसका नाम द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है।

प्रश्न ८४—पर्याय अपेक्षा शुद्धपना क्या है ?

उत्तर—निर्मल दशा का प्रगट होना अर्थात् औपाधिक भावो का अभाव होना—उसका नाम पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है।

प्रश्न ८५—उभयाभासी प्रश्न करता है कि (अ) समयसारादि में शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है; (आ) व्रत-तप-संयमादि को व्यवहार कहा है; उसी प्रकार ही हम मानते हैं, परन्तु आप हमे झूठा क्यो कहते हो ?

उत्तर—(१) शुद्ध आत्मा का पर्याय मे अनुभव (प्रगटपना) सच्चा मोक्षमार्ग है इसलिये उसे पर्याय अपेक्षा शुद्धपना कहा है। (२) स्वभाव से (अनन्त गुणो से) अभिन्न परभाव से (द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से) भिन्न—ऐसा द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना कहा है। [अ] तू उभयाभासी ससारी मिथ्यादृष्टि है। तुझे वर्तमान पर्याय मे शुद्धता प्रगट नही है और द्रव्य अपेक्षा तू शुद्धता मानता नही है इसलिए ससारी को सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अथ शुद्ध का नही जानना। [आ] व्रत-तपादि मोक्षमार्ग है नही, परन्तु जिसको अपनी आत्मा के आश्रय से पर्याय मे मोक्षमार्ग प्रगटा है उस जीव के व्रत-तपादिक को निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। परन्तु तुझे पर्याय मे मोक्षमार्ग प्रगटा नही है अत तेरे व्रत-तपादि के भावो पर उपचार भी सम्भव नही है। इसलिये तेरा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सब झूठा है।

प्रश्न ८६—समयसारादि में शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है; व्रत-तप सयमादि को व्यवहार कहा है—उसी प्रकार हम

मानते हैं। आप हमें झूठा क्यों कहते हो—इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) तीन चौकडी कषाय के अभावपूर्वक सकलचारित्ररूप शुद्धि को पर्याय मे निश्चय मुनिपना कहा है। (२) चारित्रादि अनन्त गुणो मे अभिन्न तथा द्रव्य-कर्म-नोकर्म-भावकर्म से भिन्न—यह द्रव्य अपेक्षा मुनिपना कहा है। [अ] तू उभयाभासी ससारी मिथ्यादृष्टि है। तुझे वर्तमान पर्याय मे सकलचारित्ररूप शुद्धि प्रगट नही है और द्रव्य अपेक्षा मुनिपना तू मानता नही है। इसलिए ससारी को सकल-चारित्ररूप शुद्ध मुनिपना मानना—ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध का नही जानना। [आ] २८ महाव्रतादि मुनिपना है नही परन्तु जिसको अपनी आत्मा के आश्रय से पर्याय मे सकलचारित्ररूप मुनिपना प्रगटा है उस जीव के २८ महाव्रतादि को निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से मुनिपना कहा है। परन्तु तुझे पर्याय मे सकल-चारित्ररूप मुनिपना प्रगटा नही है। अत: तेरे २८ महाव्रतादि के भावो पर उपचार भी सम्भव नही है। इसलिए तेरा माना हुआ निश्चय-व्यवहार मुनिपना सब झूठा है।

प्रश्न ८७—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८८—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ८९—ईर्यासमिति पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९०—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९१—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९२—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९३—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर ८६ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ९४—(१)—इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको (शुद्धि अंश और अशुद्धि अंश को) निश्चय-व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना—यह तो मिथ्याबुद्धि ही है, इसको खोल कर समझाओ ?

उत्तर—(१) साधक दशा में जो शुद्धि अंश है वह भूतार्थ है सो निश्चय कहा है; अशुद्धि अंश है वह अभूतार्थ है सो व्यवहार कहा है—सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु शुद्धि अंश भूतार्थ निश्चय है और अशुद्धि अंश अभूतार्थ व्यवहार है, इन दोनों को ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं और उपादेय हैं—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ९५—(१) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं इन दोनों को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है—इसे 'मुनिपना' पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—(१) मुनिदशा में तीन चौकड़ी कषाय के अभावपूर्वक सकलचारित्र रूप प्रगट शुद्धि भूतार्थ है सो निश्चय मुनिपना कहा है; २८ मूलगुण पालने आदि का विकल्प अभूतार्थ है सो व्यवहार मुनिपना कहा है; सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु सकलचारित्र रूप शुद्धि भूतार्थ निश्चय मुनिपना है और अस्थिरता सम्बन्धी राग अभूतार्थ सो व्यवहार मुनिपना है। इन दोनों को ही सच्चा मुनिपना है और उपादेय हैं—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ९६—(१) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु

यह दोनो ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है। इसे सम्यग्दर्शन पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—(१) श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी भूतार्थ है सो निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अस्थिरता का राग तथा सात तत्वो की भेदरूप श्रद्धा अभूतार्थ है सो व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है। सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन इन दोनो को ही सच्चा सम्यग्दर्शन है और उपादेय है—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ९७—(१) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है, सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु यह दोनो ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनो को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है, इसे 'श्रावकपने' पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) श्रावकपने मे दो चौकडी कषाय के अभावपूर्वक देशचारित्ररूप प्रगट शुद्धि भूतार्थ है सो निश्चय श्रावकपना कहा है, बारह अणुव्रतादि का विकल्प अभूतार्थ है—सो व्यवहार श्रावकपना कहा है, सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु निश्चय श्रावकपना और व्यवहार श्रावकपना इन दोनो को ही सच्चा श्रावकपना है और उपादेय हैं—ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ९८—(१) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय व्यवहार कहा है, सो ऐसा ही मानना। (२) परन्तु यह दोनो ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनो को उपादेय मानना—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है, इसे 'मनोगुप्ति' पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—प्रश्न ९५ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ९९—"इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय व्यवहार कहा है; सो ऐसा ही मानना। परन्तु यह दोनो ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं। इन दोनो को उपादेय मानना-वह तो मिथ्याबुद्धि ही है।" इसे आदान निक्षेपण समिति पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—प्रश्न ६५ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १००—इर्या समिति पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो?

प्रश्न १०१—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १०२—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १०३—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर ६५ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

(५) तीसरी भूल का स्पष्टीकरण

प्रश्न १०४—श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं—क्या उभयाभासी का इस प्रकार दोनो नयो को अंगीकार करना ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, क्योकि उभयाभासी को यथार्थ निश्चय-व्यवहार का ज्ञान ही नही है, इसलिए उसका दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है, क्योकि जिसका श्रद्धान हो उसी की प्रवृत्ति होनी चाहिये।

प्रश्न १०५—बहुत से ऐसा कहते हैं कि भाई निश्चय में तो कुछ करना है ही नहीं, अब व्रतादिक करके शुद्ध हो जावो—क्या यह उनका कहना ठीक है ?

उत्तर—उनका कहना बिल्कुल गलत है, क्योकि ऐसे महानुभाव तो उभयाभासी मे आ जाते हैं। इसलिए इनका भी दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है। इसी बात को समयसार गाथा १५६ मे कहा है कि—

विद्वानजन भूतार्थ तज, व्यवहार मे वर्तन करे।
पर कर्मनाश विधान तो, परमार्थ आश्रित सत के ॥१५६॥

अर्थ—निश्चयनय के विषय को छोडकर विद्वान व्यवहार के द्वारा प्रवर्तते हैं, परन्तु परमार्थ के (आत्मस्वरूप के) आश्रित यतीश्वरों के ही कर्मों का नाश आगम मे कहा गया है। (केवल व्रत-तदापि में प्रवर्तन करने वाले पण्डितो के कर्मक्षय नही होता।)

प्रश्न १०६—निश्चय-व्यवहार के विषय में समयसार गाथा २७२ में क्या बताया है ?

उत्तर—जो निश्चयनय के आश्रय से प्रवर्तते हैं वे ही कर्मों से मुक्त होते हैं और जो एकान्त से व्यवहारनय के आश्रय से ही प्रवतते हैं वे कभी कर्मों से मुक्त नही होते हैं।

प्रश्न १०७—"निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहारूप शृद्धान करना योग्य है।" इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—(१) निश्चयनय के आश्रय से धर्म होता है यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है। व्यवहार के आश्रय से वध होता है यह व्यवहार का व्यवहारूप श्रद्धान है। (२) सवर-निर्जरा मोक्षमार्गरूप हैं यह निश्यचय का निश्चयरूप श्रद्धान है। आस्रव-बध ससार मार्गरूप हैं यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है।

प्रश्न १०८—"निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करने योग्य है।" इसके दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर—(अ) चौथे गुणस्थान मे निश्चय सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरणचारित्र की प्राप्ति यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प तथा सात तत्वो की भेदरूप श्रद्धा बधरूप है हेय है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है (आ) पाँचवे गुणस्थान मे देशचारित्ररूप शुद्धि श्रावकपना है यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और वारह अणुव्रतादि का विकल्प व्यवहार श्रावकपना बध रूप है हेय है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (इ) छट्ठे गुणस्थान में सकलचारित्ररूप शुद्धि निश्चय मुनिपना है यह निश्चनय का निश्चयरूप श्रद्धान है और २८ मूलगुण आदि

पालने का विकल्प व्यवहार मुनिपना बधरूप है हेय है यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है।

प्रश्न १०९—"एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व है" इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर—आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान हुए बिना सर्वथा निश्चय की बात करे, सर्वथा व्यवहार की बात करे या सवथा उभयाभासी की बात करे—वह सब एकान्त मिथ्यात्व है।

प्रश्न ११०—समयसार कलश १११ मे सर्वथा एकान्त क्या बताया है, स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—(अ) व्यवहाराभासी परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा को तो जानते नही और व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अनशनादि क्रिया-काण्ड के आडम्बर को मोक्ष का कारण जानकर उसमे तत्पर रहते हैं—उसका पक्षपात करते है वे सर्वथा एकान्ती ससार मे डूबते हैं। (आ) निश्चयाभासी आत्मस्वरूप को यथार्थ जानते नही तथा सर्वथा एकान्तवादी मिथ्यादृष्टियो के उपदेश से अथवा अपने आप ही शुद्ध दृष्टि हुये बिना अपने को सर्वथा अबन्ध मानते है। व्यवहार को निरर्थक जानकर छोडकर स्वच्छन्दी होकर विषय-कषायो मे वर्तते हैं वे सर्वथा एकान्ती ससार समुद्र मे डूबते हैं।

[समयसार कलश १११]

प्रश्न १११—एकान्त मिथ्यात्व के विषय में समयसार कलश १३७ के भावार्थ मे क्या बताया है ?

उत्तर—"पहले तो मिथ्यादृष्टि का अध्यात्म शास्त्र मे प्रवेश ही नही है और यदि प्रवेश करता है तो विपरीत समझता है। निश्चयाभासी शुभभाव को सर्वथा छोडकर भ्रष्ट होता है अथवा व्यवहाराभासी निश्चय को भली-भाँति जाने बिना शुभभाव से ही मोक्ष मानता है, परमार्थतत्व मे मूढ रहता है।" ऐसा बताया है।

प्रश्न ११२—प्रवचनसार गाथा ६४ मे सर्वथा एकान्त किसे बताया है ?

उत्तर—जिन्हे असमानजातीय द्रव्य पर्याय मे निरर्गल एकान्त दृष्टि उछलती है कि मैं मनुष्य ही हू, मेरा ही यह मनुष्य शरीर है—ऐसा अहकार-ममकार द्वारा ठगता हुआ—जिसने समस्त क्रिया-कलाप को छाती से लगाया है—वे सर्वथा एकान्ती है।

प्रश्न ११३—नियमसार गाथा १९ की टीका में सर्वथा एकान्त किसे बताया है ?

उत्तर—एकनय का अवलम्बन लेता हुआ उपदेश ग्रहण करने योग्य नही है।

प्रश्न ११४—"वहाँ वह कहता है कि (१) श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं—इस प्रकार हम दोनो को अंगीकार करते हैं। (२) सो ऐसा भी नहीं बनता, क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करने योग्य है। (३) एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है।" इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाओ ?

उत्तर—उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य कहता है कि (१) हम सकलचारित्र मुनिपने का श्रद्धान रखते है और २८ महाव्रतादि प्रवृत्ति का व्यवहार पालते हैं—इस प्रकार हम निश्चय व्यवहार दोनो मुनिपनो को अगीकार करते है। (२) आचार्यकल्प प० टोडरमल जी उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारी मान्यतानुसार निश्चय व्यवहार मुनिपना नही बनता, क्योकि तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकलचारित्रमुनिपना (मोक्षमार्ग) प्रगट करने योग्य उपादेय है। यह निश्चय मुनिपने का निश्चयरूप श्रद्धान है और २८ महाव्रतादि व्यवहार मुनिपना बधरूप हेय है—यह व्यवहार मुनिपने का व्यवहार रूप श्रद्धान है। (३) एकमात्र २८ महाव्रतादि का पालन मुनिपना है

या सकलचारित्र मुनिपने की बाते करे और प्रगट ना करे—यह एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व है।

प्रश्न ११५—निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहार-रूप श्रद्धान को तीन तरह से स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—(१) त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है अत त्रिकाली स्वभाव आश्रय करने योग्य परम उपादेय है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और शुद्ध पर्याय चाहे क्षायिक हो—वह अनादिअनन्त नही है, उसका आश्रय नही लिया जा सकता क्योकि वह एक समय की है—यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (२) मोक्षमार्ग मे शुद्ध पर्याय प्रगट करने योग्य उपादेय है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और भूमिका-नुसार स्थिरता सम्बन्धी शुभभाव बधरूप है हेय है—यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है। (३) विकारी भाव अपनी पर्याय मे है अत अपने दोप का ज्ञान कराने की अपेक्षा विकारी भाव आत्मा का है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और जब पर्यायि मे दोष होता है तब वहाँ पर द्रव्यकर्म-नोकर्म निमित्त होता है। परन्तु द्रव्य-कर्म-नोकर्म विकार नही करता है—यह व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान है।

प्रश्न ११६—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ११७—ईर्या समिति पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ११८ वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न ११९ क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १२०—श्रावकपने पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १२१—उत्तमक्षमा पर प्रश्नोत्तर ११४ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १२२—"(१) तथा प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नहीं है; (२) प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है; (३) वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और उस ही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहारनय, (५) ऐसे अभिप्रायानुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दोनो नय बनते हैं; (६) कुछ प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नहीं, (७) इसलिए इस प्रकार भी दोनो नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है।" इस वाक्य को स्पष्ट रूप से समझाइए ?

उत्तर—(१) प्रवृत्ति अर्थात् कार्य, चाहे वह कार्य जड का हो या चेतन का हो, विकारी कार्य हो या अविकारी हो उसमे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) प्रवृत्ति अर्थात् कार्य वह तो द्रव्य की परिणति है। (३) वहाँ जिस द्रव्य का कार्य हो—परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित (कथन) करे सो निश्चयनय है। (४) और उस ही को उपचार से अन्य द्रव्य की प्ररूपित (कथन) करे सो व्यवहारनय है। (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण मे (कथन मे) उस प्रवृत्ति मे (कार्य मे) दोनो नय बनते है। (६) कुछ प्रवृत्ति ही तो (कार्य ही तो) नय रूप है नही। (७) इसलिये इस प्रकार भी दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२३—(१) तथा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है। (२) प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। (३) वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और उस ही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहारनय, (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे दोनो नय बनते हैं, (६) प्रवृत्ति

ही तो नय रूप है नहीं। (७) इसलिये इस प्रकार भी दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है। इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये।

उत्तर—(१) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति आत्मा की शुद्ध परिणति है। (३) वीतराग सकलचारित्ररूप आत्मा की शुद्ध परिणति को मुनिपना निरूपित करे सो निश्चय मुनिपना है, (४) और उस मुनिपने के साथ २८ महाव्रतादि का विकल्प निमित्त व सहचारी होने से २८ महाव्रतादि के भाव को मुनिपना निरूपित करे सो व्यवहार मुनिपना है। (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे (वीतराग सकलचारित्ररूप कार्य मे) दोनो नय बनते हैं। (६) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति है वह तो नय रूप है नही। (७) इस लिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपना और २८ महाव्रतादि रूप प्रवृत्ति व्यवहार मुनिपना) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२४—प्रश्न १२३ के अनुसार श्रावकपने पर लगाकर समझाइये।

उत्तर—(१) वीतराग देशचारित्ररूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) वीतराग देशचारित्ररूप प्रवृत्ति आत्मा की शुद्ध परिणति है। (३) वीतराग देशचारित्ररूप आत्मा की शुद्ध परिणति को श्रावकपना निरूपित करे सो निश्चय श्रावकपना, (४) और उस श्रावकपने के साथ बारह अणुव्रतादि का विकल्प निमित्त व सहचारी, होने से बारह अणुव्रतादि को श्रावकपना निरूपित करना सो व्यवहार श्रावकपना है। (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे (वीतराग देशचारित्र रूप कार्य मे) दोनो नय बनते हैं। (६) वीतराग देशचारित्ररूप प्रवृत्ति है वह तो नय रूप है नही। (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार वीतराग देशचारित्र निश्चय

श्रावकपना और १२ अणुव्रतादि रूप प्रवृत्ति व्यवहार श्रावकपना) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२५—प्रश्न १२३ के अनुसार ईर्यासमिति पर लगाकर समझाइये।

उत्तर—(१) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति आत्मा की शुद्ध परिणति है। (३) वीतराग सकलचारित्ररूप आत्मा की शुद्ध परिणति को ईर्यासमिति निरूपित करे सो निश्चय ईर्यासमिति है। (४) और उस ईर्यासमिति के साथ अपने गुरु के पास जाने सम्बन्धी विकल्प होने से चार हाथ जमीन देखकर चलने आदि का विकल्प निमित्त व सहचारी होने से चार हाथ जमीन देखकर चलने आदि के भाव को ईर्यासमिति निरूपित करे सो व्यवहार ईर्यासमिति है। (५)ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे (वीतराग सकलचारित्र कार्य मे) दोनो नय बनते है। (६) वीतराग सकलचारित्ररूप प्रवृत्ति है वह तो नय रूप है नही। (७) इसलिये इस प्रकार भी(तेरी मान्यता के अनुसार वीतराग सकलचारित्ररूप निश्चय ईर्यासमिति और चार हाथ जमीन देखकर चलने का भाव व्यवहार ईर्यासमिति) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

नोट—जैसे छट्ठे गुणस्थान मे वीतराग सकलचारित्ररूप शुद्ध दशा तो एक ही प्रकार की है। उसके साथ जैसा-जैसा विकल्प निमित्त व सहचारी होता है, तो वीतराग सकलचारित्ररूप शुद्धि को उस-उस नाम से निश्चय कहा जाता है और उस विकल्प को व्यवहार कहा जाता है।

प्रश्न १२६—चारित्रमोहनीय द्रव्यकर्म के उदय से क्रोध आया—इस वाक्य पर प्रश्न १२३ के अनुसार प्रश्न सामने रखकर उत्तर समझाइये ?

उत्तर—(१) विकाररूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है।

(२) विकाररूप प्रवृत्ति आत्मा के चारित्रगुण की विकारी दशा है। (३) अपने दोष का ज्ञान कराने की अपेक्षा आत्मा की विकाररूप प्रवृत्ति को आत्मा ने क्रोध किया ऐसा निरूपित करे— सो निश्चयनय, है, (४) और उस क्रोध को ही चारित्रमोहनीय द्रव्य कर्म के उदय से हुआ —ऐसा निरूपित करे—सो व्यवहारनय है। (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति मे (विकाररूप प्रवृत्ति मे) दोनो नय बनते हैं। (६) विकाररूप प्रवृत्ति है वह तो नयरूप है नही। (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार विकार आत्मा ने किया यह निश्चय और विकार कर्म ने कराया यह व्यवहार) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२७—घडा पानी का है—इस वाक्य पर प्रश्न १२३ के अनुसार प्रश्न बनाकर उत्तर दो ?

उत्तर—(१) आहारवर्गणारूप बर्तन मे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) बर्तन तो आहारवर्गणा का कार्य है। (३) आहारवर्गणारूप मिट्टी के बर्तन को घडा प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और पानी का सयोग होने पर उपचार से पानी का घडा प्ररूपित करे सो व्यवहारनय है। (५) ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण से आहारवर्गणारूप बर्तन मे दोनो नय बनते हैं। (६) आहारवर्गणारूप बर्तन ही तो नय रूप है नही। (७) इसलिये इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार घडा मिट्टी का यह निश्चय और घडा पानी का यह व्यवहार) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२८—मैं मनुष्य हूँ—इस वाक्य पर प्रश्न १२३ के अनुसार प्रश्न बनाकर उत्तर दो ?

उत्तर—(१) औदारिक शरीर मे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) औदारिक शरीर आहारवर्गणा का कार्य है (३) आहारवर्गणा के कार्य रूप औदारिक शरीर को यह मनुष्य है ऐसा निरूपित करे—सो निश्चयनय, (४) और मनुष्य शरीर के साथ जीव का एक क्षेत्रावगाही

सम्बन्ध होने से मनुष्य जीव-ऐसा निरूपित करे सो व्यवहारनय है। (५) ऐसे अभिप्राय के अनुसार प्ररूपण से औदारिक शरीर रूप प्रवृत्ति मे दोनो नय बनते हैं। (६) औदारिक शरीर रूप प्रवृत्ति ही तो नय रूप है नही। (७) इसलिए इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार मनुष्य शरीर यह निश्चय और मनुष्य जीव यह व्यवहार) दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १२९—(१) मैं चला, (२) मैं सोया, (३) मैं बोला, (४) मैं उठा, (५) मैंने दुकान खोली, इन पाँच वाक्यो पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो?

प्रश्न १३०—(१) सम्यग्दर्शन, (२) उत्तम क्षमा, (३) उत्तम ब्रह्मचर्य, (४) उत्तम मार्दव (५) भाषा समिति, (६) क्षुधापरिषहजय (७) अनित्य भावना, इन सात वाक्यो पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो?

प्रश्न १३१—(१) मैं कैलाशचन्द्र हूँ, (२) मैं वहू हूँ, (३) मै माता हूँ, (४) मै सेठ हूँ, (५) मैं पति हूँ, इन पाँच वाक्यो पर पृथक्-पृथक् रूप से प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो?

प्रश्न १३२—आठो कर्मों के अभाव से सिद्ध दशा की प्राप्ति हुई—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो?

उत्तर—(१) क्षायिक दशा प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। (२) क्षायिक दशा तो आत्मा के सर्व गुणो की परिणति है। (३) आत्मा के सर्व गुणो की परिपूर्ण क्षायिक दशा को सिद्ध दशा प्ररूपित करे सो निश्चयनय, (४) और सिद्ध दशा आठो कर्मो क अभाव से हुई—ऐसा प्ररूपित करे—सो व्यवहारनय। (५) ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण से उस पूर्ण क्षायिक रूप प्रवृत्ति मे दोनो नय बनते हैं। (६) पूर्ण क्षायिक रूप प्रवृत्ति ही तो नय रूप है नही। (७) इसलिए इस प्रकार भी (तेरी मान्यता के अनुसार सिद्धदशा निश्चय, और आठो कर्मों के अभाव से सिद्धदशा व्यवहार) दोनो नयो

का ग्रहण मानना मिथ्या है।

प्रश्न १३३—केवलज्ञानावरणीय के अभाव से केवलज्ञान हुआ—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३४—स्त्री ने रोटी बनाई—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३५—उत्तम मार्दव धर्म पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३६—सम्यग्ज्ञान पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

प्रश्न १३७—ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से ज्ञान का क्षयोपशम हुआ—इस वाक्य पर प्रश्नोत्तर १२३ के अनुसार प्रश्न व उत्तर दो ?

(६) अवश्य याद रखने योग्य प्रश्न १३८ से १६२ तक

प्रश्न १३८—उभयभासी के दोनो नयो का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया, तो वह क्या करे ?

उत्तर—निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न १३९—निश्चयनय के निरूपण को सत्यार्थ मानकर श्रद्धान करना और व्यवहारनय के निरूपण को असत्यार्थ मानकर श्रद्धान छोडना ऐसा कहीं समयसार में लिखा है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ मे कहा है कि "सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि मे अध्यवसाय है सो समस्त ही छोडना" ऐसा जिनदेवो ने कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—"इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुडाया है तो फिर सन्त पुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यो नही करते ?" ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न १४०—समयसार नाटक में व्यवहार भाव को क्या कहा है ?

उत्तर—असख्यात लोक प्रमाण जो मिथ्यात्व भाव है वह व्यवहार भाव है ऐसा केवली भगवान कहते है।" ऐसा कहा है।

प्रश्न १४१—निश्चय व्यवहार के विषय मे सममसार गाथा ११ में क्या बताया है ?

उत्तर—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है—ऐसा ऋषीश्वरो ने दर्शाया है, जो जीव भूतार्थ का आश्रय करता है वह जीव सम्यक्‌दृष्टि है।

प्रश्न १४२—निश्चय व्यवहार के विषय मे समयसार गाथा ५६ में क्या बताया है ?

उत्तर—"यह वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यन्त जो २९ भाव कहे गये, वे व्यवहारनय से तो जीव के है, किन्तु निश्चयनय के मत मे २९ वोलो मे से कोई भी जीव के नही है" ऐसा कहा है।

प्रश्न १४३—प्रवचनसार गाथा ९४ मे किसको छोडने और किस का आचरण करने को बताया है ?

उत्तर—"मनुष्य व्यवहार को छोडकर मात्र ज्ञायक अचलित चेतना वह ही मैं हूँ ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-आचरण" करने को बताया है।

प्रश्न १४४—निश्चय व्यवहार के विषय मे समयसार गाथा ६ और ७ में क्या बताया है ?

उत्तर—चार प्रकार के अध्यात्म व्यवहार को भी छुडाया है और अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव करने को कहा है।

प्रश्न १४५—नियमसार गाथा ५० में हेय-उपादेय किसे बताया है ?

उत्तर—पूर्वोक्त सर्वभाव पर स्वभाव हैं, पर द्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं, अन्तः तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य-आत्मा उपादेय है, ऐसा बताया है।

प्रश्न १४६—शास्त्रो में जहाँ त्रिकाली स्वभाव निश्चय और शुद्ध पर्याय व्यवहार कहा हो—वहाँ क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—त्रिकाली स्वभाव यथार्थ का नाम निश्चय—ऐसा निश्चय-नय से निरूपण किया हो उसे आश्रय करने योग्य सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और शुद्ध पर्याय उपचार का नाम व्यवहार--ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो वह अनादिअनन्त नही है और आश्रय करने योग्य नही है इस अपेक्षा असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना ।

प्रश्न १४७—शास्त्रो मे जहाँ शुद्ध पर्याय निश्चय और भूमिकानुसार शुभभाव को व्यवहार कहा हो—वहाँ क्या जानना चाहिये ?

उत्तर—शुद्ध पर्याय यथार्थ का नाम निश्चय—ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे प्रगट करने योग्य सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और भूमिकानुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो—उसे बध का कारण हेय जानकर असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना ।

प्रश्न १४८—निश्चय और व्यवहार के विषय मे मोक्षपाहुड गाथा ३१ में कुन्द-कुन्द भगवान ने क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार मे सोता है अर्थात् जो व्यवहार की श्रद्धा छोडकर निश्चय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य मे जागता है तथा जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य मे सोता है इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है । समाधितन्त्र गाथा ७८ मे भी यही बताया है ।

प्रश्न १४९—व्यवहार का श्रद्धान छोडकर निश्चयनय का श्रद्धान क्यो करना योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय=स्वद्रव्य—परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है । सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना चाहिये । निश्चयनय=स्वद्रव्य--परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता यथावत्

निरूपण करता है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका ग्रहण करना चाहिये।

(२) व्यवहारनय=द्रव्य के भावो—परद्रव्य के भावो को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है—सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना चाहिये। निश्चय-नय=स्वद्रव्य के भावो—परद्रव्य के भावो को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता, यथावत् निरूपण करता है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका ग्रहण करना चाहिए।

(३) व्यवहारनय=कारण—कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है—सो ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। निश्चयनय=कारण कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता, यथावत् निरूपण करता है सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न १५०—आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्या-त्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना, परन्तु जिनमार्ग मे दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"—ऐसा जानना तथा कही व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे "ऐसे ही नही, निमित्तादि की अपेक्षा (भग-भेद-सहयोग-सहचारी की अपेक्षा) उप-चार किया है"—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न १५१—इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है, इसमें 'इस प्रकार' शब्द से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—व्यवहार कथन झूठा है निश्चय कथन सच्चा है इस

प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है अर्थात् हेय-उपादेय-ज्ञेय को जानने के नाम से ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न १५२—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं "ऐसे भी है" और "ऐसे भी है" इस प्रकार दोनों नयो का ग्रहण करना चाहिए, क्या उनका कहना गलत है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, उन्हे जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है। दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है और ऐसे भी है"—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न १५३—वृहत् द्रव्य सग्रह मे हेय-उपादेय के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर—"यद्यपि शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्म द्रव्य उपादेय है, (सदा आश्रय करने योग्य उपादेय है) तथापि हेयरूप अजीव द्रव्यों का भी कथन किया जाता है, क्योकि हेय तत्त्व का परिज्ञान हुए बिना उसका आश्रय छोडकर उपादेय तत्त्व का आश्रय नही किया जा सकता है" ऐसा बताया है।

प्रश्न १५४—व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो उनका उपदेश जिन-मार्ग मे किसलिए दिया ?—एकमात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था ?

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार मे ससारी भाषा के बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है, इसलिए व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिए व्यवहार द्वारा उपदेश देते है। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है परन्तु अगीकार करने योग्य नही है।

उत्तर—"अहो ज्ञानी जनो! वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यंत २९ भाव है, उन सबको एक पुद्गल की ही रचना जानो, इसलिए यह भाव पुद्गल ही हो, आत्मा न हो; क्योकि आत्मा तो विज्ञानघन है, ज्ञान का पुज है इसलिए वह इन वर्णादिक भावो से अन्य ही है।"

प्रश्न १६२—निश्चय-व्यवहार के विषय मे समयसार कलश ४० मे क्या बताया है?

उत्तर—"घी से भरे हुए घडे को व्यवहारनय से 'घी का घडा' कहा जाता है तथापि निश्चय से घडा घी स्वरूप नही है, घी घी स्वरूप है, घडा मिट्टी स्वरूप है; उसी प्रकार वर्ण, पर्याप्ति, इन्द्रियो इत्यादि के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध वाले जीव को सूत्र मे व्यवहारनय से पचेन्द्रिय जीव, पर्याप्त जीव, बादर जीव, देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि कहा गया है तथापि निश्चय से जीव उस स्वरूप नही है; वर्ण-पर्याप्ति-इन्द्रियाँ आदि पुद्गल स्वरूप हैं, जीव ज्ञान स्वरूप है।

(७) सयोगरूप निश्चय-व्यवहार का नौ बोलो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न १६३—'मनुष्य जीव' पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो?

उत्तर—"शरीर रहित जीव है" ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और मनुष्य जीव है ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना क्योकि समयसार कलश १७३ मे जितना पराश्रित व्यवहार है वह सब जिनेन्द्र देवो ने छुडाया है और निश्चयनय को अगीकार करके निज महिमा मे प्रवर्तन का आदेश दिया है।

प्रश्न १६४—निश्चय-व्यवहार "मनुष्य जीव" के विषय में मोक्ष-पाहुड़ गाथा ३१ में क्या बताया है?

उत्तर—मनुष्य जीव—ऐसे व्यवहार की श्रद्धा छोडकर मैं आत्मा हूँ, ऐसी श्रद्धा करता है वह योगी अपने कार्य मे जागता है तथा मै मनुष्य हूँ, मैं मनुष्य हूँ जो ऐसे व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य मे सोता है। इसलिए मैं मनुष्य ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मैं आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न १६५—मै मनुष्य हूं ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मैं आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय स्वद्रव्य (आत्मा) पर द्रव्यो (शरीर-मन-वाणी) को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। सो 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्त्व है, इसलिए उसका त्याग करना। तथा निश्चयनय स्वद्रव्य (आत्मा) पर द्रव्यो (शरीर-मन-वाणी) को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता, यथावत् निरूपण करता है। 'सो मैं आत्मा हूँ, शरीर-मन-वाणी नही हूँ' ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न १६६—आप कहते हो 'मनुष्य जीव' ऐसे व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करो और मैं शरीर-मन-वाणी रहित आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करो, परन्तु जिनमार्ग में दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग मे जहाँ शरीर-मन-वाणी रहित मैं आत्मा ही हूँ ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"—ऐसा जानना। तथा "मैं मनुष्य हूँ" ऐसे व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। मैं शरीर-मन-वाणीरूप मनुष्य नही हूँ, आत्मा हूँ—इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न १६७—कोई-कोई विद्वान "निश्चय से मैं आत्मा हूं और व्यव-

हारनय से मैं मनुष्य हूँ" दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है, ऐसे भी है" ऐसा कहते हैं; क्या ऐसे मानने वाले झूठे हैं ?

उत्तर—झूठे ही हैं, क्योकि दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है, ऐसे भी है, मैं आत्मा भी हूँ और मनुष्य भी हूँ"—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न १६८—यदि 'मैं मनुष्य' ऐसा व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिए दिया ? एक 'मै आत्मा ही हूँ' ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था।

उत्तर—मनुष्य ऐसे व्यवहार के बिना परमार्थ आत्मा का उपदेश अशक्य है, इसलिए मनुष्य ऐसे व्यवहार का उपदेश है। निश्चय आत्मा को अगीकार कराने के लिये—मनुष्य ऐसे व्यवहार द्वारा उपदेश देते है परन्तु व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है सो अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न १६९—मैं मनुष्य ऐसे व्यवहार के बिना निश्चय आत्मा का उपदेश कैसे नहीं होता ? सो कहिये।

उत्तर—निश्चयनय से तो आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है, उसे जो नही पहिचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। इसलिए उनको व्यवहारनय से शरीर-मन-वाणी की सापेक्षता द्वारा मनुष्य जीव है, इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहिचान कराई। इस प्रकार मनुष्य व्यवहार के बिना निश्चय आत्मा का उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न १७०—मैं मनुष्य ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना, सो कहिए ?

उत्तर—यहाँ व्यवहार से शरीर-मन-वाणी पुद्गल पर्याय ही को जीव कहा, सो शरीर-मन-वाणी पुद्गल पर्याय ही को जीव नही मान

लेना । वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोगरूप है । वहाँ निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न है, उसी को जीव मानना। जीव के सयोग से शरीर-मन-वाणी को भी उपचार से जीव कहा, सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नही—ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार मनुष्य जीव है ऐसे व्यवहारनय को अगीकार नही करना—ऐसा जान लेना ।

प्रश्न १७१—मैं मनुष्य हूं--जो ऐसे व्यवहार को ही सच्चा मानता है उसे शास्त्रो मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मे 'तस्य देशना नास्ति' कहा है। (२) नाटक समयसार मे 'मूर्ख' कहा है। (३) आत्मावलोकन मे 'हरामजादीपना' कहा है। (४) समयसार कलश ५५ मे कहा है—'यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है'। (५) प्रवचनसार मे 'पद-पद पर धोखा खाता है' ऐसा कहा है। (६) समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक मे मिथ्यादृष्टि आदि शब्दो से सम्बोधित किया है।

(८) उभयाभासी की मान्यता अनुसार निश्चय से मैं परद्रव्यो से भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हू और व्यवहार से मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो के द्वारा स्पष्टीकरण ।

प्रश्न १७२—पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ--ऐसे निश्चय का श्रद्धान रखता हूँ और मैं प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहार की प्रवृत्ति रखता हूँ परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनो नयो को झूठा बता दिया तो हम निश्चय-व्यवहार दोनो नयो

को किस प्रकार समझें तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसा जो निश्चयनय से निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और मैं पडित कैलाशचन्द्र हूँ—ऐसा जो व्यवहारनय से निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न १७३—मै पं० कैलाश चन्द्र जैन हूं—ऐसे व्यवहारनय के त्याग करने का और पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यों से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हूं—ऐसे निश्चयनय के अंगीकार करने का आदेश कहीं जिन-वाणी मे भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि—मैं निश्चय से प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ और व्यवहार से मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ —यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोडना क्योकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय व्यवहार कुछ होता ही नही—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि मे आया है। स्वय अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—मैं ऐसा मानता हूँ, ज्ञानियो को जो मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसा पराश्रित व्यवहार होता है सो सर्व ही छुडाया है। तो फिर सन्तपुरुष प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध एक परम त्रिकाली निज ज्ञायक निश्चय ही को अगीकार करके शुद्ध ज्ञानरूप घनरूप निज महिमा मे स्थिति करके क्यो केवलज्ञान प्रगट नही करते है—ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न १७४—पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूं—ऐसे निश्चयनय को अंगीकार करने और मै प० कैलाशचन्द्र जैन हू—ऐसे व्यवहारनय के त्याग के विषय मे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्ष प्राभृत गाथा ३१ मे कहा है कि—मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे जो व्यवहार की श्रद्धा छोडकर, प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—जो ऐसे निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य मे जागता है तथा मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—जो ऐसे व्यवहार मे जागता है वह अपने आत्मकार्य मे सोता है। इसलिये मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर, कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसे निञ्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न १७५—मै पं० कैलाशचन्द्र जैन हू—ऐसे व्यवहारनय का श्रद्धान को छोडकर, पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गलो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूं—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय—प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गलो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध निज ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—यह स्वद्रव्य, प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल शरीर —यह परद्रव्य, इस प्रकार व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है सो मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ ऐसे व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसीलिये उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय—प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध निज ज्ञायक भगवान

आत्मा यह स्वद्रव्य, प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप पुद्गल शरीर यह परद्रव्य, इस प्रकार निश्चयनय स्वद्रव्य पर द्रव्य का यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है। प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—सो ऐसे ही निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न १७६—आप कहते हो कि मैं पं० कैलाशचन्द्र जैन हू—ऐसे व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना तथा प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हू—ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना। यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है सो कैसे है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"—ऐसा जानना। तथा कही मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे "ऐसे हैं नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। मैं प० कैलाशचन्द्र जैन नही हूँ, मैं तो प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न १७७—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि "मै पं० कैलाशचन्द्र जैन भी हूं और पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा भी हूं।"

इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनो नयों का ग्रहण करते हैं। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ विल्कुल ही गलत है क्योकि ऐसे महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता ही नही है। तथा उन महानुभावो ने निश्चय-व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर कि व्यवहार से मैं प० कैलाशचन्द्रजैन भी हूं और निश्चय से प० कैलाश चन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा भी हूँ—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नही कहा है।

प्रश्न १७८—मै प० कैलाशचन्द्र जैन हूं—यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो व्यवहार का उपदेश जिनवाणी मे किसलिये दिया ? पं० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूं—एकमात्र ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार मै प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसा व्यवहार के विना, प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिए मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ--ऐसे व्यवहार का उपदेश है। (२)प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूँ—ऐसे निश्चय का ज्ञान कराने के लिए, मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, जानने योग्य है, परन्तु व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न १७९—मैं पं० कैलाशचन्द्र जन हूं—ऐसे व्यवहार के बिना प कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा हूं—ऐसे निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे समझाइए ?

उत्तर—निश्चयनय से आत्मा प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा है, उसे जो नही पहिचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तव तो वे समझ नही पाये। इसलिए उनको व्यवहारनय से मैं प० कैलाशचन्द्र जैन नाम रूप-शरीर-इन्द्रिय-मन-वाणी द्रव्यकर्मादिक परद्रव्यो की सापेक्षता द्वारा मैं प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप मनुष्य-नारकी-देव-पृथ्वीकायादिक रूप हूँ। इस प्रकार जीव के विशेष किए तव प० कैलाशचन्द्र जैन जीव है, वहू जीव है, कुत्ता जीव है, मक्खी जीव है, पृथ्वीकाय जीव है इत्यादि चारो गतियो के शरीर सहित उन्हे जीव की पहिचान हुई।

प्रश्न १८०—मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय से जीव की पहिचान कराई, तब मैं प० कैलाशचन्द्र हू—ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—व्यवहारनय से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पर्याय को जीव कहा, सो प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पर्याय को ही जीव नही मान लेना। प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप असमानजातीय वर्तमान पर्याय तो जीव पुद्गल के सयोग रूप है। वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है उस ही को जीव मानना। प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप पुद्गल द्रव्यो से सर्वथा भिन्न, स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध ज्ञायक भगवान आत्मा के सयोग से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा—सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से प० कैलाशचन्द्र जैन नामरूप शरीर-इन्द्रिय-मन-वाणी-द्रव्यकर्मादिक जीव होते ही नही—ऐसा श्रद्धान करना।

प्रश्न १८१—मैं पं० कैलाशचन्द्र जैन हूं—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है—उस जीव को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे पुरुषार्थ सिद्धियुपाय के श्लोक ६ मे कहा है कि 'तस्य देशना नास्ति ।'

(२) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे समयसार कलश ५५ मे कहा है कि—'यह उसका अज्ञान मोह अधकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है ।'

(३) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि "वह पद-पद पर धोखा खाता है ।"

(४) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ—ऐसे व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे आत्मावलोकन मे कहा है कि "यह उसका हरामजादीपना है ।

प्रश्न १८२—नारकी जीव—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८३—देव जीव—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८४—मैं सुबह उठता हूं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८५—मैंने भगवान की पूजा की—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो ।)

प्रश्न १८६—मेरे बाल बच्चे हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न १८७—मेरी दुकान है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न १८८—मानतुंग आचार्य ने भक्तामर स्त्रोत से ताले तोडे-इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न १८९—धर्म द्रव्य ने मुझे चलाया—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न १९०—सीता के ब्रह्मचर्य से अग्नि पानी हो गई—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

१९१—मुझे भगवान शान्तिनाथ शान्ति देते हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न १९२—मुझे रोटी खाने से शान्ति मिलती है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न १९३—काल द्रव्य मुझे परिणमन करता है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(प्रश्न १७२ से १८१ तक के अनुसार उत्तर दो।)

(९) कारण कार्य का सात बोलो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न—१९४—'गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य' इस पर निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना और ज्ञान आत्मा के ज्ञान गुण मे से उस समय पर्याय की योग्यता से हुआ ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना, क्योकि भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ मे जितना भी पराश्रित कारण कार्य है वह सब जिनेन्द्रो ने छुडाया है और निश्चयनय से सच्चे कारण-कार्य को ग्रहण करके निज महिमा मे प्रवर्तन का आदेश दिया है।

प्रश्न १९५—गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य के विषय मे मोक्ष पाहुड गाथा ३१ मे क्या बताया है ?

उत्तर—जो पराश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा छोडकर स्वाश्रित कारण—कार्य की श्रद्धा करता है, वह योगी आतमकार्य मे जागता है तथा जो पराश्रित कारण-कार्य से (गुरू कारण, ज्ञान हुआ कार्य) लाभ मानता है, वह अपने आतमकार्य मे सोता है। इसलिये पराश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा छोडकर, स्वाश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा करना योग्य है।

प्रश्न १९६—गुरू कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा छोड़कर स्वाश्रित कारण-कार्य की श्रद्धा करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय=गुरू कारण, ज्ञान हुआ कार्य, ऐसे पराश्रित कारण-कार्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना, तथा निश्चयनय=कारण-कार्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता है, यथावत् निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न १९७—आप कहते हो पराश्रित कारण-कार्य के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करो और स्वाश्रित कारण-

कार्य के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करो परन्तु जिनमार्ग में स्वाश्रित-पराश्रित कारण-कार्य का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे?

उत्तर—जिनमार्ग मे आत्मा के ज्ञान गुण मे से उस समय पर्याय की योग्यता से ज्ञान हुआ—ऐसा स्वाश्रित कारण-कार्य की मुख्यता लिये व्याख्यान हो, उसे तो 'सत्यार्थ, ऐसे ही है' ऐसा जानना। तथा गुरू कारण, ज्ञान कार्य ऐसा पराश्रित कारण-कार्य की मुख्यता लिये व्याख्यान हो उसे 'ऐसे है नही, पराश्रित कारण-कार्य की अपेक्षा उपचार से कथन किया है'—ऐसा जानना। इस प्रकार (स्वाश्रित कारण-कार्य सच्चा है और पराश्रित कारण कार्य झूठा है) जानने का नाम ही स्वाश्रित-पराश्रित कारण-कार्यों का ज्ञान है।

प्रश्न १९८—कोई विद्वान स्वाश्रित कारण-कार्य को और पराश्रित कारण-कार्य को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है; और ऐसे भी है, ऐसा कहते हैं, क्या ऐसे कहने वाले झूठे हैं?

उत्तर—झूठे ही हैं, क्योकि स्वाश्रित-पराश्रित कारण-कार्य को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है'—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो स्वाश्रित-पराश्रित कारण कार्यो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न १९९—यदि गुरू कारण और ज्ञान हुआ कार्य ऐसा पराश्रित कारण-कार्य असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया?—एक स्वाश्रित कारण-कार्य का ही निरूपण करना था?

उत्तर—गुरू कारण-ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य के बिना परमार्थ स्वाश्रित कारण-कार्य का उपदेश अशक्य है, निश्चय से स्वाश्रित कारण-कार्य को अगीकार कराने के लिये गुरु कारण, ज्ञान हुआ कार्य—ऐसे पराश्रित कारण-कार्य द्वारा उपदेश देते है, परन्तु पराश्रित कारण-कार्य है सो अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २००—जो जीव पराश्रित कारण-कार्य को ही अर्थात् गुरू

कारण, ज्ञान हुआ कार्य को ही सच्चा मानता है उसे शास्त्रो में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे "तस्य देशना नास्ति" कहा है, (२) नाटक समयसार मे 'मूर्ख' कहा है। (३) आत्मावलोकन मे "हरामजादीपना" कहा है। (४) समयसार कलश ५५ मे "अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है" ऐसा कहा है,(५) प्रवचनसार मे 'पद-पद पर धोखा खाता है' ऐसा कहा है, (६) समयसार और मोक्षमार्ग प्रकाशक मे 'मिथ्यादृष्टि' आदि शब्दो से सम्बोधित किया है।

प्रश्न २०१—केवलज्ञानावरणीय कर्म का अभाव कारण, केवलज्ञान हुआ कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण-कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०२—शास्त्र कारण, ज्ञान हुआ कार्य—इस वाक्य पर दोनो कारण कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०३—बाई कारण, रोटी कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण-कार्यो का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०४—दर्शनमोहनीय का उपशम कारण, औपशमिक सम्यक्त्व कार्य—इस वाक्य पर दोनो कारण कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०५—बढ़ई कारण, अलमारी कार्य—इस वाक्य पर दोनों कारण कार्यों का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०६—मानस्तम्भ कारण, गौतम को सम्यग्दर्शन हुआ कार्य—इस वाक्य पर कारण कार्य का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०७—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान क्रोधादि द्रव्य कर्म का अभाव कारण, देशचारित्र कार्य—इस वाक्य पर कारण कार्य का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न १९४ से २०० तक के अनुसार उत्तर दो।

(१०) भेद-अभेद का स्पष्टीकरण

प्रश्न २०८—व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसको दूसरी तरह समझाइये।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है। उसे जो नही पहिचानते, उनसे इसी तरह कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। तब उसको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये, तब जानने वाला जीव है—देखने वाला जीव है—इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहिचान हुई। इस प्रकार व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २०९—व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद का उपदेश कैसे नहीं होता—इस बात का उत्तर प्रश्न २०८ में दिया—अब इस प्रश्न के उत्तर को और स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—प्रश्न २०८ के उत्तर मे अभेद आत्मा की गुणभेद द्वारा पहचान कराई है। समयसार गाथा सात के भावार्थ मे अभेद को मुख्य करके भेद को अवस्तु कहा है, क्योकि भेद के लक्ष्य से रागी को राग उत्पन्न होता है। यहाँ पर पडित जी ने भेद से अभेद को समझाया है। इस प्रकार व्यवहार भेद बिना निश्चय अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २१०—ज्ञान-दर्शनादि के भेदो से जीव की पहिचान कराने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—एक क्षेत्रावगाही शरीर-इन्द्रियाँ-भाषा-मन और द्रव्य कर्मों से भी दृष्टि हट गई और अब ज्ञान-दर्शनादि के भेदो पर दृष्टि रह गई।

प्रश्न २११—भेद से जीव की पहिचान कराई, तब भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान-दर्शनादि भेद किये, सो उन्हे भेदरूप ही नही मान लेना, क्योकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं, निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उसी को जीव वस्तु मानना। सज्ञा-सख्या आदि से भेद कहे, सो कथन मात्र ही हैं। परमार्थ से द्रव्य और गुण भिन्न-भिन्न नही हैं—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरूप व्यवहार-नय का विषय है, जानने योग्य है परन्तु अगीकार करने योग्य नही है—ऐसा जानना।

प्रश्न २१२—ज्ञान-दर्शनादि के भेदो से जीव को बताया तथा अभेद भेद से रहित है—ऐसा बताने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—वास्तव मे भेद-अभेद बतलाकर इसमे द्रव्यानुयोग के शास्त्रो का अर्थ करने की बात समझाई है।

प्रश्न २१३—भेद-अभेद के विषय मे प्रवचनसार गाथा १०६ के भावार्थ में क्या स्पष्ट किया है ?

उत्तर—"द्रव्य मे और सत्तादि गुणो मे अपृथक्त्व होने पर भी अन्यत्व है, क्योकि द्रव्य के और गुण के प्रदेश अभिन्न होने पर भी द्रव्य मे और गुण मे सज्ञा, सख्या, लक्षणादि भेद होने से (कथचित) द्रव्य गुणरूप नही है और गुण द्रव्यरूप नही है।"

प्रश्न २१४—द्रव्य-गुण भेदरूप हैं या अभेदरूप हैं ?

उत्तर—द्रव्य-गुण भेद-अभेद दोनो रूप हैं।

प्रश्न २१५—द्रव्य-गुण भेदरूप कैसे हैं ?

उत्तर—सज्ञा, सख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेदरूप हैं।

प्रश्न २१६—द्रव्यगुण अभेदरूप कैसे हैं ?

उत्तर—(१) प्रदेशो की अपेक्षा द्रव्य-गुण अभेदरूप हैं। (२) क्षेत्र की अपेक्षा द्रव्य-गुण अभेदरूप है और (३) काल की अपेक्षा से द्रव्य-गुण अभेदरूप हैं।

प्रश्न २१७—द्रव्य-गुण मे संज्ञा भेद कैसे हैं ?

उत्तर—एक का नाम द्रव्य है। दूसरे का नाम गुण है। यह सज्ञा अपेक्षा भेद है।

प्रश्न २१८—द्रव्य-गुण संख्या अपेक्षा भेद कैसे है ?

उत्तर—द्रव्य एक है और गुण अनेक है—यह सख्या अपेक्षा भेद है।

प्रश्न २१९—द्रव्य-गुण लक्षण की अपेक्षा भेदरूप कैसे है ?

उत्तर—(१) द्रव्य का लक्षण—गुणो का समूह है। (२) गुण का लक्षण—द्रव्य के सम्पूर्ण भागो मे और सम्पूर्ण अवस्थाओ मे रहे—उसे गुण कहते है। यह लक्षण अपेक्षा भेद है।

प्रश्न २२०—द्रव्य-गुण में प्रयोजन की अपेक्षा भेद कैसे है ?

उत्तर—द्रव्य अभेदरूप है और गुणो का प्रयोजन भिन्न-भिन्न है। यह प्रयोजन अपेक्षा भेद है।

प्रश्न २२१—भेद-अभेद के विषय में मोक्षमार्ग प्रकाशक आठवें अधिकार पृष्ठ २८४ मे क्या बताया है ?

उत्तर—"वहाँ जीवादि वस्तु अभेद है। तथापि उसमें भेद कल्पना द्वारा व्यवहार से द्रव्य-गुण-पर्यायादिक के भेदो का निरूपण करते हैं।

(११) भेद-अभेद के निश्चय, व्यवहार का नौ बोलो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न २२२—'ज्ञानवाला जीव है'—इस वाक्य मे निश्चय-व्यवहार के विषय मे क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—व्यवहारनय से ज्ञानवाला जीव है—ऐसा निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना और निश्चयनय से आत्मा अभेद है—ऐसा निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना। क्योकि भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ मे कहा है कि जितना भेदरूप व्यवहार है। वह सब जिनेन्द्र देवो ने छुडाया है और निश्चय को अगीकार करके निज महिमा मे प्रवर्तन का आदेश दिया है।

प्रश्न २२३—'ज्ञानवाला जीव है'—ऐसे निश्चय-व्यवहार के विषय मे कुन्द कुन्द भगवान ने मोक्ष पाहुड गाथा ३१ में क्या बताया है ?

उत्तर—ज्ञानवाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहार की श्रद्धा छोडकर मैं अभेद आत्मा हूँ—जो ऐसी श्रद्धा करता है वह योगी अपने कार्य मे जागता है तथा मैं ज्ञानवाला आत्मा हूँ—ऐसे व्यवहार मे जागता है, वह अपने कार्य मे सोता है इसलिए ज्ञानवाला जीव है ऐसे भेदरूप व्यवहार का श्रद्धान छोडकर मैं अभेद आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न २२४—'ज्ञानवाला जीव है' ऐसे भेदरूप व्यवहार का श्रद्धान छोड़कर मैं अभेद आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—(१) अभेदरूप आत्मा को 'ज्ञानवाला जीव है' ऐसा व्यवहारनय भेदरूप निरूपण करता है सो भेदरूप श्रद्धान से ही मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना। (२) तथा अभेदरूप आत्मा को निश्चयनय भेदरूप निरूपण नही करता है, यथावत् निरूपण करता है किसी को किसी मे नही मिलता है। सो ऐसे अभेदरूप श्रद्धान से ही सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न २२५—आप कहते हो 'ज्ञान वाला जीव है'—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग

करो और आत्मा अभेदरूप है—ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करो। परन्तु जिनमार्ग मे दोनो नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग मे आत्मा अभेदरूप है—ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना। तथा ज्ञानवाला जीव है—ऐसा भेदरूप व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे 'ऐसा है नहीं' भेदादि की अपेक्षा कथन किया है'—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न २२६—कोई-कोई विद्वान निश्चयनय से आत्मा अभेद है और व्यवहारनय से आत्मा भेदरूप है। इस प्रकार दोनों नयो के व्याख्यान को समान, सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है' ऐसा मानते हैं। क्या ऐसा मानने वाले झूठे हैं ?

उत्तर—हाँ, झूठे ही हैं। क्योंकि दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है, इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न २२७—यदि ज्ञान वाला जीव है—ऐसा भेदरूप व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग मे किसलिये दिया ? अभेद-रूप आत्मा है—ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—ज्ञान वाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहार के विना अभेद आत्मा का उपदेश अशक्य है। इसलिए ज्ञानवाला जीव है—ऐसे भेद-रूप व्यवहारनय का उपदेश है। अभेदरूप आत्मा को अगीकार कराने के लिए भेदरूप व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं। भेदरूप व्यवहारनय है, उसका विषय भी है परन्तु भेदरूप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २२८—ज्ञान वाला जीव है—ऐसे भेदरूप व्यवहार के विना अभेदरूप निश्चय आत्मा का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चयनय से आत्मा अभेदवस्तु है। उसे जो नहीं

पहिचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब वे कुछ समझ नही पाये ।
तब उनको अभेदरूप आत्मा मे भेद उत्पन्न करके ज्ञानगुण रूप जीव के विशेष किये, तब जानने वाला जीव है—इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहिचान कराई । इस प्रकार भेदरूप व्यवहार बिना अभेद निश्चय का उपदेश न होना जानना ।

प्रश्न २२९—'ज्ञान वाला जीव'—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान आदि भेद किये सो उसे भेदरूप ही नही मान लेना चाहिए, क्योकि भेद तो समझाने के अर्थ किए है । निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उसी को जीव वस्तु मानना । सज्ञा-सख्या आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है । परमार्थ से द्रव्य और गुण भिन्न-भिन्न नही है ऐसा ही श्रद्धान करना । इस प्रकार भेदरूप व्यवहार बिना अभेद निश्चय के उपदेश का न होना जानना ।

प्रश्न २३०—जो भेदरूप व्यवहार को ही सच्चा मानता है उसे जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय गाथा ६ मे कहा है कि 'तस्य-देशना नास्ति' । (२) नाटक समयसार मे 'मूर्ख' कहा है ।(३)आत्मा--वलोकन मे कहा है कि "यह उनका हरामजादीपना है ।"(४)समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है" । (५) प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि 'वह पद-पद पर धोखा खाता है' । (६) समयसार व मोक्षमार्ग-प्रकाशक आदि सब ग्रन्थो मे मिथ्यादृष्टि, अभव्य, सम्यक्त्व से रहित अनीति आदि नामो से सम्बोधित किया है ।

(१२) "उभयाभासी को मान्यता अनुसार निश्चय से मैं द्रव्यकर्म नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु हूं और व्यवहार से मैं ज्ञान-

दर्शन वाला जीव हूं। इस वाक्य पर भेद-अभेद के दस प्रश्नोत्तरो द्वारा स्पष्टीकरण।"

प्रश्न २३१—मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावों से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसा अभेदरूप निश्चय का श्रद्धान रखता हूँ और मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार की प्रवृत्ति रखता हूँ। परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनो को झूठा बता दिया, तो हम निश्चय व्यवहार को किस प्रकार समझें जो कि हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलाये ?

उत्तर—मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावो मे अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसा अभेदरूप निश्चय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसा भेदरूप व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न २३२—मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार का त्याग करने का और मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अगीकार करने का आदेश कहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि—निश्चय से मुझ आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है और व्यवहार भेद से मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोडना, क्योकि मिथ्यादृष्टि को भेद-अभेद निश्चय-व्यवहार

होता ही नही है—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि मे आया है तथा स्वय अमृतचन्द्राचार्य कहते है—मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियो मे—मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसा भेदरूप पराश्रित व्यवहार होता है, सो सर्व ही छुडाया। तो फिर सन्तपुरुष द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु परम त्रिकाली निज ज्ञायक निश्चय ही को अगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन रूप निज महिमा मे स्थिति करके क्यो केवलज्ञान प्रगट नही करते हैं—ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न २३३—मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अंगीकार करने और मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्ष प्राभृत गाथा ३१ मे कहा है "मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—जो ऐसे भेदरूप व्यवहार की श्रद्धा छोडकर, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञानदर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चय-नय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य मे जागता है। तथा मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—जो ऐसे भेदरूप व्यवहार मे जागता है वह अपने आत्मकार्य मे सोता है। इसलिए मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर, मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न २३४—मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार-नय का श्रद्धान छोड़कर, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप

परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय=मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म रूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न, स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—यह स्वद्रव्य, मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—यह परद्रव्य, इस प्रकार अभेदरूप स्वद्रव्य और भेदरूप परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। मैं ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—सो ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय=अभेदरूप स्वद्रव्य और भेदरूप परद्रव्य का यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है। मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म रूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु हूँ—सो ऐसे ही अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न २३५—आप कहते हो कि भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और अभेदरूप निश्चय-नय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। "परन्तु जिनमार्ग में भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनो नयों का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म रूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न, स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ, ऐसे ही है"—ऐसा जानना। तथा कही मै ज्ञान दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे "ऐसे है नही, भेदरूप व्यवहारनय की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। मैं ज्ञान दर्शन भेदरूप वाला जीव नही हूँ—मुझ निज आत्मा तो द्रव्य कर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप

परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—इस प्रकार जानने का नाम ही भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण है ।

प्रश्न २३६—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव भी हूं अर्थात् भेदरूप भी हूं और मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु रूप भी हू—इस प्रकार हम अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करते हैं। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ बिल्कुल ही गलत है क्योकि ऐसे महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा उन महानुभावो ने अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर के व्यवहार से मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव भी हूँ और निश्चय से मुझ निज आतमा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान दर्शनादि स्वभावो से भिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु भी हूँ—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नही कहा है ।

प्रश्न २३७—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हू—यदि ऐसा भेदरूप व्यवहारनय असत्यार्थ है तो भेदरूप व्यवहार का उपदेश जिनवाणी मे किसलिए दिया ? मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे एक मात्र अभेद निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकम,

भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेद परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इस लिए मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार का उपदेश है। (२) मुझ निजआत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न, स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेदरूप निश्चय का ज्ञान कराने के लिए मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार का उपदेश है। भेदरूप व्यवहारनय है, उसका उपदेश भी है, जानने योग्य है परन्तु भेदरूप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २३८—मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हू—ऐसे भेदरूप व्यवहार के विना, मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वयं सिद्ध अभेद वस्तु है—ऐसे अभेद निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चयनय मे मुझ निजात्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद वस्तु है। उसे जो नही पहिचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तव तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण पर्याय रूप जीव के विशेष किये तब जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है—इत्यादि गुणभेद सहित उनका जीव की पहिचान हुई। मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार के विना अभेदरूप निश्चय का उपदेश न होना जानना।

प्रश्न २३९—मैं ज्ञान दर्शन वाला जीव हू—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना, सो समझाइये ?

उत्तर—मुझ निज आत्मा द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मरूप परद्रव्यो से भिन्न, ज्ञान-दर्शनादि स्वभावो से अभिन्न स्वय सिद्ध अभेद आत्मा मे ज्ञान-दर्शनादि भेद किये सो उन्हे भेदरूप ही नही मान लेना,

क्योंकि मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं। निश्चय से मुझ निज आत्मा अभेद ही है। उसी को जीव वस्तु मानना। सज्ञा, सख्या, लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से भिन्न-भिन्न नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसा भेदरूप व्यवहार अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २४०—मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हू—ऐसे भेदरूप व्यवहार-नय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उस जीव को जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार-नय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे पुरुपार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६ मे कहा है "तस्य देशना नास्ति।" (२) मै ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "यह उसका अज्ञान मोह अधकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।" (३) मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को ही जो सच्चा मान लेता है उसे प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि "वह पद-पद पर धोखा खाता है।" (४) मैं ज्ञान-दर्शन वाला जीव हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार नय के कथन को ही जो सच्चा मानता है उसे आत्मावलोकन मे कहा है कि "यह उसका हरामजादीपना है।"

प्रश्न २४१—चारित्र वाला जीव है—इस वाक्य पर अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २३१ से २४० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २४२—सुख वाला जीव है—इस वाक्य पर अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २३१ से २४० तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २४३—श्रद्धा वाला जीव है—इस वाक्य पर अभेद-भेद निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २३१ से २४० तक के अनुसार उत्तर दो।

(१३) निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का स्पष्टीकरण

प्रश्न २४४—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसको तीसरी तरह से समझाइये ?

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है, उसे जो नही पहिचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये, तब उनको तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्यवहारनय मे व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेप वतलाये, तव उन्हे वीतराग भाव की पहिचान हुई—इस प्रकार व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २४५—व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता —इस वात का उत्तर प्रश्न २४४ के उत्तर मे दिया—अब इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—वीतराग भाव मोक्षमार्ग को व्रत-शील-सयमादि रूप शुभभावो के द्वारा समझाया है, क्योकि अज्ञानी "मात्र वीतराग भाव मोक्षमार्ग" कहने से समझता नही है, जिसको अपने ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग प्रगटा है उसके व्रतादि को उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। अज्ञानी के व्रतादि की वात यहाँ पर नही है। जितना भी व्यवहार है वह सव धर्मद्रव्य के समान है।

प्रश्न २४६—ज्ञानी के अस्थिरता सम्वन्धी व्रत-शीलादि को उपचार से मोक्षमार्ग कहने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—ज्ञानी को भूमिकानुसार इसी प्रकार का शुभभाव होगा, अन्य प्रकार का नही; ऐसा पता चल जाता है।

प्रश्न २४७—(१) "तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) परद्रव्य के

निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहारनय से व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा" इस वाक्य को चौथे गुणस्थान मे लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) चौथे गुणस्थान मे निश्चय सम्यग्दर्शन—ज्ञान स्वरूपाचरण-चारित्र की प्राप्ति हुई है उसके लिये "तत्त्व-श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक" कहा है। (२) कुदेव-कुगुरु और कुशास्त्र को न मानने तथा मद्य-मास-मधु न खाते हुए की अपेक्षा "परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा" कहा है। (३) व्यवहारनय से सच्चे देवादि तथा सात तत्त्वो की भेदरूप श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा—इस प्रकार जानना।

प्रश्न २४८—(१) तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) परद्रव्य के निमित्त मिटाने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहारनय से व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा"—इस वाक्य को छठे गुणस्थान मे लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) पाँचवे गुणस्थान मे देशचारित्र शुद्धि प्रगटी है—उसके लिए 'तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक' कहा है। (२) बारह अणुव्रतादि की विरुद्धता ना होने की अपेक्षा—"परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा" कहा है। (३) व्यवहारनय से बारह अणुव्रतादि को श्रावकपना कहा—इस प्रकार जानना।

प्रश्न २४९—(१) "तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहारनय से महाव्रतादि को मोक्षमार्ग कहा"—इस वाक्य को छठे गुण स्थान मे लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) छठे गुणस्थान मे सकलचारित्र शुद्धि प्रगटी है—उसके लिए "तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक" कहा है। (२) पीछी-कमडल के अलावा कुछ ना होने की, घरो मे ना रहने की, किया कराया अनु-मोदित भोजन ना लेने की अपेक्षा—"परद्रव्य के निमित मिटने की

सापेक्षता द्वारा" कहा है। (३) व्यवहारनय से २८ महाव्रतादि रूप शुभभावो को मुनिपना कहा—इस प्रकार जानना।

प्रश्न २५०—"तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक" किसको लागू पड़ता है और किसको नहीं ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान से ज्ञानियो को ही लागू पडता है। द्रव्य-लिंगी मुनि-श्रावको को लागू नही पडता है।

प्रश्न २५१—"परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा" से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—भूमिकानुसार अस्थिरता सम्वन्धी शुभभावो के विरुद्ध धर्म विरोधी कार्यों का अभाव होने की अपेक्षा ज्ञानियो को लागू पडता है, यह तात्पर्य है।

प्रश्न २५२—किस जीव के व्रत-शीलादि को व्यवहारनय से मोक्षमार्ग कहा ?

उत्तर—जिसको अनुपचार हुआ है ऐसे ज्ञानियो के व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा है। द्रव्यलिंगी आदि के व्रत-शीलादि को नही कहा है।

प्रश्न २५३—व्यवहारनय से व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा, तब व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ? सो कहिये।

उत्तर—(१) परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा सो इन्ही को मोक्षमार्ग नही मान लेना। (२) क्योकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता हो जाये; परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नही। (३) इसलिए आत्मा अपने भाव रागादिक हैं, उन्हे छोडकर वीतरागी होता है, इसलिए निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (४) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है।(५) इसलिए व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथन मात्र ही है।

(६)परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नही है-ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है, ऐसा जानना।

प्रश्न २५४—व्यवहारनय से ज्ञानी के व्रत-शीलादि को मोक्षमार्ग कहा, तथा निश्चयनय से शुद्धि प्रगटी उसे ही मोक्षमार्ग कहा—ऐसा बताने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—वास्तव मे वीतरागता ही मोक्षमार्ग है अस्थिरता सम्बन्धी राग मोक्षमार्ग नही है, बन्ध मार्ग है। इसमे चरणानुयोग के शास्त्रो का अर्थ करने की बात समझाई है।

प्रश्न २५५—चौथे गुणस्थान की मिश्रदशा मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरण-चारित्र नैमित्तिक है, सच्चे देव-गुरू-शास्त्र के प्रति राग व सात तत्त्वो की भेदरूप श्रद्धा निमित्त है।

प्रश्न २५६—(१) चौथे गुणस्थान में अशुद्धि अंश का किसके साथ तथा (२) शरीर की क्रिया का किसका किसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उउर—(१) सच्चे देव-गुरू-शास्त्र के प्रति राग व सात तत्त्वो की भेदरूप श्रद्धा नैमित्तिक है; चारित्र मोहनीय द्रव्यकर्म का उदय निमित्त है तथा (२) हाथ जोडना आदि—शब्दरूप वचन नैमित्तिक है, सच्चे देवगुरु-शास्त्र के प्रति शुभराग निमित्त है।

प्रश्न २५७—पाँचवें गुणस्थान की मिश्रदशा मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—देशचारित्ररूप वीतरागता नैमित्तिक है; बारह अणुव्रतादि का राग निमित्त है।

प्रश्न २५८—(१) पाँचवें गुणस्थान में अशुद्धि अंश का किसके साथ (२) तथा अणुव्रतादि शरीर की क्रिया का किसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उत्तर——(१) बारह अणुव्रतादि का राग नैमित्तिक है; चारित्र मोहनीय द्रव्यकर्म का उदय निमित्त है तथा (२) बारह अणुव्रतादि रूप शरीर की क्रिया नैमित्तिक है, तो बारह अणुव्रतादि का भाव निमित्त है।

प्रश्न २५६—छठे गुणस्थान की मिश्रदशा में निमित्त नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—सकलचारित्ररूप शुद्धि नैमित्तिक है; २८ मूलगुणादि का विकल्प निमित्त है।

प्रश्न २६०—(१) छठें गुणस्थान मे अशुद्धि अंश का किसके साथ तथा (२) २८ मूलगुणादिरूप शरीर की क्रिया का किसका किसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उत्तर—(१) मूलगुणादि का विकल्प नैमित्तिक है, चारित्र-मोहनीय द्रव्यकर्म का उदय निमित्त है तथा (२) २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया नैमित्तिक है, तो भावलिंगी मुनि का २८ मूलगुणादि भाव निमित्त है।

प्रश्न २६१—प्रश्न २५५ से २६० तक निमित्त-नैमित्तिक बताने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—(१) शरीर-मन-वाणी द्रव्यकर्म की क्रिया का कर्ता सर्वथा पुद्गल द्रव्य ही है। आत्मा का पुद्गल की क्रिया से सर्वथा सम्बन्ध नही है। (२) अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर जो शुद्धि प्रगटी वह ही मोक्षमार्ग है। (३) ज्ञानियो को जो भूमिकानुसार अस्थिरता का राग होता है, उसे बध का कारण दु खरूप जानते है। (४) अस्थिरता का भाव=भाव्य और द्रव्यकर्म का उदय भावक है। ज्ञानी उसका तिरस्कार करके अपने मे एकाग्र होकर परिपूर्ण दशा की प्राप्ति—यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जानने का फल है।

प्रश्न २६२—"वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा सो कथन-

मात्र ही है; परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना।" इस वाक्य को मुनिदशा में लगाकर बताओ ?

उत्तर—सकलचारित्र रूप मुनिदशा नैमित्तिक तथा २८ मूलगुणादि का विकल्प निमित्त है। २८ मूलगुणादि को मुनिपना कहा सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से २८ मूलगुणादिपना मुनिपना नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना।

प्रश्न २६३—'वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है'—ऐसा ही श्रद्धान करना—इस वाक्य को श्रावकपना और सम्यक्‌दृष्टिपने पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(इन दोनो प्रश्नो का उत्तर प्रश्न न० २६२ के अनुसार दो।)

प्रश्न २६४—वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसमें 'कदाचित्' शब्द क्या सूचित करता है ?

उत्तर—४-५-६ वे गुणस्थान मे 'कदाचित्' शब्द सविकल्प दशा मे लागू पडता है। केवलज्ञानी को, अज्ञानी को तथा निर्विकल्प दशा मे साधक को 'कदाचित्' शब्द लागू नही पडता है।

प्रश्न २६५—नग्नपने आदि शरीर की क्रियाओ से मुनिपने की पहचान क्यो कराई है, जबकि बाहरी क्रिया मुनिपना नहीं है ?

उत्तर—आत्मा अरूपी, आत्मा के गुण अरूपि और आत्मा की सकलचारित्ररूप मुनिपना शुद्ध पर्याय अरूपी और २८ मूलगुणरूप व्यवहार मुनिपना अशुद्ध पर्याय भी अरूपी है। अब उसका ज्ञान कैसे कराया जावे—(१) तब वहाँ निश्चय की मुख्यता रखकर धर्म विरोधी कार्यो का अभाव होने से जो नग्न हो, पीछी-कमण्डल के अलावा कुछ न रखता हो, जगल मे रहता हो, उद्दिष्ट आहार ना लेता हो—वह मुनि है। (२) यहाँ पर ऐसा समझना कि वीतरागरूप सकलचारित्र-

रूप निश्चय मुनिपने का २८ मूलगुण रूप व्यवहार मुनिपने मे उपचार किया है; २८ मूलगुणरूप व्यवहार मुनिपने का वाहरी शरीरादि की क्रिया मे उपचार का उपचार किया तो उसे मुनि कहा। (३) यहाँ ऐसा जानना—वाहरी क्रिया तो सर्वथा पुद्गल की ही है उससे मुनि-पने का सम्बन्ध ही नही है। (४) परन्तु भूमिकानुसार २८ मूलगुणादि व्यवहार मुनिपना कहा—वह भी कहने मात्र का मुनिपना है वास्तव मे मुनिपना नही है। मुनिपना तो सकलचारित्र शुद्धोपयोगरूप ही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७३]

प्रश्न २६६—वारह अणुव्रतादिकरूप शरीर की क्रियाओ से श्रावक-पने की पहिचान क्यो कराई ?

उत्तर—(प्रश्न २६५ के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न २६७—सच्चे देव-गुरू-शास्त्र की वाहरी भक्ति देखकर सम्यक्दृष्टि की पहिचान क्यो कराई ?

उत्तर—(प्रश्न २६५ के अनुसार उत्तर दो।)

प्रश्न २६८—निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग के सम्बन्ध मे जिनवाणी ने क्या-क्या वताया है ?

उत्तर—(१) महाव्रतादि होने पर वीतराग चारित्र होता है—ऐसा सम्वन्ध जानकर महाव्रतादि मे चारित्र का उपचार किया है, निश्चय से नि कषाय भाव है वही सच्चा चारित्र है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३०]

(२) मोक्षमार्ग दो नही है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग का निरूपित किया जाये सो निश्चय मोक्षमार्ग है और जो मोक्षमार्ग तो है नही परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है वह सहचारी है—उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जावे सो व्यवहार मोक्षमार्ग है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४८]

(३) व्रत-तप आदि मोक्षमार्ग है नही, निमित्त की अपेक्षा उपचार से व्रतादि को मोक्षमार्ग कहते हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५०]

(४) निचली दशा मे कितने ही जीवो के शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है, इसलिए उपचार से व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है, वस्तु का विचार करने पर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है; क्योकि बध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है—ऐसा श्रद्धान करना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

(५) एकदेश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावकदशा-मुनिदशा होती है क्योकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। ऐसा जानकर श्रावक मुनिधर्म के विशेष पहचानकर जैसा अपना वीतरागभाव हुआ हो वैसा अपने योग्य धर्म को साधते है। वहाँ जितने अश मे वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते है। जितने अश में राग रहता है उसे हेय जानते है। सम्पूर्ण वीतरागता को परम धर्म मानते हैं—ऐसा चरणानुयोग का प्रयोजन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७१]

(६) धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है, वही है, उसके साधनादिक उपचार से धर्म है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २७७]

(७) निश्चयस्वरूप सो भूतार्थ है, व्यवहारस्वरूप है सो उपचार है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पष्ठ २७९]

(८) चारित्र दो प्रकार का है—एक सराग है, एक वीतराग है। वहाँ ऐसा जानना कि जो राग है वह चारित्र का स्वरूप नही है, चारित्र मे दोष है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५४]

(९) कोई वीतराग भाव तप को न जाने और अनशनादि शुभ भावो को तप जानकर सग्रह करे तो ससार मे ही भ्रमण करेगा। बहुत क्या इतना समझ लेना कि निश्चय धर्म तो वीतराग भाव है, अन्य नाना विशेष बाह्य साधन की अपेक्षा उपचार से किए हैं, उनको व्यवहार मात्र धर्म सज्ञा जानना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३३]

इसलिए निर्णय करना चाहिये कि निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप तथा फल विरूद्ध ही है।

(१४) निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का नौ बोलो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न २६९—'बारह अणुव्रतादि श्रावकपना है'—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—बारह अणुव्रतादि श्रावकपना है—ऐसा व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना और जहाँ देशचारित्ररूप श्रावकपना है—ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना, क्योंकि भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ मे कहा है कि जितना भी पराश्रित व्यवहार है वह सर्व जिनेन्द्र देवो ने छुडाया है और निश्चय को प्रगट करके निज महिमा मे प्रवर्तन का आदेश दिया है।

प्रश्न २७०—निश्चय-व्यवहार श्रावकपने के विषय मे मोक्षपाहुड़ गाथा ३१ में क्या बताया है ?

उत्तर—जो बारह अणुव्रतादि श्रावकपने की श्रद्धा छोडकर देश-चारित्र शुद्धिरूप श्रावकपनेरूप अपने स्वभाव मे रमता है वह योगी अपने कार्य मे जागता है तथा जो बारह अणुव्रतादि श्रावकपने से लाभ मानता है वह अपने कार्य मे सोता है। इसलिये बारह अणुव्रतादिरूप श्रावकपने का श्रद्धान छोडकर निश्चयनयरूप श्रावकपने का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न २७१—बारह अणुव्रतादि व्यवहाररूप श्रावकपने की श्रद्धा छोड़कर निश्चयनय देशचारित्र रूप श्रावकपने का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय स्वद्रव्य के भावो को (वीतराग देशचारित्र श्रावकपने को) परद्रव्य के भावो को (१२ अणुव्रतादि विकल्परूप श्रावकपने को) किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना

तथा निश्चयनय स्वद्रव्य के भावो को (वीतरागरूप देशचारित्ररूप श्रावकपने को) परद्रव्य के भावो को (१२ अणुव्रतादि विकल्परूप श्रावकपने को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता है, यथावत् निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न २७२—आप कहते हो कि १२ अणुव्रतादिरूप व्यवहार श्रावकपने के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करो और वीतराग देशचारित्ररूप निश्चय श्रावकपने के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करो। परन्तु जिनमार्ग मे दोनो प्रकार के श्रावकपने का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपना—जिनमार्ग मे ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना। तथा १२ अणुव्रतादि विकल्प रूप श्रावकपना है—ऐसा व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है उसे 'ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। (वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपना है और १२ अणुव्रतादि श्रावकपना नही है) इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय श्रावकपने और व्यवहार श्रावकपने का ग्रहण है।

प्रश्न २७३--कोई-कोई विद्वान 'वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपना भी है और बारह अणुव्रतादि विकल्परूप श्रावकपना भी है' ऐसा कहते हैं—क्या ऐसा मानने वाले झूठे हैं ?

उत्तर--झूठे ही है, क्योकि दोनो श्रावकपने के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है'—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहार श्रावकपने का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न २७४—यदि व्यवहार श्रावकपना असत्यार्थ है, तो व्यवहार श्रावकपने का उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ? एक वीतरागरूप निश्चय श्रावकपने का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—व्यवहार श्रावकपने के बिना परमार्थ श्रावकपने का उपदेश अशक्य है, इसलिये व्यवहार श्रावकपने का उपदेश है। निश्चय श्रावकपने को अगीकार कराने के लिए व्यवहार श्रावकपने द्वारा उपदेश देते हैं, परन्तु व्यवहार श्रावकपना है, उसका विषय भी है, जानने योग्य है सो अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २७५—व्यवहार श्रावकपने बिना निश्चय श्रावकपने का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चय से वीतराग देशचारित्र श्रावकपना है, उसे जो नही पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नही पाये। तब उनको तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक, पर-द्रव्य के निमित्त मिटाने की सापेक्षता द्वारा, व्यवहारनय से १२ अणुव्रतादि श्रावकपने को निश्चय श्रावकपने का विशेष बताया तब उन्हे निश्चय श्रावकपने की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार श्रावकपने के बिना निश्चय श्रावकपने के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २७६—बारह अणुव्रतादि विकल्परूप व्यवहार श्रावकपने को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—(१) परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से बारह अणुव्रतादि को श्रावकपना कहा, सो इन्ही को श्रावकपना नही मान लेना। (२) क्योकि बारह अणुव्रतादि का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा पर द्रव्य का (बारह अणुव्रतादिरूप शरीर की क्रिया का) कर्त्ता हर्त्ता हो जाये; परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है ही नही। (३) इसलिए आत्मा अपने भाव जो बारह अणुव्रतादि शुभभाव रूप श्रावकपना है, उन्हे छोडकर निश्चय देशचारित्ररूप श्रावकपना होता है, इसलिये निश्चय से वीतराग देशचारित्ररूप ही श्रावकपना है। (४) वीतराग देशचारित्ररूप श्रावकपने के और शुभभावरूप श्रावकपने के कदाचित् कार्य-कारणपना है। (५) इसलिये बारह अणुव्रतादि शुभभावो को श्रावकपना कहे सो कथन मात्र ही है। (६) परमार्थ से

१२ अणुव्रतादि शुभभावरूप श्रावकपना नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय को अगीकार नही करना—ऐसा जान लेना।

प्रश्न २७७—जो अणुव्रतादिक विकल्प व्यवहार श्रावकपने को ही सच्चा श्रावकपना मानता है उसे शास्त्रो में किस-किस नामो से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—जो व्यवहार श्रावकपने को ही श्रावकपना मानता है उसे (१) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय मे 'तस्य देशना नास्ति' कहा है। (२)नाटक समयसार मे 'मूर्ख' कहा है। (३) आत्मावलोकन मे 'हरामजादीपना' कहा है। (४) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि 'यह उसका अज्ञान मोह अधकार है और उसका सुलटना दुर्निवार है।' (५) प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है 'वह पद-पद पर धोखा खाता है।'(६) समयसार मे 'उसका फल ससार ही है।' ऐसा कहा है। वह क्रम से चारो गतियों मे घूमता हुआ निगोद मे चला जाता है।

(१५) 'उभयाभासों की मान्यता अनुसार निश्चय से सकलचारित्ररूप मुनिपने का श्रद्धान रखता है और २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता है। इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार मुनिपने का दस प्रश्नोत्तरो द्वारा स्पष्टीकरण'

प्रश्न २७८—सकलचारित्र वीतरागभाव मुनिपना है ऐसे निश्चय मुनिपने का तो श्रद्धान रखता हूं और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है ऐसे व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता हूं। परन्तु आपने हमारी मान्यता अनुसार निश्चय-व्यवहार मुनिपने को झूठा बता दिया। तो हम निश्चय-व्यवहार को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार मुनिपना सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकलचारित्र रूप वीतरागभाव मुनिपना है—ऐसे निश्चयनय से जो निरूपण किया हो

उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसे व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न २७९—२८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है-ऐसे व्यवहार मुनिपने का त्याग करने का, तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकल-चारित्ररूप वीतरागभाव मुनिपना है—ऐसे निश्चय मुनिपने को अंगी-कार करने का आदेश कहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिगी की ऐसी मान्यता है कि मै निश्चय से सकलचारित्र वीत-रागभावरूप निश्चय मुनिपने की श्रद्धा रखता हू और व्यवहार से २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति ऐसे व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता हू—यह उसका मिथ्या-अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोडना क्योकि मिथ्यादृष्टियो को निश्चय-व्यवहार कुछ होता ही नही है—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवानो की दिव्यध्वनि मे आया है। तथा स्वय अमृतचन्द्राचार्य कहते है कि मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियो को जो २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति-ऐसा जो पराश्रित व्यवहार मुनिपना होता है—सो सर्व ही छुडाया है। तो फिर सन्त पुरुष ! एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय के आश्रय से सकलचारित्र वीतरागभाव-रूप मुनिपने को अगीकार करके शुद्ध ज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति करके केवलज्ञान क्यो प्रगट नही करते। ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न २८०—सकलचारित्र वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने को अंगीकार करने और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्षप्राभृत गाथा ३१ मे कहा है कि "जो २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने की श्रद्धा छोडकर सकलचारित्र वीत-रागभावरूप निश्चय मुनिपने की श्रद्धा रखता है वह योगी अपने

आत्मकार्य मे जागता है। तथा जो २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने मे जागता है वह अपने आत्मकार्य मे सोता है। इसलिये २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने को श्रद्धा छोड़कर सकलचारित्र वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न २८१—२८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने की श्रद्धा छोड़कर सकलचारित्र वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय=सकलचारित्र वीतरागभाव रूप निश्चय मुनिपना—यह स्वद्रव्य के भाव, २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना—यह परद्रव्य के भाव है। निश्चय मुनिपना स्वद्रव्य के भावो, २८ मूलगुणादि परद्रव्य के भावो को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति ही मुनिपना है—सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय=निश्चय मुनिपना स्वद्रव्य के भावो को, २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप परद्रव्य के भावो को यथावत् निरूपण करता है तथा किसी को किसी मे नही मिलाता है। सकलचारित्ररूप वीत-राग ही मुनिपना है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है—इस लिए श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न २८२—आप कहते हो कि २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और सकलचारित्ररूप वीतराग भाव निश्चय मुनिपने के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिनमार्ग में निश्चय-व्यवहार दोनो मुनिपनो का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो सकलचारित्ररूप वीतराग भाव ही मुनिपना है—ऐसा निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे तो

"सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना तथा कही २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसा व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना । २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना नही है, सकलचारित्र रूप वीतराग भाव ही मुनिपना है—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनो मुनिपना का ग्रहण है ।

प्रश्न २८३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति भी मुनिपना है और सकलचारित्ररूप वीतराग भाव भी मुनिपना है—इस प्रकार निश्चय-व्यवहार दोनो मुनिपनो का ग्रहण करना चाहिए । क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल गलत है । क्योकि उन महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा निश्चय-व्यवहार दोनो मुनिपनो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "२८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति भी मुनिपना है और सकलचारित्ररूप वीतराग भाव भी मुनिपना है"—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नही कहा है ।

प्रश्न २८४—२८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपना असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिए दिया ? सकलचारित्ररूप वीतराग भाव ही मुनिपना है—एकमात्र ऐसे निश्चय मुनिपने का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है । वहाँ उत्तर दिया है कि—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के बिना, सकलचारित्र रूप वीतराग भावरूप निश्चय मुनिपने का उपदेश अशक्य है । इसलिए २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने का उपदेश है । इस प्रकार सकलचारित्र वीतराग भावरूप निश्चय मुनिपने का ज्ञान कराने के लिए २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप

व्यवहार मुनिपने का उपदेश देते हैं। व्यवहार मुनिपना है, उसका विषय भी है परन्तु २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २८५—२८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के बिना सकलचारित्र वीतरागभाव रूप निश्चय मुनिपने का उपदेश कैसे नहीं होता ?

उत्तर—निश्चय से सकलचारित्ररूप वीतरागभाव ही मुनिपना है। उसे जो नही पहिचानते, उनको ऐसे ही कहते रहे, तो वे समझ नही पाये। तब उनको सकलचारित्ररूप वीतराग भाव प्रगट हुआ—यह तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के धर्म विरोधी कार्य मिटने की अपेक्षा द्वारा व्यवहारनय से २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को सकलचारित्ररूप वीतराग भाव के विशेष बतलाये। तब उन्हे निश्चय वीतराग मुनिपने की पहचान हुई। इस प्रकार २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के बिना सकलचारित्र वीतरागभावरूप निश्चय मुनिपने के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २८६—२८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के धर्म विरोधी कार्य मिटने की अपेक्षा द्वारा २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा, सो इन्ही को मुनिपना नही मान लेना। (२) क्योकि २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया का ग्रहण-त्याग यदि आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नही है। (३) इसलिए आत्मा अपने भाव जो २८ मूलगुणादि की प्रवृत्तिरूप रागादि हैं, उन्हे छोडकर सकलचारित्र वीतराग भावरूप होता है। इसलिए निश्चय से सकलचारित्ररूप वीतराग भावरूप होता है। इसलिए निश्चय से सकलचारित्ररूप वीतराग भाव

ही मुनिपना है। (४) सकलचारित्ररूप वीतराग भावो के और २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति के साधक जीव के सविकल्प दशा मे कार्य-कारणपना है। इसलिए २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा —सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से २८ मूलगुणादि रूप बाह्य क्रिया मुनिपना नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति (व्यवहार मुनिपना) अगीकार करने योग्य नही है—ऐसा जानना।

प्रश्न २८७—२८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति अर्थात् व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मानता है उसे जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे पुरुषार्थसिद्धियुपाय श्लोक ६ मे कहा है कि 'तस्य देशना नास्ति।' (२) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे समयसार कलश ५५ मे कहा है कि 'यह उसका अज्ञान मोह अधकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।' (३) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मुनिपना मान लेता है उसे प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि, 'वह पद-पद पर धोखा खाता है।' (४) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने के कथन को ही जो सच्चा मुनिपना मान लेता है उसे आत्मावलोकन मे कहा है कि 'यह उसका हरामजादीपना है।'

प्रश्न—२८८—'चार हाथ जमीन देखकर चलने का भाव ईर्या-समिति है'—इस वाक्य मे निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २८९—'देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है' इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २९०—'निश्चय सम्यग्ज्ञान'--इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न—२९१—'निश्चय-व्यवहारचारित्र' में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २९१—'निश्चय-व्यवहार वचनगुप्ति' में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २९३—'निश्चय-व्यवहार उत्तमक्षमा' में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २९४—'निश्चय-व्यवहार क्षुधापरिषहजय' में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २९५—'ज्ञानावरणीय कर्म के अभाव से केवल ज्ञान होता है'—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २९६—'दर्शनमोहनीय के अभाव से क्षायिक सम्यक्त्व होता है'—इस वाक्य में निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—प्रश्न २७८ से २८७ तक के अनुसार उत्तर दो।

(१६) व्यवहारनय कार्यकारी कब और कब नहीं का स्पष्टीकरण

प्रश्न २९७—व्यवहारनय अकार्यकारी कब और कैसे है ?

उत्तर—(अ) मनुष्य जीव कहने पर जीव को तो न समझे और मनुष्य शरीर को ही जीव मान ले—तो मिथ्या श्रद्धा दृढ हो जावेगी।

(आ) व्रतादि को उपचार से मोक्षमार्ग कहा, वहाँ राग को ही मोक्षमार्ग मान ले और वीतराग भाव को ना पहिचाने तो मिथ्या श्रद्धा दृढ हो जावेगी। (इ) गुण-गुणी के भेद से समझाया तो भेद मे ही रुक जावे, अभेद का लक्ष्य न करे, तो मिथ्या श्रद्धा दृढ हो जावेगी। इस प्रकार जाने-माने तो व्यवहारनय अनर्थकारी हो जावेगा।

प्रश्न २९८—व्यवहारनय कार्यकारी कब और कैसे कहा जा सकता है?

उत्तर—(अ) मनुष्य जीव कहते ही देह से भिन्न मैं ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा हूँ ऐसा लक्ष्य करे, (आ) आत्मा ज्ञानवाला, दर्शनवाला ऐसा सुनकर भेद का लक्ष्य छोडकर अभेद आत्मा पर दृष्टि दे। (इ) देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है—यह सुनकर यह सम्यग्दर्शन नही है, श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी वह सम्यक्दर्शन है। इस प्रकार जाने माने तो व्यवहारनय कार्यकारी कहा जा सकता है।

प्रश्न २९९—निचली दशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी कब कहा जा सकता है?

उत्तर—व्यवहार का आश्रय बधरूप होने से हेय है। ऐसा जानकर अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति-वृद्धि करे तो व्यवहारनय कार्यकारी है ऐसा बोलने मे आता है।

प्रश्न ३००—मुनिराज कैसे अज्ञानी को व्यवहारनय का, जो कि असत्यार्थ है, उपदेश देते हैं?

उत्तर—(१) अज्ञानी कहते ही—ज्ञानी नही है, झगडा करने वाला नही है, (२) परन्तु जैसा मुनिराज कहते है, वैसा ही चौबीस घण्टे विचार-मथन करता है, (३) वास्तव मे सच्चा निश्चय मोक्षमार्ग है और व्यवहारनय मोक्षमार्ग नही है, किन्तु उपचार का कथन है—ऐसा बराबर जानकर केवल किसी एक की ही सत्ता मानकर स्वच्छन्द नही होता है, किन्तु उनके स्वरूप अनुसार यथायोग्य दोनो की सत्ता

को मानता है, ऐसे अज्ञानी को समझाने के लिए व्यवहारनय का, जो कि असत्यार्थ है, उपदेश देते हैं।

प्रश्न ३०१—मुनिराज कैसे अज्ञानी को व्यवहारनय का, जो कि असत्यार्थ है, उपदेश देते हैं, जरा स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—(१) कार्य तो निश्चयकारण उपादान से ही मानता है और व्यवहार उपचार कारण निमित्त को भी मानता है। (२) त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति-वृद्धि और पूर्णता होती है, पर के, विकार के आश्रय से नही होता है। (३) जीव-पुद्गल का ठहरना, चलना, अवगाहन और परिणमन कार्य तो स्वतत्र उपादान के गुणो की पर्यायो की योग्यता से मानता है और अधर्म-धर्म-आकाश और काल को उपचार कारण मानता है। (४) ज्ञान जानता तो स्वकाल की योग्यता मे है और ज्ञेय तो उपचार मात्र निमित्त कारण है। (५) अज्ञान दशा मे राग का कर्त्ता तो अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा को मानता है और द्रव्यकर्म को उपचार निमित्तकारण मानता है। इस प्रकार जो मानता है ऐसे अज्ञानी को मुनिराज ज्ञानी वनाने के लिये व्यवहारनय का उपदेश देते हैं।

प्रश्न ३०२—मुनिराज कैसे अज्ञानी को उपदेश देने के योग्य नहीं समझते ?

उत्तर—(१) जो निश्चय को तो बिल्कुल जानता ही नही है और ज्ञानियो की वात सुनते ही झगडा करने को तैयार रहता है। (२) सर्वथा एकान्त कथन को ही सच्चा मानता है। (३) ऐसे सर्वथा निश्चय पक्ष वालो को और (४) सर्वथा व्यवहार पक्ष वालो को मुनिराज उपदेश देने के योग्य नही समझते है।

प्रश्न ३०३—मुनिराज कैसे अज्ञानी को उपदेश देने के योग्य नहीं समझते—जरा स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—(१) समयसार मे भूतार्थ वस्तु को पकडाने के लिए चार प्रकार का भेदरूप अभूतार्थ वस्तु का निरूपण किया है, परन्तु जो

अभूतार्थ वस्तु को ही भूतार्थ मान लेता है। (२) मोक्षशास्त्र मे 'गतिस्थित्युप-ग्रहौधर्माधर्मयो-रूपकारः' आया है—वहाँ मात्र इतना ही वताना है कि जब जीव-पुदगल स्वय अपनी योग्यता से चलते है तो धर्मद्रव्य निमित्त होता है और जब स्वय अपनी योग्यता से ठहरते है तो अधर्म द्रव्य निमित्त होता है परन्तु जो व्यवहार कारण को ही निश्चय कारण मानकर धर्मद्रव्य जीव-पुद्गल को चलाता है और अधर्मद्रव्य जीव-पुद्गल को ठहराता है। (३) मोक्षशास्त्र मे "सुख-दुख जीवित मरणोपग्रहाश्च" तथा "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" सूत्र आये है यह सब निमित्तमात्र का कथन है किन्तु जो निमित्त के कथनो को ही सच्चा मान लेता है। (४) प्रवचनसार मे आया है कि ज्ञेय अपना स्वरूप ज्ञान को सौप देते है, ज्ञान उन्हे पकड लेता है यह सब उपचार कथन है परन्तु इसे ही सच्चा मान लेता है। (५) जीव ने कर्मो को बाँधा आदि करणानुयोग का कथन निमित्त की अपेक्षा किया है परन्तु जो उस कथन को ही सच्चा मान लेता है—वह शिष्य उपदेश के योग्य नही है। इसलिए मुनिराज ऐसे शिष्य को उपदेश के योग्य नही समझते है।

प्रश्न ३०४—किस-किस मान्यता वाले जीव जिनवाणी सुनने के और गुरू की देशना के लायक नहीं हैं—जरा सीधे-साधे शब्दो मे बताओ ?

उत्तर—(१) परमार्थ का ज्ञान कराने के लिए व्यवहार का कथन है उसके बदले व्यवहार के अवलम्बन से ही लाभ मान ले, (२) वचन गुप्ति रखना चाहिए ऐसा गुरु ने कहा, उसके बदले कहे, तुम क्यो बोलते हो, (३) प्रथम व्यवहार हो तो लाभ हो, (४) व्यवहार करते-करते निश्चय प्रगट हो जावेगा, (५) भेद को अभेद मान ले, (६) देव-गुरुशास्त्र के श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन मान ले, (७) बारह अणुव्रतादि को ही श्रावकपना मान ले, (८) २८ मूलगुणादि को ही मुनिपना मान ले, (९) निमित्त से ही उपादान मे कार्य होता है, (१०) मात्र त्रिकाली

स्वभाव को माने, पर्याय को न माने, (११) मात्र पर्याय को माने, त्रिकाली स्वभाव को न माने, (१२) शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, यह हमारा कार्य है, (१३) आस्रव-बध को सवर निर्जरा मान ले, (१४) जीव को अजीव मान ले, (१५) अजीव को जीव मान ले। वे जीव जिनवाणी सुनने के और गुरू की देशना के भी लायक नही हैं।

प्रश्न ३०५—जो व्यवहार के कथन को ही सच्चा मानते हैं, उन्हें जिनवाणी में किन-किन नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—(१) पुरुपार्थ सिद्धियुपाय मे कहा है कि 'तस्य देशना नास्ति।' (२) समयसारनाटक मे कहा है 'मूर्ख।' (३) आत्मावलोकन मे कहा है 'यह उसका हरामजादीपना है।' (४) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि 'यह उनका अज्ञानमोह अधकार है उसका सुलटना दुर्निवार है।' (५) प्रवचनसार मे कहा है कि वह पद-पद पर धोखा खाता है। (६) मोक्षमार्गप्रकाशक मे कहा है कि उसके सब धर्म के अग मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते हैं तथा मिथ्यादृष्टि कहा है। (७) समयसार गाथा ११ के भावार्थ मे कहा है कि उसका फल ससार है। (८) मोक्षमार्गप्रकाशक नौवे अधिकार मे कहा कि यह अनीति है। तातपर्य यह है कि चारो अनुयोगो मे व्यवहार के कथन को सच्चा कथन माननने वालो को चारो गतियो मे घूमकर निगोद मे जाने वाला वतलाया है। क्योकि व्यवहार-निश्चय का प्रतिपादक है उसके वदले सच्चा मान लेता है। वह सम्यक्त्व से रहित पुरुषो का व्यवहार है।

प्रश्न ३०६—(१) कोई निर्विचारी पुरुष कहे कि—तुम व्यवहार को असत्यार्थ-हेय कहते हो। (२) तो हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहार किस लिए करें ? हम व्रत, शील, सयमादि को छोड़ देंगे ?

उत्तर—(१) व्रत, शील सयमादि का नाम व्यवहार नही है। यह तो शुभ-भाव रूप प्रवृत्ति है और प्रवृत्ति मे व्यवहार का प्रयोजन ही नही है। परन्तु जिनको अपने स्वभाव के आश्रय से एक देश शुद्ध दशा प्रगट हुई है उस व्रत, शील, सयमादि मे मोक्षमार्ग का उपचार

करना—यह व्यवहार है। परन्तु व्रत, शील, सयमादि मोक्षमार्ग है—यह मान्यता छोड़ दे। व्रत, शील, सयमादि मोक्षमार्ग नही है ऐसा श्रद्धान कर। इनको तो वाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है, यह तो परद्रव्याश्रित है; तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतराग भाव है, वह स्वद्रव्याश्रित है। इस प्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना। (२) व्रतादिक छोडने से तो व्यवहार का हेयपना नही होता है। पडित पूछते है—व्रतादि छोड़कर क्या करेगा ? यदि हिसादि रूप प्रवर्तेगा तो वहाँ मोक्षमार्ग का उपचार भी सम्भव नही है, अशुभ मे प्रवर्तने से क्या भला होगा ? नरकादि प्राप्त करेगा। इसलिए शुभ-भावो को छोड़कर अशुभ मे प्रवर्तन करना निर्विचारीपना है। व्रतादि रूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो अच्छा ही है, वह निचली दशा मे हो नही सकता, इसलिए व्रतादि साधन छोडकर स्वच्छन्द होना योग्य नही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५३]

प्रश्न ३०७—व्यवहार को (व्रत, शील संयमादि को) असत्यार्थ हेय जनना—इस वात को शास्त्रो मे कहीं और भी कहा है ?

उत्तर—(१) मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२६ मे कहा है कि अहिंसा-व्रत् सत्यादिक तो पुण्यवध के कारण है और हिंसावत् असत्यादिक पाप वध के कारण है। ये सर्व मिथ्या अध्यवसाय हैं और त्याज्य हैं। इसलिए हिंसादिवत् अहिसादिक को भी वन्ध का कारण जानकर हेय ही मानना। (२) मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५० मे कहा है कि क्योकि सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि मे अध्यवसाय है सो समस्त ही छोडना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है।

प्रश्न ३०८—व्रतादिकरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो अच्छा ही है, वह निचली दशा मे हो नहीं सकता। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५४] इसका अर्थ स्पष्ट करो ?

उत्तर—मात्र वीतरागता तो १२वें गुणस्थान मे है। व्रतादि रूप परिणति को मिटाकर १२वा गुणस्थान होना बने तो अच्छा है। वह निचली दशा मे (४-५-६ गुणस्थान तथा अबुद्धिपूर्वक राग १०वे तक) हो नही सकता।

प्रश्न ३०९—उदासीन भाव का क्या अर्थ है ?

उत्तर—वीतराग भाव रूप शुद्ध दशा का नाम उदासीन भाव है।

(अ) उदासीन होकर निश्चल वृत्ति को धारण करते हैं।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३]

(आ) सच्ची उदासीनता के अर्थ यथार्थ अनित्यत्वादिक का चिन्तन करना ही सच्ची अनुप्रेक्षा है, सकल कषाय रहित जो उदासीन भाव है उसी का नाम चारित्र है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२९]

(इ) सच्ची उदासीनता तो उसका नाम है कि किसी द्रव्य का दोष या गुण भासित न हो स्व को स्व जाने, पर को पर जाने; पर मे कुछ भी मेरा प्रयोजन नही है ऐसा मानकर सक्षीभूत रहे। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानी के ही होती है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४४]

(ई) उदासीनता का अर्थ ज्ञाता-दृष्टामात्र, ज्ञान, भवनमात्र, सहज उदासीन कहा है।

[समयसार कर्त्ता कर्म अधिकार]

प्रश्न ३१०—शास्त्रो मे जहाँ शुभभाव का निषेध किया हो और जहाँ शुभभाव को अच्छा कहा हो, वहाँ क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—(१) जहाँ शास्त्र मे शुभभाव का निषेध किया हो वहाँ शुद्ध मे जाने के लिए जानना चाहिए। जहाँ शुभभाव को अच्छा कहा हो वह अशुभ की अपेक्षा जानना तथा दोनो ही बध के कारण और दु ख रूप है ऐसा जानना चाहिए। (२) आत्मानुभवनादि मे लगाने

को व्रत-शील-सयमादि का हीनपना प्रगट करते है। वहाँ ऐसा नही जान लेना कि इनको छोड़कर पाप मे लगना, क्योंकि उस उपदेश का प्रयोजन अशुभ मे लगाने का नही है। शुद्धपयोग मे लगाने को शुभोपयोग का निषेध करते है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २९४]

(२) "पुण्य पाप का श्रद्धान होने पर पुण्य को मोक्षमार्ग न माने या स्वच्छन्दी होकर पापरूप न प्रवर्ते।"

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३१९]

(३) किसी शुभ क्रिया की जहाँ निन्दा की हो, वहाँ तो उससे ऊँची शुभ क्रिया या शुद्धभाव की अपेक्षा जानना और जहाँ प्रशसा की हो वहाँ उससे नीची क्रिया व अशुभ क्रिया की अपेक्षा जानना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २९६]

(४) व्यवहार धर्म की प्रवृत्ति से पुण्य बध होता है; इसलिए पाप-प्रवृत्ति की अपेक्षा तो इसका निषेध है नही, परन्तु जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति से ही सन्तुष्ट होकर सच्चे मोक्षमार्ग के उद्यमी नही होते है उन्हे मोक्षमार्ग मे सन्मुख करने के लिए उस शुभरूप मिथ्या प्रवृत्ति का भी निषेध करते है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २१३]

(५) जैसे—रोग तो थोडा या बहुत, बुरा ही है परन्तु बहुत रोग की अपेक्षा थोडे रोग को भला ही कहते है। इसलिए शुद्धोपयोग न हो, तब अशुभ से छुटकर शुभ मे प्रवर्तन योग्य है, शुभ को छोडकर अशुभ मे प्रवर्तन योग्य नही है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २०५]

(१७) मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५४ से २५७ तक का स्पष्टीकरण

प्रश्न ३११—उभयाभासी निश्चय-व्यवहार किसे मानता है ?

उत्तर—वर्तमान पर्याय मे तो आत्मा सिद्धसमान-केवलज्ञानादि सहित, द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से रहित है और वर्तमान पर्याय मे

ही व्यवहारनय से ससारी मतिज्ञानादि सहित तथा द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म सहित है—ऐसा मानता है।

प्रश्न ३१२—क्या उभयाभासी का ऐसा निश्चय-व्यवहार मानना ठीक है ?

उत्तर—ठीक नही है, क्योकि एक आत्मा के एक ही समय मे ऐसे दो स्वरूप वर्तमान पर्याय मे हो ही नही सकते है। पर्याय मे ही सिद्ध-पना और पर्याय मे ही ससारीपना, पर्याय मे ही केवलज्ञानादि और पर्याय मे ही मतिज्ञानादि एक आत्मा के एक साथ नही हो सकते हैं। जिस भाव का सहितपना उस भाव ही का रहितपना एक वस्तु मे कैसे सम्भव हो ?—इसलिए उभयाभासी का ऐसा मानना भ्रम है।

प्रश्न ३१३—उभयाभासी पूछता है कि सच्चा निश्चय-व्यवहार किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) सिद्ध और ससारी जीवत्वपने की अपेक्षा समान है। पर्याय अपेक्षा सिद्ध को पर्याय मे सिद्धपना प्रगट है और ससारी को पर्याय अपेक्षा ससार है। (२) ससारी की पर्याय मे निश्चय से मति-ज्ञानादि है और सिद्ध की पर्याय मे निश्चय से केवलज्ञानादि है। परन्तु ससारी मे केवलज्ञानादि की स्वभाव अपेक्षा शक्ति है। (३) द्रव्यकर्म-नोकर्म पुद्गल से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए निश्चय से ससारी के भी इनका भिन्नपना है, परन्तु सिद्ध की भाँति इनका कार्य-कारण अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने तो भ्रम भी है। (४) दोष अपना है, पर ने नही कराया है इसलिए भावकर्म निश्चय से आत्मा का कहा है। तथा सिद्ध की भाँति ससारी के भी रागादिक न मानना, उन्हे कर्म ही का मानना वह भी भ्रम है।

प्रश्न ३१४—द्रव्यकर्म-नोकर्म का संसारी के कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध किस प्रकार है, सो समझाइये ?

उत्तर—(अ) ससारी ने इच्छा की—हाथ उठा, इसमे हाथ उठा नैमित्तिक, जीव की इच्छा निमित्त है। (आ) जीव ने विकार किया

तो कर्म बँधा, इसमे कर्म वधा नैमित्तिक, जीव ने विकार किया निमित्त। (इ) वाई ने रोटी वनाई—इसमे रोटी वनी नैमित्तिक वाई का राग निमित्त है। इस प्रकार ससारी के द्रव्यकर्म-नोकर्म का कार्य-कारण सम्वन्ध है, परन्तु सिद्ध के साथ ऐसा कार्य-कारण सम्वन्व भी नही है—ऐसा जानना।

प्रश्न ३१५—संसारी के निश्चय से मतिज्ञानादिक ही है—इसमें मतिज्ञानादिक के लिए निश्चय क्यो लगाया है ?

उत्तर—'उभयाभासी ने कहा था कि 'पर्याय मे निश्चय से सिद्ध समान और पर्याय मे व्यवहार से मतिज्ञानादिक सहित हूँ' उसकी वात झूठ है यह वताने के लिए मतिज्ञानादिक के लिए 'निश्चय' लगाया है।

प्रश्न ३१६—'आत्मा तो जैसा है वैसा ही है'—इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—(अ) निश्चय मे आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, आत्मा मे सिद्ध और केवलज्ञानादिक की शक्ति है।(आ) पर्याय मे साधक ज्ञानियो को शुद्धि और अशुद्धिरूप मिश्र पर्याय है। (इ) मिथ्यादृष्टियो को पर्याय मे मात्र अशुद्धि ही है। (ई) सिद्ध को पर्याय मे सम्पूर्ण शुद्धता प्रगटी है। ज्ञानी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की अपेक्षा जैसा-जेसा है वैसा-वैसा मानता है, जानता है इसलिए 'आत्मा तो जैसा है वैसा ही है'—कहा है।

प्रश्न ३१७—कथन में झगड़ा क्यो पडता है ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा की अपेक्षा कथन हो, उसे ज्ञान या चारित्र की अपेक्षा समझने व मानने से झगडा पडता है। (२) जहाँ ज्ञान को अपेक्षा कथन हो उसे श्रद्धा या चारित्र की अपेक्षा समझने व मानने से झगडा पडता है। (३) जहाँ चारित्र की अपेक्षा कथन हो उसे श्रद्धा या ज्ञान की अपेक्षा समझने या मानने से झगडा पडता है। (४) जहाँ निमित्त की अपेक्षा कथन हो उसे उपादान की अपेक्षा मानने से झगडा पडता है। (५) जहाँ उपादान की अपेक्षा कथन हो,

वहाँ निमित्त की अपेक्षा मानने से झगडा पडता है। (६) जहाँ व्यवहार की अपेक्षा कथन हो, उसे निश्चय की अपेक्षा मानने से झगड़ा पडता है। (७) जहाँ निश्चय की अपेक्षा कथन हो, उसे व्यवहार की अपेक्षा समझने से झगडा पडता है। (८) हेय को उपादेय और उपादेय को हेय मानने से झगडा पडता है। इसलिये पात्र जीवों को प्रथम सब अपेक्षायें समझ लेनी चाहिए। क्योंकि यदि ऐसा न हो तो कहीं अन्य प्रयोजन सहित व्याख्यान हो, उसका अन्य प्रयोजन प्रगट करने से विपरीत प्रवृत्ति होती है। अत सम्यग्ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार के व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यान का अभिप्राय जानने पर झगडा नहीं पडता है।

प्रश्न ३१८—"इस प्रकार नयो द्वारा एक ही वस्तु को एक भाव अपेक्षा 'ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना'—वह तो मिथ्याबुद्धि ही है" इसका क्या भाव है ?

उत्तर—उभयाभासी एक ही जीव को वर्तमान पर्याय मे सिद्धपना और ससारीपना, केवलज्ञानादि और मतिज्ञानादि मानता है—यह तो मिथ्याबुद्धि ही है।

प्रश्न ३१९—"भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयो की प्ररूपणा है—ऐसा मानकर यथासम्भव वस्तु को मानना, सो सच्चा श्रद्धान है" इसका क्या भाव है ?

उत्तर—(१) निश्चयनय से त्रिकाली स्वभाव एकरूप है। (२) पर्याय मे अपने अपराध से दोष है उस दोष मे द्रव्यकर्म निमित्त है। ऐसा जानकर पर्याय को गौण करके त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की शुरूआत करके, क्रम से वृद्धि करके, केवलज्ञानादि-सिद्धदशा की प्राप्ति होती है—यह सच्चा श्रद्धान है।

प्रश्न ३२०—मिथ्यादृष्टि अनेकान्त किसे कहता है ?

उत्तर—पर्याय मे निश्चय से केवलज्ञानादि हैं और व्यवहार से मतिज्ञानादि हैं—यह मिथ्यादृष्टि का अनेकान्त है।

प्रश्न ३२१—उभयाभासी व्रत-शील संयमादि के विषय मे क्या मानता है ?

उत्तर—(१) व्रत-शील-संयमादि का अंगीकार पाया जाता है, सो व्यवहार से "यह भी मोक्ष के कारण है"—ऐसा जानकर उन्हे उपादेय मानता है। (२) शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, निर्दोष आहार ले, शरीर से जरा भी हिंसा न हो, बाहरी महाव्रतादि को, णमोकार मंत्र के जाप को, मुँह से पाठ आदि बोलने रूप जड की क्रिया और व्रत-शील-संयमादि शुभभावो को मोक्ष का साधन मानता है। (३) तथा शरीरादिक की क्रिया करो, शुभभाव करो, परन्तु उसमे ममत्व नहीं करना—ऐसी मान्यता उभयाभासी मे होती है।

प्रश्न ३२२—उभयाभासी कहता है कि "यथायोग्य व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है परन्तु उसमे ममत्व नहीं करना।" इस विषय मे पंडित जी ने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—(१) सो जिसका आप कर्त्ता हो, उसमे ममत्व कैसे नही किया जाय ? (२) आप कर्त्ता नही है तो "मुझको करने योग्य है"—ऐसा भाव कैसे किया ? (३) और यदि कर्त्ता है तो वह अपना कर्म हुआ तब कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ—सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है। (४) अभिप्राय से कर्त्ता होकर करे और ज्ञाता रहे—यह तो बनता नही है।

प्रश्न ३२३—शरीरादिक जड़ क्रियाओ के विषय में जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो का क्या आदेश है ?

उत्तर—रोटी छोडने-खाने की क्रिया, शरीर के उठने-बैठने की क्रिया, पद्मासन-खड्गासन की क्रिया-अनशनादि की क्रिया, स्तुति-मंत्र पाठ-पूजा बोलने आदि की क्रिया, शरीर-मन-वाणी की क्रिया और आठ कर्मों की १४८ प्रवृत्तियाँ है वे तो शरीरादि परद्रव्य के आश्रित है, परद्रव्य का आप कर्त्ता है नही, इसलिये उसमे (शरीरादि की क्रिया मे) कर्तृत्व बुद्धि (कर्तापने का ज्ञान) भी नही करना और उसमे ममत्व

भी नही करना—यह जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो का आदेश हैं।

प्रश्न ३२४—अशुद्धोपयोग (विकारी भाव) शुद्ध पर्याय (अविकारी भाव) के विषय मे जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो का क्या आदेश है ?

उत्तर—(१) अशुद्धोपयोग (विकारी भाव) का त्याग और शुद्धोपयोग (अविकारी भाव) का ग्रहण करना अपना शुभोपयोग है, वह अपने आश्रित है, उसका आप कर्त्ता है, इसलिए शुभभावो मे कर्तृत्व बुद्धि भी मानना और ममत्व भी करना दोष का ज्ञान कराने की अपेक्षा कर्तृत्व बुद्धि कहा है, कर्त्तव्य नही कहा है। (२) परन्तु इस शुभोपयोग को वध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नही जानना, क्योकि वध और मोक्ष के तो प्रतिपक्षीपना है, इसलिए दोपरूप एक ही भाव पुण्य वध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो—ऐसा मानना भ्रम है। (३) इसलिये व्रत-अव्रत दोनो विकल्परहित जहाँ पर द्रव्य के ग्रहण त्याग का कुछ भी प्रयोजन नही है—ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग वही मोक्षमार्ग है—ऐसा जिन-जिनवर और जिनवर-वृपभो का आदेश है। [ऐसा ही समयसार कलश २३६ मे आया है, समाधितत्र गा० ४७, त्याग-उपादान की १६वी शक्ति, मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५८ देखो]

प्रश्न ३२५—व्रत-शील-सयमादिक शुभभावो को और शरीर की क्रियाओ को मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण कौन मानते हैं और उस का फल क्या है ?

उत्तर—अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानते है और जिसका फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद है।

प्रश्न ३२६—व्रत-शील-सयमादि शुभभाव ससार का कारण है, मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण नहीं है क्या ऐसा कहीं मोक्षमार्ग-प्रकाशक में आया है ?

उत्तर—(१) व्रतादिरूप शुभोपयोग ही से देवगति का वध मानते हैं

आर उसी को मोक्षमार्ग मानते है, सो बधमार्ग-मोक्षमार्ग को एक किया, परन्तु यह मिथ्या है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १५८]

(२) स्वर्गसुख का कारण प्रशस्तराग है और मोक्षसुख का कारण वीतराग भाव है, परन्तु ऐसा भाव इसे (मिथ्यादृष्टि को) भासित नही होता, इसलिए मोक्ष का भी इसको सच्चा श्रद्धान नही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २३४]

(३) मिथ्यादृष्टि सरागभाव मे सवर के भ्रम से प्रशस्तरागरूप कार्यों को उपादेयरूप श्रद्धा करता है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२८]

(४) शुभ-अशुभ भावो मे घातिकर्मों का तो निरन्तर वध होता है, वे सर्व पापरूप ही है और वही आत्मगुण के घातक हैं। इसलिये अशुद्धभावो से कर्मवन्ध होता है, उसमे भला-बुरा जानना वही मिथ्या श्रद्धान है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२७]

(५) शुभयोग हो या अशुभ योग हो, सम्यक्त्व प्राप्त किये विना घातिकर्मो की तो सर्व-प्रकृतियो का निरन्तर वन्ध होता ही रहता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २२७]

(६) द्रव्यलिंगी के योगो की प्रवृत्ति शुभरूप बहुत होती है और अघातिकर्मों मे पुण्य-पाप वन्ध का विशेप शुभ-अशुभ योगो के अनुसार है, इसलिये वह अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पहुँचता है परन्तु वह कुछ कार्यकारी नही है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४७]

(७) द्रव्यलिंगी के शुभोपयोग तो (प्रथम गुणस्थान के योग्य) उत्कृष्ट होता है, शुद्धोपयोग होता ही नही; इसलिए परमार्थ से इनके कारण-कार्यपना नही है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

(८) कितने ही जीव अणुव्रत-महाव्रतादिरूप यथार्थ आचरण करते है और आचरण के अनुसार ही परिणाम है, कोई माया शोभादिक का अभिप्राय नही है, उन्हे धर्म जानकर मोक्ष के अर्थ उनका साधन करते हैं, किन्ही स्वर्गादिक के भोगो की भी इच्छा नही रखते, परन्तु तत्वज्ञान पहले नही हुआ है, इसलिए आप तो जानते हैं कि मै मोक्ष

का साधन कर रहा हूँ, परन्तु जो मोक्ष का साधन है उसे जानते भी नही, केवल स्वर्गादिक का साधन करते है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४१]

(९) बाह्य मे तो अणुव्रत-महाव्रतादि साधते है परन्तु अन्तरग परिणाम नही है और स्वर्गादिक की वाछा से साधते है—सो इस प्रकार साधने से पाप बन्ध होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४२]

(१०) इन्द्रिय जनित सुख की इच्छा के प्रयोजन हेतु अरहतादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पाप बन्ध ही होता है—इसलिए पात्र जीवो को इस प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नही है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ८]

इस प्रकार ही चारो अनुयोगो ने बताया है। शुभभाव किसी का भी हो, वह बध का ही कारण है मोक्ष का कारण या मोक्षमार्ग नही है—ऐसा निश्चय करना।

प्रश्न ३२७—जब शुभभाव किसी के भी हो वह मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण नहीं है तो कहीं-कहीं शास्त्रो में उन्हे मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण क्यो कहा है ?

उत्तर—(१) वास्तव मे किसी भी शास्त्र मे शुभभावो को मोक्ष-मार्ग और मोक्ष का कारण नही कहा है ओर जहाँ कही कहा है उपचार मात्र व्यवहार कारण कहा है ऐसा जानना।

(२) निचली दशा मे कितने ही जीवो के शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है, इसलिए उपचार से व्रतादिक शुद्धोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है, वस्तु का विचार करने पर शुभो-पयोग मोक्ष का घातक ही है, क्योकि बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है—ऐसा श्रद्धान करना। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

(३) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारण-

पना है इसलिए व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है, परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५३]

(४) व्रत-तपादि मोक्षमार्ग है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं—इसलिए इन्हे व्यवहार कहा।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५०]

प्रश्न ३२८—शुद्ध-अशुद्ध भावों मे हेय-उपादेय के विषय मे जिनाज्ञा क्या है ?

उत्तर—(१) शुद्धोपयोग ही को प्रगट करने योग्य उपादेय मानकर उसका उपाय करना, (२) शुभोपयोग-अशुभपयोग को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना, (३) जहाँ शुद्धोपयोग न हो सके, वहाँ अशुभोपयोग को छोडकर शुभ मे ही प्रवर्तन करना क्योकि शुभोपयोग की अपेक्षा अशुभोपयोग मे अशुद्धता की अधिकता है, (४) शुद्धोपयोग हो तब तो परद्रव्य का साक्षीभूत ही रहता है, वहाँ कुछ परद्रव्य का प्रयोजन ही नही है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५५]

प्रश्न ३२९—अशुद्धोपयोग मे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध किस प्रकार है और इसका ज्ञान किसको होता है ?

उत्तर—शुभोपयोग नैमित्तिक और बाह्य व्रतादि की प्रवृत्ति निमित्त है। अशुभोपयोग नैमित्तिक और बाह्य अव्रतादिक की प्रवृत्ति निमित्त है। इसका ज्ञान मात्र ज्ञानियो को ही होता है।

प्रश्न ३३०—"पहले अशुभोपयोग छूटकर शुभोपयोग हो फिर शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग हो—ऐसी क्रम परिपाटी" यह बात किसको लागू पड़ती है ?

उत्तर—४-५-६ गुणस्थान की अपेक्षा यह कथन है। ज्ञानी सीधा अशुभ मे से शुद्ध मे नही आता है। पहले अशुभ को छोडकर शुभोपयोग होता है और शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग होता है। इसलिए ऐसी क्रम परिपाटी ज्ञानी ही को लागू पडती है।

प्रश्न ३३१—उभयाभासी कहता है कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोग का कारण है" क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर—ठीक नही है, जैसे—अशुभभाव कारण व शुभभाव कार्य और शुभभाव कारण व शुद्धभाव कार्य ऐसा बनता नही है। यदि ऐसा हो तो शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरे और द्रव्यलिगी के शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होता है, शुद्धोपयोग होता ही नही, इसलिए परमार्थ से इनके कारण—कार्यपना नही है।

प्रश्न ३३२—मिथ्यादृष्टि क्या करे तो शुद्धोपयोग की प्राप्ति हो और क्या करे तो परम्परा निगोद की प्राप्ति हो ?

उत्तर—जैसे— रोगी को बहुत रोग था, पश्चात् अल्प रोग रहा, तो वह अल्प रोग तो निरोग होने का कारण नही है। इतना है कि—अल्प रोग रहने पर निरोग होने का उपाय करे तो हो जाये, परन्तु यदि अल्प रोग को ही भला जानकर उसको रखने का यत्न करे तो निरोग कैसे हो, कभी ना होवे, उसी प्रकार कषायी के (मिथ्यादृष्टि के) तीव्र कषायरूप अशुभोपयोग था, पश्चात् मिथ्यादृष्टि के मन्द-कषायरूप शुभोपयोग हुआ परन्तु मिथ्यादृष्टि का वह शुभोपयोग तो निःकषाय शुद्धोपयोग होने का कारण है नही; इतना है कि तत्त्व के अभ्यासरूप शुभोपयोग होने पर शुद्धोपयोग होने का यत्न करे तो हो जाये। परन्तु यदि शुभोपयोग को ही भला जानकर उसका साधन किया करे तो शुद्धोपयोग कैसे हो ? चारो गतियो मे घूमकर परम्परा निगोद की प्राप्ति हो।

प्रश्न ३३३—शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—सम्यक्दृष्टि को शुभोपयोग होने पर निकट शुद्धोपयोग की प्राप्ति होती है—ऐसी ज्ञान की मुख्यता से चरणानुयोग मे शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहते हैं। परन्तु मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण है ही नही—ऐसा जानना।

प्रश्न ३३४—सम्यग्दृष्टि के शुभोपयोग पर परम्परा मोक्ष के कारण का आरोप क्यो आता है और मिथ्यादृष्टि के शुभोपयोग पर मोक्ष का आरोप क्यो नहीं आता है ?

उत्तर— (१) शुभोपयोगरूप व्यवहार व्रत शुद्धोपयोग का हेतू है और शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतू है ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहार व्रत को मोक्ष का परम्परा हेतू कहा है। वास्तव मे तो शुभोपयोगी मुनि को मुनि योग्य शुद्ध परिणति ही (शुद्धात्य द्रव्य का अवलम्बन करती है इसलिए) विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतू होती है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतू होता है। इस प्रकार इस शुद्ध परिणति मे से हुये मोक्ष के परम्परा हेतूपने का आरोप उसके साथ रहने वाले शुभोपयोग मे करके व्यवहार व्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है।

(२) मिथ्यादृष्टि के जहाँ शुद्ध परिणति ही न हो वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग मे मोक्ष के परम्परा हेतूपने का आरोप भी नही किया जा सकता, क्योकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्परा हेतु प्रगट ही नही हुआ है—विद्यमान ही नही है वहाँ शुभोपयोग मे आरोप किसका किया जावे ? मिथ्यादृष्टि के शुभभावो पर तो कभी मोक्ष का आरोप आता ही नही, परन्तु सम्यग्दृष्टि नियम से शुभभाव का अभाव करके शुद्ध दशा मे आ ही जाता है—इसलिए सम्यग्दृष्टि के शुभभावो पर परम्परा मोक्ष का आरोप आता है, मिथ्यादृष्टि के शुभभावो पर परम्परा मोक्ष का आरोप नही आता है—ऐसा जानना।

प्रश्न ३३५—प्रवचनसार मे शुद्धता और शुभभाव की मैत्री क्यों कही है ?

उत्तर—राग तो शुद्धता का शत्रु है परन्तु चरणानुयोग के शास्त्रो मे ऐसा कथन करने की पद्धति है और व्यवहारनय का कथन है।

प्रश्न ३३६—उभयाभासी अपने को निश्चय रत्नत्रय हुआ कैसे मानता है ?

उत्तर—वर्तमान पर्याय मे सिद्ध समान शुद्ध हूँ, केवलज्ञानादि सहित हूँ इत्यादि प्रकार से आत्मा को शुद्ध माना, सो तो सम्यग्दर्शन हुआ इत्यादि प्रकार से आत्मा को वैसा ही जाना सो सम्यग्ज्ञान हुआ इत्यादि प्रकार से आत्मा के वैसे ही विचार मे प्रवर्तन किया सो सम्यक्चारित्र हुआ—इस प्रकार अपने को निश्चय रत्नत्रय हुआ मानता है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५६]

प्रश्न ३३७—क्या उभयाभासी का इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय मानना ठीक है ?

उत्तर—मैं वर्तमान पर्याय मे प्रत्यक्ष अशुद्ध, सो शुद्ध कैसे मानता-जानता-विचारता हूँ इत्यादि विवेक रहित भ्रम से सन्तुष्ट होता है। सो उसका इस प्रकार निश्चय रत्नत्रय मानना ठीक नही है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५६]

प्रश्न ३३८—उभयाभासी अपने को व्यवहार रत्नत्रय हुआ किस प्रकार मानता है ?

उत्तर—अरहतादिक के सिवाय अन्य देवादिक को नही मानता, व जैन शास्त्रानुसार जीवादिक के भेद सीख लिए हैं, उन्ही को मानता है, औरो को नही मानता है—वह तो सम्यग्दर्शन हुआ, जैन शास्त्रो के अभ्यास मे बहुत प्रवर्तता है—सो सम्यग्ज्ञान हुआ और व्रतादि क्रियाओ मे प्रवर्तता है—सो सम्यक्चारित्र हुआ। इस प्रकार अपने को व्यवहार रत्नत्रय हुआ मानता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५७]

प्रश्न ३३९—क्या उभयाभासी का इस प्रकार व्यवहार रत्नत्रय मानना ठीक नहीं है ?

उत्तर—ठीक नही है, क्योकि व्यवहार तो उपचार का नाम है। सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय के कारणादि हो। सो उभयाभासी को निश्चय रत्नत्रय प्रगटा नही है इसलिए उसको व्यवहार रत्नत्रय की मान्यता भी खोटी है।

प्रश्न ३४०—उभयाभासी का निश्चय-व्यवहार सब झूठा क्यों बताया है ?

उत्तर—पहले तो मिथ्यादृष्टि का अध्यात्म शास्त्र मे प्रवेश ही नही है और यदि वह प्रवेश करता है तो विपरीत समझा है—जैसे—(१) निश्चयाभासी व्यवहार को छोडकर भ्रष्ट होता है अर्थात् अशुभ-भावो मे प्रवर्तता है। (२) व्यवहारभासी निश्चय को भली-भाँति जाने बिना व्यवहार मे ही मोक्ष मानता है, परमार्थ तत्त्व मे मूढ रहता है। (३) उसी प्रकार उभयाभासी निश्चयाभास को जानता-मानता है परन्तु व्यवहार साधन को भी उपादेय मानता है, इसलिए उभयाभासी स्वच्छन्द होकर अशुभरूप नही प्रवर्तता है। मिथ्यादर्शन पूर्वक व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्तता है। इसलिए अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पद को प्राप्त करता है परन्तु ससार परिभ्रमण नही मिटता है। (४) यदि कोई विरला जीव यथार्थ स्याद्वाद न्याय से सत्यार्थ को समझ ले तो उसे अवश्य ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।

[समयसार कलश १३७ का भावार्थ]

प्रश्न ३४१—'व्यवहार तो उपचार का नाम है ? सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय के कारणादिक हों'—इसका रहस्य क्या है ? [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५७]

उत्तर—(१) निज शुद्ध आत्मा मे एकतारूप ध्यान करने से निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग प्रगट होता है ऐसा नियम है। [अ] चौथा गुणस्थान प्रथम निर्विकल्प ध्यान मे प्रगट होता है। उस ध्यान से हटकर सविकल्प दशा मे सच्चे देवादिक के प्रति अस्थिरता का राग होता है। [आ] पाँचवा गुणस्थान भी निर्विकल्प दशा मे प्राप्त होता है और सविकल्प दशा मे भूमिका के योग्य अणुव्रतादि का आचरण होता है। [इ] मुनि अवस्था मे निर्विकल्प दशा सातवें गुणस्थान मे प्रगट होती है। छठे गुणस्थान मे अट्ठाईस मूलगुण रूप व्यवहार मोक्षमार्ग होता है। इसलिये ज्ञानियो को ही व्यवहार होता है, अज्ञानियो को

नही होता है। (२) जैसे—"कनस्तर मे तेल भरा हो तो तेल का कनस्तर कहा जाता है। परन्तु कनस्तर मे मिट्टी भरी हो तो तेल का कनस्तर नही कहा जाता है, उसी प्रकार जिसको निश्चय प्रगटा हो उसी के भूमिकानुसार राग को मोक्षमार्ग का उपचार आता है परन्तु जिसमे (मिथ्यादृष्टियो मैं) मोह, राग, द्वेष भरा हो--उन पर मोक्षमार्ग का आरोप कैसे आ सकता है, कभी भी नही आ सकता है। इसलिए व्यवहार तो उपचार का नाम है। सो उपचार भी तो तब बनता है जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय के कारणादिक हो" इसलिए अनुपचार हुए बिना उपचार का आरोप नही आता है।

प्रश्न ३४२—निश्चयाभासी-व्यवहाराभासी और उभयाभासी के अज्ञान अन्धकार दूर करने मे कौन निमित्त हो सकता है ?

उत्तर—(१) जो सम्यग्दृष्टि हो, विद्याभ्यास करने से शास्त्र वाँचने योग्य बुद्धि प्रगट हुयी हो, सम्यग्ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार के व्यवहार-निश्चयादिरूप व्याख्यान का अभिप्राय पहिचानता हो, जिसको शास्त्र वाँचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न हो, वह ही अज्ञानियो के अधकार मिटाने मे निमित्त हो सकता है। (२) भूले हुए को मार्ग कौन दिखा सकता है, जो स्वय उसका जानकार हो। जो स्वय अन्धा हो वह दूसरो को क्या मार्ग दिखायेगा ? नही दिखा सकता, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी ही मोक्षमार्ग मे निमित्त हो सकता है। अज्ञानी कभी भी निमित्त नही हो सकता है क्योकि उपादान-निमित्त का ऐसा स्वभाव है। (३) नियमसार गाथा ५३ मे कहा है कि 'जो मुमुक्ष हैं उनको भी उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्व परिणाम का) अन्तरग हेतु कहा है क्योकि उनको दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।

प्रश्न ३४३--शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी; व्रत शील-संयमादि व्यवहार मोक्षमार्ग और मोक्ष का कारण हैं, ऐसे

अज्ञानी जीवो के अज्ञान को दूर करने के लिये समयसार कलश टीका कलश १०० से लेकर ११२ तक मे क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) किसी मिथ्यादृष्टि जीव का ऐसा अभिप्राय है जो दया, व्रत, तप-शील, सयम आदि · भले है, जीव को सुखकारी हैं। परन्तु जैसे अशुभ कर्म जीव को दुख करता है उसी प्रकार शुभ कर्म भी जीव को दुख करता है। कर्म मे तो भला कोई नही है। अपने मोह को लिए हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म को भला करके मानता है। [समयसार कलश १००]

(२) शुभ कर्म भला, अशुभ कर्म बुरा सो ऐसे दोनो जीव मिथ्यादृष्टि हैं, दोनो जीव कर्म बन्ध कारणशील है। कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ, यतिक्रिया मे मग्न होता हुआ शुद्धोपयोग को नही जानता है, केवल यतिक्रिया मात्र मे मग्न है। वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विपय-कषाय सामग्री निषिद्ध है ऐसा जानकर विपय-कषाय सामग्री को छोडता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है। सो विचार करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है। [समयसार कलश १०१]

(३) शुभ कर्म के उदय मे उत्तम पर्याय होती है वहाँ धर्म की सामग्री मिलती है, उस धर्म की सामग्री से जीव मोक्ष जाता है इसलिए मोक्ष की परिपाटी शुभकर्म है। ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। निश्चित हुआ कि कोई कर्म भला कोई कर्म बुरा ऐसा तो नही, सब ही कर्म दुखरूप है। कर्म नि:सन्देह बन्ध को करता है, गणधर देव ने ऐसा कहा है। [समयसार कलश १०२]

(४) कोई मिथ्यादृष्टि जीव शुभ क्रिया को मोक्षमार्ग मानकर पक्ष करता है सो निषेध किया, ऐसा भाव स्थापित किया कि मोक्ष-मार्ग कोई कर्म नही। निश्चय से शुद्ध स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग है, अनादि-परम्परा ऐसा उपदेश है। [समयसार कलश १०३]

(५) अशुभ क्रिया मोक्षमार्ग नही, शुभ क्रिया भी मोक्षमार्ग नही,

शुभ-अशुभ क्रिया मे मग्न होता हुआ जीव विकल्पी है, इससे दु खी है। क्रिया सस्कार छूटकर शुद्ध स्वरूप का अनुभव होते ही जीव निर्विकल्प है, इससे सुखी है। [समयसार कलश १०४]

(६) शुद्ध स्वरूप का अनुभव मोक्षमार्ग है, इसके विना जो कुछ है शुभ क्रियारूप-अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार वह सब वन्ध का मार्ग है। [समयसार कलश १०४]

(७) जिस प्रकार कामला का नाहर कहने के लिए नाहर (सिंह) है, उसी प्रकार आचरणरूप चारित्र कहने के लिये चारित्र है, परन्तु चारित्र नही है। नि सन्देह रूप से जानो। [समयसार कलश १०७]

(८) व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है इसलिए विषय-कषाय के समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है।
[समयसार कलश १०८]

(९) समस्त कर्म जाति हेय है, पुण्य-पाप के विवरण की क्या बात रही, ऐसी वात निश्चय से जानो, पुण्य कर्म भला ऐसी भ्रान्ति मत करो। [समयसार कलश १०९]

(१०) पापरूप अथवा पुण्यरूप जितनी क्रिया है वह सब मोक्षमार्ग नही हैं ऐसा जानकर समस्त क्रिया मे ममत्व का त्याग कर शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग है—ऐसा सिद्धान्त सिद्ध हुआ। [समयसार कलश ११२]

प्रश्न ३४४—आत्मज्ञान बिना अणुव्रत-महाव्रतादि क्या बिल्कुल व्यर्थ है ?

उत्तर—जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित हैं, बाह्य आचरण से सन्तुष्ट हैं, उसके बाह्य परिग्रह का त्याग है वह निरर्थक है। पर्वत, पर्वत की गुफा, नदी के पास, पर्वत के जल से चीरा हुआ स्थान इत्यादि स्थानो मे रहना निरर्थक है। ध्यान, माला जपना, मन-वचन-काय को रोकना, ११ अग ९ पूर्व का पढना, महाव्रत, उपवासादि ये

सब निरर्थक हैं। बाह्य भेष लोक रंजन का कारण है इसलिए यह उपदेश है इस महाव्रतादि से कुछ परमार्थ सिद्धि नही है।

[मोक्षपाहुड गाथा ८९-९०]

प्रश्न ३४५—जिसे जानने से मोक्षमार्ग मे प्रवृत्ति हो वैसा अवश्य जानने योग्य—प्रयोजनभूत क्या-क्या है?

उत्तर—(१) हेय-उपादेय तत्त्वो की परीक्षा करना। (२) जीवादि द्रव्य, सात तत्त्व तथा सुदेव-गुरु-धर्म को पहिचानना। (३) त्यागने योग्य मिथ्यात्व-रागादिक तथा ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञानादिक का स्वरूप जानना। (४) निमित्त-नैमित्तिक आदि को जैसे हैं वैसा ही जानना। इत्यादि जिनके जानने से मोक्षमार्ग मे प्रवृत्ति हो उन्हें अवश्य जानना चाहिए; क्योकि वे प्रयोजनभूत तत्त्व है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २५९]

प्रश्न ३४६—सम्यक्त्व का अधिकारी कौन और कब हो सकता है?

उत्तर—देखो, तत्त्वविचार की महिमा! तत्त्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रो का अभ्यास करे, व्रतादिक पाले, तपश्चरणादि करे, उसको सम्यक्त्व होने का अधिकार नही और तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६०]

प्रश्न ३४७—इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार समझाने से क्या लाभ है?

उत्तर—उन-उन प्रकारो को पहचान कर अपने मे ऐसा दोष हो तो उसे दूर करके सम्यक्‌श्रद्धानी होना, औरो के ही ऐसे दोष देख-देखकर कषायी नही होना, क्योकि अपना भला-बुरा तो अपने परिणामो से है। औरो को रुचिवान देखे तो कुछ उपदेश देकर उनको भी भला करे। इसलिए अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है, सर्व प्रकार के मिथ्यात्व भाव छोडकर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है,

ससार का मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के समान अन्य कोई पाप नही है। [मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २६६]।

(१८) श्री पंचास्तिकाय से एकान्त व्यवहाराभासी का ११ प्रश्नो द्वारा स्पष्टीकरण

प्रश्न १—एकान्त व्यवहाराभासी किसका अवलम्बन करते हैं ?

उत्तर—एकमात्र व्यवहार का अवलम्बन करते है।

प्रश्न २—एकान्त व्यवहाराभासी एकमात्र व्यवहार का अवलम्बन क्यो करते हैं ?

उत्तर—"वास्तव मे साध्य और साधन अभिन्न होते हैं, उसका अनुभव-ज्ञान ना होने से वास्तव मे शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभाव रूप साध्य प्राप्त होगा।" ऐसी खोटी श्रद्धा और खोटा ज्ञान होने से ही एकमात्र व्यवहार का अवलम्बन करते हैं।

प्रश्न ३—एकान्त व्यवहाराभासी श्रद्धा के लिये क्या करते हैं और क्या नहीं करते हैं ?

उत्तर—धर्मादि पर द्रव्यो की श्रद्धा करते हैं, आत्मा की श्रद्धा नही करते हैं।

प्रश्न ४—एकान्त व्यवहाराभासी ज्ञान के लिये क्या करते हैं, क्या नहीं करते हैं ?

उत्तर—द्रव्यश्रुत के पठन-पाठनादि सस्कारो से अनेक प्रकार के विकल्प जाल से चैतन्य वृत्ति को धारण करते हैं, आत्मा का ज्ञान नहीं करते हैं।

प्रश्न ५—एकान्त व्यवहाराभासी चारित्र के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर—यति के समस्त व्रत समुदायरूप तपादि प्रवृत्तिरूप कर्म-काण्डो की धमार मे पागल बने रहते हैं किसी पुण्य की रुचि करते हैं, कभी दयावन्त होते हैं।

प्रश्न ६— एकान्त व्यवहाराभासी दर्शनाचार के लिए क्या करते हैं ?

उत्तर—किसी समय प्रशमता (क्रोध मानादि सम्बन्धी राग द्वेष की मन्दता) किसी समय सवेग (विकारी भावो का भय) किसी समय अनुकम्पा, दया (सर्व प्राणियो पर दया का प्रादुर्भाव) और किसी समय आस्तिक्य मे (जीवादि तत्त्वो का जैसा अस्तित्व है वैसा ही आगम-युक्ति से मानना) वर्तते हैं तथा शका, काक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि आदि भाव उत्पन्न ना हो ऐसी शुभोपयोगरूप सावधानी रखते है, मात्र व्यवहारनयरूप उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना इन अगो की भावना विचारते है और इस सम्बन्धी उत्साह को बार-बार बढाते है।

प्रश्न ७—एकान्त व्यवहाराभासी ज्ञानाचार के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर— स्वाध्याय का काल विचारते हैं, अनेक प्रकार की विनय मे प्रवृत्ति करते है, शास्त्र की भक्ति के लिए विनय का विस्तार करते है दुर्धर उपधान करते हैं—आरम्भ करते हैं। शास्त्रो का भले प्रकार से बहुमान करते हैं। गुरु आदि मे उपकार प्रवृत्ति को नही भूलते, अर्थ-व्यजन और इन दोनो की शुद्धता मे सावधान रहते हैं।

प्रश्न ८—एकान्त व्यवहाराभासी चारित्राचार के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर—हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री-सेवन और परिग्रह इन सबसे विरतरूप पच-महाव्रतो मे स्थिर वृत्ति धारण करते है, योग (मन-वचन-काय) के निग्रहरूप गुप्तियो के अवलम्बन का उद्योग करते है, ईर्या-भाषा-एषणा-आदान निक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँच समितियो मे सर्वथा प्रयत्नवन्त वर्तते है।

प्रश्न ९—एकान्त व्यवहाराभासी तपाचार के लिये क्या करते हैं ?

उत्तर— अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसख्यान, रसपरित्याग,

विविक्त शय्यासन और काय क्लेश मे निरन्तर उत्साह रखते हैं, प्रायश्चित्, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय और ध्यान के लिये चित्त को वश मे करते हैं।

प्रश्न १०—एकान्त व्यवहाराभासी वीर्याचार के लिए क्या करते हैं ?

उत्तर—कर्मकाण्ड मे सर्वशक्ति पूर्वक वर्तते हैं।

प्रश्न ११—एकान्त व्यवहाराभासी इन सबमे सावधानी रखता है इसका फल क्या होगा और क्या नहीं होगा ?

उत्तर—ऐसा करते हुये कर्म चेतना की प्रधानतापूर्वक अशुभभाव की प्रवृत्ति छोडते हैं, किन्तु शुभभाव की प्रवृत्ति को आदरने योग्य मानकर अगीकार करते है, इसलिये सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड के आडम्बर से अतिक्रात दर्शन-ज्ञान-चारित्र की ऐक्य परिणतिरूप ज्ञान चेतना को वे किसी भी समय प्राप्त नही होते है। वे बहुत पुण्य के भार से मन्थर (मन्द, सुस्त) हुई चित्तवृत्ति वाले वर्तते है इसलिये स्वर्गलोकादि क्लेश प्राप्त करके परम्परा से दीर्घकाल तक ससार मे परिभ्रमण करते हैं।

(१६) उभयाभासी की प्रवृत्ति का विशेष स्पष्टीकरण

प्रश्न १—"(१) अंतरंग मे आपने तो निर्धार करके यथावत् निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचाना नहीं (२) जिनाज्ञा मानकर निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दो प्रकार मानते हैं।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य ने अपनी ज्ञान की पर्याय मे निर्णय करके यथावत् निश्चय-व्यवहार मुनिपने को पहिचाना नही। (२) तो फिर क्या हुआ ? जिन आज्ञा मानकर निश्चय-व्यवहाररूप मुनिपना दो प्रकार मानते हैं।

प्रश्न २—"(१) सो मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण

दो प्रकार है। (२) जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाये सो निश्चय मोक्षमार्ग है। (३) और जहाँ पर जो मोक्ष-मार्ग तो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त व सहचारी है—उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है। (४) क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। (५) सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार—इसलिए निरूपण अपेक्षा दो प्रकार का मोक्षमार्ग जानना। (६) किन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) सो मुनिपना दो प्रकार का नही है, मुनिपने का निरूपण दो प्रकार का है। (२) जहाँ पर तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकलचारित्ररूप शुद्धि को मुनिपना निरूपित किया जाये सो निश्चय मुनिपना है। (३) और जहाँ पर २८ मूलगुणरूप अशुद्धि मुनिपना तो है नही, परन्तु सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने का निमित्त है व सहचारी है। उस २८ मूलगुणरूप अशुद्धि को उपचार से मुनिपना कहा जाये सो व्यवहार मुनिपना है। (४) क्योकि निश्चय-व्यवहार मुनिपने का चारो अनुयोगो मे ऐसा ही लक्षण है। (५) सकलचारित्र रूप शुद्धि मुनिपने का सच्चा निरूपण है—सो निश्चय मुनिपना है और २८ मूलगुणरूप अशुद्धि मुनिपने का उपचार निरूपण है सो व्यवहार मुनिपना है। इसलिये निरूपण अपेक्षा दो प्रकार का मुनिपना जानना। (६) किन्तु एक सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपना है और एक २८ मूलगुण अशुद्धिरूप व्यवहार मुनिपना है। इस प्रकार दो मुनिपना मानना मिथ्या है।

प्रश्न ३—"(१) तथा निश्चय-व्यवहार दोनो को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है। (२) क्योकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। (३)कारण कि समयसार मे ऐसा कहा है। (४) व्यवहार अभूतार्थ है सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता, किसी

अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। (५) तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा निरूपण करता है। (६) इस प्रकार इन दोनो का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये।

उत्तर—(१) सकलचारित्ररूप शुद्धि को निश्चय मुनिपना कहा है, वह प्रगट करने योग्य उपादेय है और २८ मूलगुणादि अशुद्धि को व्यवहार मुनिपना कहा है, वह हेय है। परन्तु उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य निश्चय व्यवहार दोनो मुनिपने को उपादेय मानता है। इस पर प० टोडरमल जी कहते हैं कि वह भी उसका भ्रम है। (२) क्यो भ्रम है ? क्योकि निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है। (३) क्योकि समयसार मे निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप ऐसा बताया है कि—(४) व्यवहारनय मुनिपने का २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप निरूपण करता है वह अभूतार्थ है। क्यो अभूतार्थ है ? क्योकि वह मुनिपने का सकलचारित्र शुद्धि रूप निरूपण नही करता है। निमित्त की अपेक्षा उपचार से मुनिपने का अन्यथा निरूपण करता है। (५) तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह मुनिपने को सकलचारित्र शुद्धिरूप निरूपण करता है वह भूतार्थ है। वह भूतार्थ क्यो है ? क्योकि जैसा मुनिपने को सकलचारित्र शुद्धिरूप स्वरूप है, वैसा निरूपण करता है। (६) इस प्रकार निश्चय-व्यवहार मुनिपने का स्वरूप तो विरुद्धता सहित है।

प्रश्न ४—"(१) तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय और व्रत-शील-सयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार—सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है। (२) क्योकि किसी द्रव्य भाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार—ऐसा नहीं है। (३) एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है। उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है। (४) जैसे मिटटी के घडे को

मिट्टी का घडा निरूपित किया जाये सो निश्चयनय और घृत संयोग के उपचार से उसी को घृत का घडा कहा जाये सो व्यवहार। (५) ऐसे ही अन्यत्र जानना"—इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) पडित जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हुए कहते है कि—तू ऐसा मानता है कि सकलचारित्ररूप शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि-रूप प्रवृत्ति सो व्यवहार मुनिपना—सो ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप मानना ठीक नही है। (२) क्योकि चारित्रगुण की शुद्ध पर्याय का नाम निश्चय मुनिपना और चारित्रगुण की २८ मूलगुणादि-रूप अशुद्ध पर्याय का नाम व्यवहार मुनिपना—ऐसा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप नही है, क्योकि प्रवृत्ति मे निश्चय-व्यवहार नही होता है, प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है, प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। इसलिये प्रवृत्ति मे निश्चय-व्यवहार नही होता है। (३) यदि प्रवृत्ति मे निश्चय-व्यवहार नही होता है तो निश्चय-व्यवहार किसमे है ? उत्तर—अभिप्रायपूर्वक किसी वस्तु के प्ररूपण मे निश्चय-व्यवहार होता है। मुनिपने को चारित्रगुण की सकलचारित्र शुद्धिरूप निरूपण करना सो निश्चयनय है और मुनिपने को २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप निरूपण करना सो व्यवहार है। (४) जैसे—[अ] मिट्टी मे अनादिकाल से प्रवृत्ति (पर्याय) का प्रवाह चला आ रहा है, वह प्रवृत्ति है। अतः प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। [आ] प्रवृत्ति तो मिट्टी का परिणमन है। [इ] मानो मिट्टी की १० नम्बर की पर्याय को ध्यान मे लिया और उस १० नम्बर की पर्याय का नाम आपने घडा रखा। तो उस घडा रूप प्रवृत्ति को मिट्टी का घडा कहना सो निश्चयनय है और घी के सयोग के उपचार से उसी घडे को घी का घड़ा कहना सो व्यवहारनय है, उसी प्रकार [अ] सम्यग्दर्शन होने के साथ ही आत्मा के चारित्र गुण मे पर्याय का प्रवाह चला आ

रहा है। वह प्रवृत्ति शुद्धि और अशुद्धि रूप है। उस शुद्धि और अशुद्धि रूप प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। [आ] शुद्धि और अशुद्धि आत्मा के चारित्र गुण का परिणमन है। [इ] मानो आपने चारित्रगुण की सकलचारित्र रूप शुद्धि जो १० नम्बर की प्रवृत्ति है उसको ध्यान मे लिया और उस सकलचारित्ररूप शुद्धि का नाम मुनिपना रखा तो उस मुनिपने को सकलचारित्ररूप शुद्धिरूप निरूपण करना सो निश्चय-नय है और २८ मूलगुणादि अशुद्धि के सयोग से उस मुनिपने को उपचार से २८ मूलगुणादि रूप निरूपण करना सो व्यवहारनय है। (५) मिट्टी के दृष्टान्त के अनुसार कथन मे निश्चय-व्यवहार जानना मानना और प्रवृत्ति मे निश्चय-व्यवहार नही जानना मानना।

प्रश्न ५—"(१) इसलिये तू किसी को निश्चय माने और किसी को व्यवहार माने वह भ्रम है। (२) तथा तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार को परस्पर विरोध आया। (३) यदि तू अपने को सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो व्रतादिक किसलिये करता है ? (४) यदि व्रतादिक के साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है तो वर्तमान मे शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या हुआ। (५) इस प्रकार दोनो नयो के परस्पर विरोध है। (६) इसलिये दोनो नयो का उपादेयपना नहीं बनता।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) इसलिए तू सकलचारित्र शुद्धिरूप आत्मा के अनुभवन को निश्चय मुनिपना माने और २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना माने—ऐसा तेरा निश्चय-व्यवहार मानना भी, वह तेरा भ्रम है। (२) तथा तेरे सकलचारित्र शुद्धिरूप आत्मा के अनुभवन को निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि अशुद्धि रूप प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना मानने मे भी परस्पर विरोध आया। (३) क्या विरोध आया ? यदि तू अपने को सकलचारित्र शुद्धिरूप प्रगट मुनिपना मानता है तो २८ मूलगुणादि अशुद्धि का पालन क्यो करता है ? (४) यदि वह कहे कि—मैं २८ मूलगुणादि

रूप व्यवहार साधन द्वारा सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने की सिद्धि करना चाहता हूँ तो वर्तमान मे सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने का अनुभवन प्रगटपना मानना—तेरा मिथ्या हुआ। (५) इस प्रकार निश्चय-व्यवहार दोनो प्रकार का मुनिपना मानने मे परस्पर विरोध है। (६) सकलचारित्र शुद्धिरूप आत्मा का अनुभवन निश्चय मुनिपना है और २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार मुनिपना है—इस प्रकार तेरी मान्यतानुसार निश्चय-व्यवहार मुनिपने मे भी उपादेयपना नही बनता।

प्रश्न ६—"(१) यहाँ प्रश्न है कि समयसारादि में शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है। व्रत-तप-संयमादि को व्यवहार कहा है—उस प्रकार ही हम मानते हैं ? (२) समाधान-शुद्ध आत्मा का अनुभव सच्चा मोक्षमार्ग है इसलिये उसे निश्चय कहा। यहाँ स्वभाव से अभिन्न परभाव से भिन्न ऐसा शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। (३) संसारी को सिद्ध मानना—ऐसा भ्रम रूप अर्थ शुद्ध शब्द का नहीं जानना। (४) तथा व्रत-तपादि मोक्षमार्ग हैं नहीं, निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं—इसलिये इन्हें व्यवहार कहा है। (५) इस प्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है, सो ऐसा ही मानना। (६) परन्तु यह दोनो ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनो को उपादेय मानना वह तो मिथ्याबुद्धि ही है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य कहता है कि हमने समयसारादि शास्त्रो का अभ्यास किया है। उसमे बताया है कि शुद्ध आत्मा का सकलचारित्र वीतराग दशा रूप अनुभव को निश्चय मुनिपना कहा है और २८ मूलगुणादि शुभभावो को व्यवहार मुनिपना कहा है। समयसारादि के अनुसार ही हम मानते हैं—आप हम झूठा क्यो कहते हो ? (२) समाधान किया है कि शुद्ध के दो अर्थ है एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धिपना है दूसरा पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है। वहाँ

द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना—द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मों से भिन्नपना और ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनन्त गुणो से अभिन्नपना उसे शक्तिरूप मुनिपना कहा है और पर्याय अपेक्षा शुद्धपना—आत्मा के आश्रय से सकलचारित्ररूप शुद्धि पर्याय मे प्रगट होना उसे पर्याय मे प्रगट मुनिपना कहा है। (३) फिर पडित जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य को समझाते हुए कहते है कि तू शक्तिरूप मुनिपना मानता नही है और पर्याय मे सकलचारित्ररूप शुद्धिरूप मुनिपना तुझे प्रगटा नही है। फिर भी तू अपने को वर्तमान पर्याय मे सकलचारित्ररूप मुनिपना माने—यह भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्द का नही जानना। (४) तथा २८ मूलगुणादि का शुभ भाव मुनिपना नही है। परन्तु जिसको अपने निज ज्ञायक भगवान के आश्रय से सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगटा है उस जीव के २८ मूलगुणादि शुभभावो को उपचार से व्यवहार मुनिपना कहा है। परन्तु तुझे सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगटा नही है इसलिये तेरे २८ मूलगुणादि के शुभभावो मे मुनिपने का उपचार भी सम्भव नही है। अत तेरी मान्यतानुसार तेरा माना हुआ निश्चय-व्यवहार मुनिपना झूठा है। (५) इस प्रकार सकलचारित्ररूप शुद्धि को भूतार्थ मुनिपना कहा है और २८ मूलगुणादि के शुभभावो को अभूतार्थ मुनिपना कहा है—सो ऐसा ही मानना। (६) परन्तु सकल-चारित्ररूप शुद्धि निश्चय मुनिपना और २८ मूलगुणादि के शुभ भाव व्यवहार मुनिपना है। परन्तु ये दोनो ही सच्चा मुनिपना है और इन दोनो को ही उपादेय मानना—यह तो मिथ्यादृष्टिपना ही है।

प्रश्न ७—"(१) वहाँ वह कहता है कि श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहार रूप रखते हैं। इस प्रकार हम दोनो को अंगीकार करते हैं। (२) सो ऐसा भी नहीं बनता, क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है। (३) एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है। (४) तथा प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नहीं है। (५) प्रवृत्ति तो

द्रव्य की परिणति है। (६) वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय; (७) और उसी को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहारनय। (८) ऐसे अभिप्रायानुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दोनो नय बनते हैं। (९) कुछ प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नहीं। (१०) इसलिये इस प्रकार भी दोनो नयो का ग्रहण मानना मिथ्या है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य तीसरी भूल क्या करता है उसका स्पष्टीकरण—(१) वह कहता है कि हम सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय मुनिपने का तो श्रद्धान रखते हैं और २८ मूलगुणादि व्यवहार मुनिपने रूप प्रवृत्ति रखते हैं—इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनो मुनिपनो को अगीकार करते हैं।(२)पडित जी ने समझाया है कि ऐसा भी नही बनता, क्योकि यदि सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय-मुनिपने का श्रद्धान रखते हो तो प्रवृत्ति भी सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय मुनिपने की होनी चाहिये। इसलिये सकलचारित्र शुद्धि-रूप जो निश्चय मुनिपना कहा है वह प्रगट करने योग्य उपादेय है—यह निश्चय का निश्चयरूप श्रद्धान है और २९ मूलगुणादि अशुद्धि रूप जो व्यवहार मुनिपना कहा है वह बध रूप होने से हेय है–यह व्यवहार का व्यवहार रूप श्रद्धान है। (३) [अ] सकलचारित्र पर्याय मे प्रगट हुये विना सकलचारित्र रूप शुद्धि मान ले—यह एकान्त मिथ्यात्व है। [आ] अनुपचार अर्थात् निश्चय मुनिपना प्रगट हुये विना २८ मूल-गुणादि रूप प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना मान ले—यह भी एकान्त मिथ्यात्व है। [इ] और हम सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान रखते हैं और २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति का पालन करते हैं यह भी एकान्त मिथ्यात्व है। [ई] निश्चयाभासीपना, व्यवहारभासीपना और उभयाभासीपना—यह तीनो एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व है। (४) यथार्थ मुनिपना होने पर आत्मा के चारित्रगुण के परिणमन मे शुद्धि-अशुद्धि रूप मिश्र

दशा की प्रवृत्ति हो जाती है। उस मिश्र दशा की प्रवृत्ति मे नय का प्रयोजन ही नही है। (५) शुद्धि-अशुद्धि रूप मिश्र दशा आत्मा के चारित्रगुण का कार्य है इसलिये कहा है कि प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। (६) वहाँ सकलचारित्र रूप शुद्धि को मुनिपना प्ररूपित करे सो निश्चयनय है।(७) और वही पर २८ मूलगुणादि रूप अशुद्धि को मुनिपना प्ररूपित करे सो व्यवहारनय है। (८) ऐसे अभिप्रायानुसार कथन से सकलचारित्र रूप शुद्धि मे और २८ मूलगुणादि रूप अशुद्धि मे निश्चय-व्यवहार मुनिपना कहा जाता है। (९) सकलचारित्र रूप शुद्धि और २८ मूलगुणादि रूप अशुद्धि ही तो नय रूप है नही।(१०) सकलचारित्र शुद्धि रूप निश्चय-मुनिपने का श्रद्धान रखते हैं और २८ मूलगुणादि व्यवहार रूप प्रवृत्ति का पालन करते हैं इसलिए इस प्रकार भी उभयाभासी शिष्य का निश्चय-व्यवहार मुनिपना मानना मिथ्या है।

प्रश्न ८—"(१) तो क्या करें ? सो कहते हैं। (२) निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना। (३) और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना। (४) यही समयसार कलश १७३ में कहा है। अर्थ—क्योंकि सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि मे अध्यवसाय है वह समस्त ही छोड़ना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है। (५) इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। (६) सन्त पुरुष एक परम निश्चय ही को भले प्रकार निष्कम्परूप से अंगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यो नही करते ? (७) भावार्थ—यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है। इसलिये निश्चय को अंगीकार करके निज महिमा रूप प्रवर्तना युक्त है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—"(१) उभयाभासी निश्चय मुनिपने का श्रद्धान रखता है और व्यवहार मुनिपने की प्रवृत्ति रखता है और इस प्रकार उसके

निश्चय-व्यवहार मुनिपने का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह किस प्रकार जाने-माने तो उसका निश्चय-व्यवहार मुनिपने का श्रद्धान सच्चा कहलावे ? (२) निश्चयनय से जहाँ शास्त्रो मे सकलचारित्र-रूप शुद्धि को मुनिपना निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मुनिपना मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना। (३) व्यवहारनय से जहाँ शास्त्रो मे २८ मूलगुणादिरूप अशुद्धि को मुनिपना निरूपित किया हो उसे असत्यार्थ मुनिपना मानकर उसका श्रद्धान छोडना। (४) भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार कलश १७३ मे कहा है कि सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगट पर्याय मे ना होने पर भी मुझे सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपना प्रगट है—ऐसा मानना और २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति को व्यवहार मुनिपना मानना—यह तो उभयाभासी मिथ्यादृष्टि का मिथ्या अध्यवसाय है तथा ऐसे-ऐसे और समस्त मिथ्या अध्यवसायो को छोडने का आदेश समस्त जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि मे आया है। (५) अमृतचन्द्राचार्य स्वय कहते हैं कि इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि २८ मूलगुणादि का विकल्प जो पराश्रित व्यवहार कहा है सो सर्व ही छुडाया है। (६) तो फिर सन्तपुरुष एक परम निज त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय करके सकलचारित्र रूप शुद्धि को प्रगट करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यो नही करते ? अर्थात् श्रेणी माडकर केवलज्ञान क्यो प्रगट नही करते ?—ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है। (७) भावार्थ मे बताया है कि २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने का त्याग करके, निज त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से सकलचारित्ररूप शुद्धि प्रगट करके निज महिमा मे प्रवर्तन करके श्रेणी माडकर केवलज्ञान प्रगट करना युक्त है।

प्रश्न ६—"(१) तथा षडपाहुड़ के मोक्ष पाहुड़ गाथा ३१ में कुन्द-कुन्द भगवान ने कहा है कि (२) जो व्यवहार में सोता है वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है। (३) तथा जो व्यवहार में

जागता है वह अपने कार्य में सोता है। (४) इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने को अंगीकार करने और २८ मूलगुणादि अशुद्धिरूप व्यवहार मुनिपने के त्याग के विषय मे मोक्षपाहुड गाथा ३१ मे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ? (२) जो २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपने की श्रद्धा छोडकर सकलचारित्र रूप निश्चय मुनिपने की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्मकार्य मे जागता है। (३) तथा जो २८ मूलगुणादि-रूप व्यवहार मुनिपने मे जागता है, इसी को सच्चा मुनिपना मानता है—वह अपने आत्मकार्य मे सोता है। (४) इसलिए २८ मूलगुणादि-रूप व्यवहार मुनिपने का श्रद्धान छोडकर सकलचारित्र रूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान करना योग्य है, क्योकि यथार्थ मे सकलचारित्ररूप शुद्धोपयोग ही मुनिपना है।

प्रश्न १०—"(१) व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को व उनके भावो को व कारण-कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना"—इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि रूप व्यवहार मुनिपने का श्रद्धान छोडकर सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपने का श्रद्धान क्यो करना योग्य है ? इस प्रश्न का उत्तर इस वाक्य मे है। सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपना—यह स्वद्रव्य का भाव है और २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपना—यह परद्रव्य का भाव है। व्यवहारनय=सकल-चारित्ररूप स्वद्रव्य के भाव को और २८ मूलगुणादि रूप परद्रव्य के

भाव को—किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है मो २८ मूलगुणादि रूप ही सच्चा मुनिपना है—ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय=सकलचारित्ररूप निश्चय मुनिपना स्वद्रव्य के भाव को और २८ मूलगुणादिरूप व्यवहार मुनिपना परद्रव्य के भाव को यथावत् जैसा का तैसा निरूपित करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है। २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति मुनिपना नही है, सकलचारित्ररूप शुद्धि ही निश्चय मुनिपना है—सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है—इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न ११—"(१) यहाँ प्रश्न है कि यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनो नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ? (२) समाधान—जिन-मार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यतया लिये व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही हैं' ऐसा जानना। (३) तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे 'ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। (४) इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य प्रश्न करता है कि आप कहते हो कि २८ मूलगुणादि प्रवृति रूप व्यवहार मुनिपने के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है—इसलिए उसका त्याग करना और सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है—इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए। परन्तु जिनमार्ग मे तो निश्चय-व्यवहार दोनो प्रकार के मुनिपने का ग्रहण करना कहा है सो कैसे ? (२) वहाँ समाधान किया है कि जिनमार्ग मे कही तो सकल-चारित्र शुद्धिरूप मुनिपना कहा है, यह तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है" ऐसा जानना। (३) तथा जिनमार्ग मे कही २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा है, यह व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "ऐसा

है नही, निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से कथन किया है"—ऐसा जानना। (४) २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति मुनिपना नही है अपितु सकलचारित्र रूप शुद्धि ही सच्चा मुनिपना है—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार मुनिपने का ग्रहण है।

प्रश्न १२—"तथा दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर ऐसे भी है और ऐसे भी है इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नहीं कहा है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—कोई-कोई चतुर विद्वान निश्चयनय सकलचारित्र शुद्धिरूप भी मुनिपना है और व्यवहारनय से २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप भी मुनिपना है—ऐसा कहते है। क्या उन चतुर विद्वानो का ऐसा कहना झूठा है ? वहाँ उत्तर दिया है कि ऐसे चतुर विद्वानो का कहना झूठा ही है क्योकि निश्चय और व्यवहारनय के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर सकलचारित्र शुद्धिरूप भी मुनिपना है और २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप भी मुनिपना है—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहारनय का ग्रहण करना जिनमार्ग मे नही कहा है।

प्रश्न १३—"(१) फिर प्रश्न है कि यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया ? एक निश्चयनय ही का निरूपण करना था। (२) समाधान—ऐसा ही तर्क समयसार गाथा ८ में किया है, वहाँ उत्तर दिया है—जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है, इसलिये व्यवहार का उपदेश है। (३) तथा इसी सूत्र की व्याख्या मे ऐसा कहा है कि "व्यवहारनयोनानु सर्त्तव्य" इसका अर्थ है—इस निश्चय को अगीकार कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं। (४) परन्तु व्यवहारनय है, सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।' इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—उभयाभासी मान्यता वाला शिष्य कहता है कि यदि २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनमार्ग मे किसलिए दिया ? एक सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने का ही निरूपण करना था। (२) उसका समाधान करते हुए उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने के बिना सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने का ज्ञान कराना अशक्य है—इसलिए असत्याथ व्यवहार मुनिपने का उपदेश है। (३) तथा समयसार गाथा ८ की टीका मे कहा है कि यथार्थ निश्चय मुनिपने का ज्ञान कराने के लिए असत्यार्थ व्यवहार मुनिपने का उपदेश है। (४) परन्तु २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है, परन्तु असत्यार्थ व्यवहार मुनिपना अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न १४—"(१) व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? (२) समाधान—निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है उसे जो नहीं पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नहीं पाये। (३) परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा, (४) व्यवहारनय से व्रत-शील-संयमादि-रूप वीतराग भाव के विशेष बतलाये तब उन्हें वीतराग भाव की पहिचान हुई।" इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति मुनिपना है—ऐसे व्यवहार के बिना सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपने का उपदेश कैसे नही होता ? इसको स्पष्टता से समझाइये। (२) समाधान—निश्चय से सकलचारित्र रूप वीतराग भाव ही मुनिपना है। उस सकलचारित्र वीतराग भाव रूप मुनिपने को जो नही पहिचानते उनसे ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नही पाये। (३) तब उनको जिन्हे सकलचारित्र रूप वीतराग मुनिपना प्रगट हुआ है, उनके २८ मूलगुणादिरूप प्रवृति के

विरुद्ध धर्म-विरोधी कार्यों के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा; (४) व्यवहारनय से २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति को सकलचारित्र वीतराग भावरूप मुनिदशा के विशेष बतलाये। तब उन्हे सकलचारित्र वीतराग भावरूप मुनिपने की पहचान हुई।

प्रश्न १५—"(१) व्यवहारनय कैसे अंगीकार नहीं करना ? सो कहिये (२) समाधान किया है ... तथा परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से; (३) व्यवहारनय से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्ष-मार्ग कहा सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना। (४) क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता हर्त्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के अधीन नहीं। (५) इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं उन्हे छोडकर वीतरागी होता है। (६) इसलिये निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (७) वीत-राग भावों के और व्रतादिक के कदाचित कार्य-कारणपना है। (८) इसलिये व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है। (९) पर-मार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा ही श्रद्धान करना।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि अशुद्धि रूप व्यवहार मुनिपने को कैसे अगीकार नही करना चाहिये ? सो स्पष्टता से समझाइये। (२) वहाँ उत्तर दिया है कि भूमिकानुसार २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति व पीछी-कमडल के अलावा कुछ ना होने की, घरो मे ना रहने की, किया-कराया-अनुमोदित भोजन ना लेने आदि धर्म विरोधी परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षाए; (३) व्यवहारनय से २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति को मुनिपना कहा सो इसी को मुनिपना नही मान लेना; (४) क्योकि २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य की क्रिया का कर्त्ता-हर्त्ता हो जावे परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नही है। अत २८ मूलगुणादि रूप शरीर की क्रिया से तो आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध ही नही है।

(५) इसलिये आत्मा अपने २८ मूलगुणादिक जो रागादिक भाव है उन्हे छोडकर सकलचारित्र वीतराग भाव रूप होता है। (६) इसलिये निश्चय से सकलचारित्र वीतराग भाव ही सच्चा मुनिपना है। (७) सकलचारित्ररूप वीतरागभाव और २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। (८) इसलिये २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति को मुनिपना कहा है सो कथन मात्र ही है। (९) परमार्थ से २८ मूलगुणादि रूप बाह्य क्रिया मुनिपना नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना।

प्रश्न १६—"(१) यहाँ प्रश्न है कि व्यवहारनय पर को उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है ? (२) समाधान—आप भी जब तक निश्चयनय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने तब तक व्यवहार मार्ग से वस्तु का निश्चय करे। (३) इसलिये निचली दशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी है। (४) परन्तु व्यवहार को उपचार मात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे तब तो कार्यकारी हो। (५) परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर "वस्तु इस प्रकार ही है" ऐसा श्रद्धान करे तो उल्टा अकार्यकारी हो जाये। (६) यही पुरुषार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६-७ में कहा है कि मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं। (७) जो केवल व्यवहार ही को जानता है उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है। (८) तथा जैसे कोई सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है; उसी प्रकार जो निश्चय को नहीं जाने उसका व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) मुनिपना २८ मूलगुणादि पालने के भावरूप है ऐसा व्यवहारनय पर को ही उपदेश मे कार्यकारी है या कुछ अपना भी प्रयोजन साधता है ? यह प्रश्नकार का प्रश्न है। (२) समाधान—शिष्य भी जब तक निश्चयनय से प्ररूपित वीतराग शुद्धोपयोग रूप

मुनिदशा को ना समझे (प्रगट ना कर ले) तब तक व्यवहार मार्ग से वीतराग शुद्धोपयोग रूप मुनिदशा को प्रगट करने का उपाय करे। (३) इसलिये निचली दशा मे शिष्य को भी २८ मूलगुणादि मुनिपना है ऐसा व्यवहारनय कार्यकारी है। व्यवहारनय कार्यकारी कब कहा जावेगा ? जब निज ज्ञायक भगवान के आश्रय से पर्याय मे वीतराग शुद्धोपयोग रूप मुनिदशा प्रगट करे। (४) परन्तु २८ मूलगुणादि रूप मुनिदशा है ऐसे व्यवहार को उपचार मात्र मानकर उसके द्वारा अर्थात् उसका अभाव करके वीतराग शुद्धोपयोग रूप मुनिपने की प्राप्ति हो तब तो कार्यकारी है। (५) परन्तु यदि कोई सकलचारित्र वीतराग भावरूप निश्चय मुनिपने के समान २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को भी सच्चा मानकर "मुनिपना इस प्रकार ही है।" ऐसा श्रद्धान करे तो उल्टा अनर्थकारी हो जावे। (६) यही बात पुरुषार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६-७ मे बतलाया है कि जो झगडाखोर नही हैं परन्तु जैसा मुनिराज कहते है वैसा ही मानता है ऐसे अज्ञानी को मुनिराज ज्ञानी बनाने के लिए असत्यार्थ जो व्यवहारनय है उसका उपदेश देते है। (७) जो अज्ञानी मूलगुणादि ही मुनिपना है ऐसे व्यवहार का ही पक्ष करता है—ऐसे अज्ञानी को मुनिराज देशना के योग्य नही मानते हैं। (८) जैसे कोई जगल मे जा रहा था और उसने कभी सिह नही देखा था उसे बडी मूछो वाली बिल्ली दिखाकर कहा कि सिह ऐसा होता है। तब वह पुरुष बडी मूछो वाली बिल्ली को ही सिह मान ले, उसी प्रकार कोई सकलचारित्र शुद्धिरूप मुनिपने को ना पहिचाने और २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को सच्चा मुनिपना मानले वह भगवान की वाणी सुनने योग्य नही है क्योकि उसने व्यवहार मुनिपने को ही सच्चा मुनिपना मान लिया।

प्रश्न १७—"(१) यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे कि तुम व्यवहार को असत्यार्थ, हेय कहते हो तो हम व्रत-शील-संयमादि व्यवहार कार्य किसलिये करें सबको छोड़ देंगे। (२) उससे कहते हैं कि

व्रत-शील-संयमादि का नाम व्यवहार नहीं है। (३) इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे छोड़ दें। (४) और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है—यह तो परद्रव्याश्रित है। (५) तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतराग भाव है वह स्व-द्रव्याश्रित है। (६) इस प्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना। (७) व्रतादिक को छोड़ने से तो व्यवहार का हेयपना नहीं होता है।" इस वाक्य पर मुनिपने को लगातार समझाइये ?

उत्तर—(१) २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपना हेय है और सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपना प्रगट करने योग्य उपादेय है। ऐसे हेय-उपादेय का जिसे विचार नही है—ऐसा निर्विचारी पुरुप कहता है कि तुम २८ मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को असत्यार्थ—हेय कहते हो तो हम २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने का पालन क्यो करे ? हम तो २८ मूलगुणादि प्रवृत्तिरूप व्यवहार मुनिपने को छोडकर अशुभ मे प्रवर्तन करेंगे—ऐसा प्रश्नकार का प्रश्न है। (२) उसे उत्तर दिया है कि २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति का नाम व्यवहार मुनिपना नही है। (३) २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति को मुनिपना मानना व्यवहार है—इस खोटी मान्यता को छोड दे। (४) ऐसा श्रद्धान कर कि जिसको अपनी आत्मा के आश्रय से सकलचारित्र शुद्धिरूप निश्चय मुनिपना प्रगटा है, उसके २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति को बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मुनिपना कहा है और २८ मूलगुणादि की प्रवृत्ति तो पर-द्रव्याश्रित है। (५) तथा सच्चा मुनिपना तो सकलचारित्ररूप शुद्धि ही है और यह स्वद्रव्याश्रित है। (६) इस प्रकार मूलगुणादि प्रवृत्ति रूप व्यवहार मुनिपने को असत्यार्थ-हेय ही जानना। (७) २८ मूलगुणादिरूप प्रवृत्ति को छोडनें से तो व्यवहार मुनिपने का हेयपना नही होता है।

प्रश्न १८—"(१) फिर हम पूछते हैं कि व्रतादिक को छोड़कर क्या करेगा ? (२) यदि हिंसादि रूप प्रवर्तेगा तो वहाँ तो मोक्षमार्ग का

उपचार भी सम्भव नहीं है। वहाँ प्रवर्तने से क्या भला होगा ? नर-कादि प्राप्त करेगा। इसलिये ऐसा करना तो निर्विचारपना है। (३) तथा व्रतादिरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो अच्छा ही है। (४) वह निचली दशा में हो नहीं सकता। (५) इसलिये व्रतादिक साधन छोड़कर स्वच्छन्द होना योग्य नहीं है। (६) इस प्रकार श्रद्धान में निश्चय को और प्रवृत्ति में व्यवहार को उपादेय मानना—वह भी मिथ्याभाव ही है।" इस वाक्य को मुनिपने पर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) पडित जी उभयाभासी मान्यता वाले शिष्य से पूछते हैं कि २८ मूलगुणादि रूप प्रवृत्ति को छोडकर तू क्या करेगा ? (२) और यदि २८ मूलगुणादि रूप शुभभावो को छोडकर हिंसादि अशुभ-भावो मे प्रवर्तेगा तो वहाँ तो मुनिपने का उपचार भी सम्भव न हो सकेगा और अशुभभावो मे प्र वर्तने से तेरा क्या भला होगा ? नरकादि के दु खो को प्राप्त करेगा। इसलिये २८ मूलगुणादि के शुभभावो को छोडकर अशुभभावो मे प्रवर्तना तो निर्विचारीपना है। (३) तथा २८ मूलगुणादिक व्यवहार मुनिपने की परिणति को मिटाकर केवल यथाख्यात चारित्र वीतराग शुद्धोपयोग भावरूप होना बने तो अच्छा है। (४) यथाख्यात चारित्र वीतराग शुद्धोपयोग दशा निचली दशा में नही हो सकती है। (५) इसलिये २८ मूलगुणादिक के शुभभावो को छोडकर स्वच्छन्द—पापी होना योग्य नही है। (६)इस प्रकार श्रद्धान मे निश्चय को और प्रवृत्ति मे व्यवहार को उपादेय मानना—वह भी मिथ्याभाव ही है।

प्रश्न १६—श्रावकपने पर प्रश्नोतर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २०—सम्यग्दर्शन पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २१—ईर्या समिति पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २२—वचनगुप्ति पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २३—उत्तम क्षमा पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २४—क्षुधापरिषहजय पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २५—अहिंसाणुव्रत पर प्रश्नोत्तर १ से १८ तक के अनुसार बनाकर लिखो और स्पष्ट समझाओ ?

प्रश्न २६—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा व चारित्र गुणरूप अभेद त्रिकाली आत्मा को यथार्थ का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्र की प्राप्ति को उपचार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। (२) जहाँ श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्र की प्राप्ति को यथार्थ का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग व सात तत्त्वो की भेदरूप श्रद्धा बध का कारण होने पर भी सम्यग्दर्शन के आरोप को उपचार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। (३) जहाँ सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग व सात तत्वो की भेद रूप श्रद्धा को यथार्थ का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ हाथ जोडने आदि शरीर की क्रिया को उपचार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

प्रश्न २७—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को श्रावकपने पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा व चारित्र गुण रूप अभेद त्रिकाली आत्मा को यथार्थ का नाम निश्चय श्रावकपना कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा दो चौकड़ी कषाय के अभाव रूप देशचारित्र को उपचार का

नाम व्यवहार श्रावकपना कहा जाता है। (२) जहाँ दो चौंकडी कषाय के अभाव रूप देशचारित्र को यथार्थ का नाम निश्चय श्रावकपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ बारह अणुव्रतादि के विकल्पो को उपचार का नाम व्यवहार श्रावकपना कहा जाता है। (३) जहाँ बारह अणुव्रतादि के विकल्पो को यथार्थ का नाम निश्चय श्रावकपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ बारह अणुव्रतादिरूप शरीर की क्रिया को उपचार का नाम व्यवहार श्रावकपना कहा जाता है।

प्रश्न २८—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को मुनिपने पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—(१) जहाँ श्रद्धा व चारित्र गुणरूप अभेद त्रिकाली आत्मा को यथार्थ का नाम निश्चय मुनिपना कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकलचारित्र को उपचार का नाम व्यवहार मुनिपना कहा जाता है। (२) जहाँ तीन चौकडी कपाय के अभावरूप सकलचारित्र को यथार्थ का नाम निश्चय मुनिपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ २८ मूलगुणादि के विकल्पो को उपचार का नाम व्यवहार मुनिपना कहा जाता है। (३) जहाँ २८ मूलगुणादि के विकल्पो को यथार्थ का नाम निश्चय मुनिपना कहा हो, उसकी अपेक्षा वहाँ २८ मूलगुणादिरूप शरीर की क्रिया को उपचार का नाम व्यवहार मुनिपना कहा जाता है।

प्रश्न २९—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को ईर्या समिति पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ३०—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को उत्तम क्षमा पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ३१—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को मनोगुप्ति पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ३२—तीन प्रकार निश्चय-व्यवहार को सामायिक पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ३३—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो,

प्रश्न ३४—तीन प्रकार के निश्चय-व्यवहार को क्षुधा परिषहजय पर लगाकर बताओ ?

उत्तर—२८ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

—इति उभयाभासी प्रकरण समाप्त—

पाँच लब्धियों का स्वरूप

प्रश्न १—पाँच लब्धियों के क्या नाम हैं ?

उत्तर—क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण ये पाँच नाम हैं।

प्रश्न २—क्षायोपशम लब्धि क्या है ?

उत्तर—जिसके होने पर तत्व विचार हो सके-ऐसा ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो; उसकी प्राप्ति सो क्षयोपशम लब्धि है।

प्रश्न ३—क्षयोपशम लब्धि में उपादान-निमित्त क्या है ?

उत्तर—क्षयोपशम भाव उपादान कारण है और उसके योग्य ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम निमित्त है।

प्रश्न ४—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वो का श्रद्धान करने योग्य

क्षयोपशम तो सर्व पंचेन्द्रिय जीवो के हुआ है क्या उन सब को क्षयोपशम लब्धि की प्राप्ति नहीं हैं ?

उत्तर—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वो का श्रद्धान करने योग्य क्षयोपशम तो पचेन्द्रिय सर्व जीवो के प्रगट हुआ है। परन्तु उस क्षयोपशम को सासारिक प्रयोजन मे, दवाखाना खोलने मे, देश की सेवा मे, जीवो की दया पालने मे, व्रतादि पालने मे लगावे उसको क्षयोपशम लब्धि की प्राप्ति नही है। परन्तु जैसा अनादि से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं उसी प्रकार तत्व का विचार करे अन्य प्रकार की बात ध्यान मे ना लावे तब उसे क्षयोपशम लब्धि की प्राप्ति कही जा सकती है।

प्रश्न ५—विशुद्धि लब्धि क्या है ?

उत्तर—मोह का मन्द उदय आने से मन्द कषायरूप भाव हो जहाँ तत्व विचार हो सके सो विशुद्धि लब्धि है।

प्रश्न ६—विशुद्धि लब्धि में उपादान और निमित्त क्या है ?

उत्तर—सक्लेश की हानि, विशुद्धि की (शुभभाव की) वृद्धि उपादान कारण है और अशुभ कर्म का अनुभाग घटना निमित्त है।

प्रश्न ६—विशुद्धि लब्धि क्या बताती हैं ?

उत्तर—तत्व के विचार मे ज्ञान का विकाश हुआ हो तब राग की दशा कैसी होती है ? अर्थात् कषाय वहुत मन्द होती है यह विशुद्धि लब्धि बताती है।

प्रश्न ८—देशनालब्धि क्या है ?

उत्तर—जिन देव के उपदिष्ट तत्व का धारण हो, विचार हो, सो देशनालब्धि है।

प्रश्न ९—देशनालब्धि में उपादान और निमित्त क्या है।

उत्तर—उपदेशित नो पदार्थों की धारणा होना उपादान कारण है और ज्ञानी गुरु निमित्त कारण है।

प्रश्न १०—देशनालब्धि क्या बताती है ?

उत्तर—जिसको तत्व विचाररूप क्षयोपशम, मन्दकषायरूप अवस्था

होती है तब वह भगवान की या गुरु की देशना सुनने लायक है। तब उसे अपनी योग्यता से जैसा सच्चा गुरु कहते हैं वैसा ही ध्यान मे बैठाता है, यह देशनालब्धि बताती है। यहा उपदिष्ट कहा है। कोई उपदेश विना अकेले शास्त्र वाँचकर देशनालब्धि प्राप्त नही कर सकता है।

प्रश्न ११—प्रायोग्य लब्धि क्या है ?

उत्तर—कर्मों की पूर्व सत्ता अत कोडाकोडी सागर प्रमाण रह जाये और नवीन वध अत' कोडाकोडी प्रमाण उसके सख्यातवें भाव मात्र हो, वह भी उस लब्धि काल मे लगाकर क्रमश घटता जाये और कितनी ही पाप प्रकृतियो का वध क्रमशः मिटता जावे, इत्यादि योग्य अवस्था का होना सो प्रयोग्य लब्धि है।

प्रश्न १२—प्रायोग लब्धि में उपादान निमित्त क्या है ?

उत्तर—कर्म की स्थिति अन्त कोडाकोडी काल मात्र रहने योग्य जीव का परिणाम उपादान कारण है और द्रव्यकर्म की उस प्रकार की स्थिति का होना निमित्त कारण है।

प्रश्न १३—प्रायोग्यलब्धि क्या बताती है ?

उत्तर—कर्म की स्थिति स्वय घटती जाती है ऐसा कर्म की दशा का होना यह प्रायोग्य लब्धि बताती है।

प्रश्न १४—ये चारो लब्धियाँ किसको होती हैं और किसको नहीं होती हैं ?

उत्तर—चारो लब्धियाँ मोटेरूप से भव्य और अभव्य दोनो के कही जाती है। परन्तु चारो लब्धियाँ होने के बाद कारण लब्धि होने पर तुरन्त ही सम्यक्त्व प्रकट होता है। जिसको करण लब्धि हो उसी को वास्तव में चार लब्धियाँ हुई है अन्यथा लब्धियो का कोई लाभ नही है। क्योकि कार्य होने पर कारण पर उपचार आता है।

प्रश्न १५—गोमट्टसार में लब्धियों के विषय मे क्या कहा है ?

उत्तर—जो जीव करणलब्धि मे आता है उसे 'सातिशय मिथ्या-

दृष्टि' कहा है उसे नियम से सम्यक्त्व होता ही है। करणलब्धि वाले जीव की चार लब्धियाँ भी विचित्र प्रकार की होती हैं।

प्रश्न १६—बृहत् द्रव्य संग्रह गाथा ३७ की टीका में लब्धियों के विषय में क्या कहा है ?

उत्तर—"करणलब्धि सम्यक्त्व होने के समय होती है। अध्यात्म भाषा मे निज शुद्धात्माभिमुख परिणाम नाम के विशेष प्रकार की निर्मल भावनारूप खड्ग से पुरुषार्थ करके कर्म शत्रुओ का नाश करता है।"

प्रश्न १७—प्रवचनसार में श्री जयसेनाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—आगम की भाषा से अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नाम के परिणाम विशेषो के बल से जो विशेषभाव, दर्शनमोह का अभाव करने को समर्थ है उनमे अपने आत्मा को जोडता है। फिर निर्विकल्प स्वरूप की प्राप्ति के लिए—जैसे पर्यायरूप से मोती का दाना, गुणरूप से सफेदी आदि अभेदनय से एक हार ही मालूम पडता है; उसी प्रकार पूर्व कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय अभेदनय से आत्मा ही है ऐसी भावना करते-करते दर्शनमोह का अधकार नष्ट हो जाता है।

प्रश्न १८—कारण लब्धि किसको नहीं होती है ?

उत्तर—जिस जीव को पुण्य की रुचि, बाहरी अनुकूलता अच्छी लगती है, जैसे हम कुछ दिन जिन्दा रहे तो धर्म समझे, आँख-नाक-कान शरीर ठीक रहे, रुपये-पैसा की अनुकूलता रहे, गुरु का उपदेश मिलता रहे तो मैं धर्म कर सकूं ऐसे जीवो को करणलब्धि नहीं होती है।

प्रश्न १९—करणलब्धि किसको होती है ?

उत्तर—जिसको पुण्य की रुचि छूटती है। उसे अपूर्वकरण से निर्जरा होनी शुरू हो जाती है। कषाय का मन्द होना यह तो विकार का सूचक है उसकी बात यहाँ पर नही है, परन्तु अपूर्वकरण मे निर्जरा गलन होने रूप अर्थात् नाश होनेरूप होती है।

प्रश्न २०—करण लब्धि में कौनसा गुणस्थान है ?

उत्तर—पहला मिथ्यात्व गुणस्थान है। दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है। परन्तु बंध कम होता है निर्जरा ज्यादा होती हैं तब निर्विकल्पता होने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

प्रश्न २१—आगम में अपूर्वकरण लब्धि से जैन क्यो कहा है, जबकि वहाँ पहला गुणस्थान है और निर्जरा क्यो कही है ?

उत्तर—अपूर्वकरण मे मिथ्यात्व सम्बन्धी रजकण कम आते है और अभाव ज्यादा का होता है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण मे अपूर्व-करण से ज्यादा मिथ्यात्व कर्म के रजकण खिर जाते है और बहुत कम आते है। कर्म खिरने की अपेक्षा निर्जरा कहने मे आता है तथा अपूर्व-करण होने पर नियम से सम्यग्दर्शन होता ही है। इसलिए आगम मे अपूर्वकरण से जैन कहा है। तथा अपूर्वकरण मे मिथ्या श्रद्धा पतली पड़ जाती है और मिथ्यात्व के रजकण कम आते है इसलिए निर्जरा कही है।

प्रश्न २२—अधःकरण होने पर नियम से अपूर्वकरण होता है तब अधःकरण से आगम मे जैन क्यो नहीं कहा गया है ?

उत्तर—अधःकरण मे मिथ्यात्व के रजकण जितने आते है उतने ही खिर जाते हैं। इसलिए अध करण से आगम मे जैन नही कहा है।

प्रश्न २३—क्या करणलब्धि होने पर सम्यक्त्व होता ही है ?

उत्तर—हाँ ऐसा नियम है। जिसको चार लब्धियाँ तो हुई हो और अन्तर्मूहर्त पश्चात् जिसके सम्यक्त्व होना हो, उसी जीव के कारण लब्धि होती है।

प्रश्न २४—उस करणलब्धि वाले जीव को क्या उद्यम होता है ?

उत्तर—बुद्धिपूर्वक तत्व विचार मे उपयोग को तद्रूप होकर लगाये, उससे समय-समय परिणाम निर्मल होते जाते हैं। जैसे—किसी के शिक्षा का विचार ऐसा निर्मल होने लगा कि जिससे उसको शीघ्र ही उसकी

प्रतीति हो जावेगी, उसी प्रकार तत्वोपदेश का विचार ऐसा निर्मल होने लगा कि जिससे उसको शीघ्र ही उसका श्रद्धान हो जावेगा।

प्रश्न २५—क्या करणलब्धि के परिणाम वचन गम्य है ?

उत्तर—नही है। अन्तर मे चैतन्य स्वभाव के सन्मुख होने पर अन्तर मे कोई सूक्ष्म परिणाम हो जाता है वह केवली गम्य है, वचन गम्य नही है।

प्रश्न २६—मै करणलब्धि करूँ-करूँ क्या ऐसा भाव होता है ?

उत्तर—विल्कुल नही होता। मैं अध करण करूँ, अनिवृत्तिकरण करूँ ऐसा लक्ष्य नही होता है क्योकि करूँ-करूँ यह तो स्थूल राग है। परन्तु अन्तर मे आत्म सन्मुख होने पर अध करणादि के परिणाम हो जाते है वह अपनी वुद्धि मे नही आते हैं।

प्रश्न २७—अध.करणादि को अध्यातमदृष्टि और आगमदृष्टि से क्या कहा जाता है ?

उत्तर—अध्यात्मदृष्टि मे आतम सन्मुख परिणाम कहा जाता है और आगम की दृष्टि से अध करणादि कहे जाते है। जीव के विशुद्ध परिणामो का निमित्त होने पर द्रव्यकर्म का भी स्वय वैसा परिणमन हो जाता है परन्तु जीव का उद्यम तो आतम सन्मुख परिणाम ही है।

प्रश्न २८—करण लब्धि में उपादान—निमित्त क्या है ?

उत्तर—आतम मे सम्यक्त्व के योग्य परिणामो की विशुद्धि उपादान कारण है द्रव्य कर्मों की उस समय पर्याय की योग्यता निमित्त कारण है।

प्रश्न २९—सम्यक्त्व होने पर उपादान-निमित्त क्या है ?

उत्तर—आत्मा के श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगट होना उपादान कारण है दर्शनमोहनीय के उपशमादि निमित्त कारण है।

प्रश्न ३०—करणलब्धि के तीन भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—अध करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण यह तीन भेद है।

प्रश्न ३१—अधःकरण क्या है ?

उत्तर—अध करण अर्थात् हल्का, आत्मा के सन्मुख परिणाम हुआ है परन्तु हल्का है इसलिए अध करण कहा है।

प्रश्न ३२—शास्त्रो में अधःकरण की परिभाषा क्या बताई है ?

उत्तर—त्रिकालवर्ती सर्व करणलब्धि वाले जीवो के परिणामों की अपेक्षा ये तीन नाम है। वहाँ करण नाम तो परिणाम का है। जहाँ पहले और पिछले समयो के परिणाम समान हो सो अध करण है। जैसे—किसी जीव के परिणाम उस करण के पहले समय मे अल्प विशुद्धता से सहित हुए, पश्चात् समय-समय अनन्तगुणी विशुद्धता से बढते गये, तथा उसके द्वितीय-तृतीय आदि ममयो मे जैसे परिणाम हो, वैसे किन्ही अन्य जीवो के प्रथम समय मे ही हो और उनके उससे समय-समय अनन्त गुणी विशुद्धता से वढते हो।—इस प्रकार अध -करण जानना।

प्रश्न ३३—अधःकरण का स्वरूप समझने में नहीं आया कृपया दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—तीसरी क्लास मे एक विद्यार्थी पढता है, वह एक वर्ष मे मेहनत करके पास होकर चौथी क्लास मे आ जाता है और दूसरा विद्यार्थी दूसरी क्लास मे पढता है, वह इतना होशियार है कि वह एक वर्ष मे दो क्लास पास करके चौथी क्लास मे पहुच जाता है, वैसे ही आठ बजे जिन्होने अध करण माडा हो, वह एक समय के बाद जितनी शुद्धि प्रगट करता है। उतनी शुद्धि आठ वजकर एक मिनट पर अवः करण माडने वाले जीव विशेप पुरुषार्थ द्वारा पहले जीव की जितनी शुद्धि है उतनी ही प्रगट कर लेता है उसे अध करण कहते हैं।

प्रश्न ३४—अपूर्वकरण क्या है ?

उत्तर—आत्म सन्मुख परिणाम अपूर्व-अपूर्व ही हो वह अपूर्व करण है।

प्रश्न ३५—शास्त्रों में अपूर्व करण की परिभाषा क्या वताई है ?

उत्तर—जिसमे पहले और पिछले समयो के परिणाम समान न

हो, अपूर्व ही हो वह अपूर्वकरण है। जैसे कि—उस करण के परिणाम जसे पहले समय मे हो वैसे किसी भी जीव के द्वितीयादि समयो मे नही होते, बढते ही होते है, तथा यहाँ अध.करणवत् जिन जीवो के कारण का पहला समय ही हो उन अनेक जीवो के परिणाम परस्पर समान भी होते हैं और अधिक-हीन विशुद्धता सहित भी होते हैं; परन्तु यहाँ इतना विशेष हुआ कि—इसकी उत्कृष्टता से भी द्वितीयादि समय वाले के जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता सहित ही होते है। इसी प्रकार जिन्हे करण प्रारम्भ किये द्वितीयादि समय हुए हो उनके उस समय वालो के परिणाम तो परस्पर समान या असमान होते हैं; परन्तु ऊपर के समय वालो के परिणाम उस समय समान सर्वथा नही होते, अपूर्व ही होते है। इस प्रकार अपूर्वकरण जानना।

प्रश्न ३६—अपूर्वकरण का स्वरूप समझ मे नहीं आया, कृपया दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—एक क्लास मे २५ विद्यार्थी हैं। उसमे आखिरी नम्बर वाला विद्यार्थी के बराबर चौथी क्लास का विद्यार्थी पहला नम्बर वाला हो तो भी उसके समान नही हो सकता, वैसे ही पहले जिस जीव ने अपूर्वकरण माडा हो, उसके पीछे वाला उसके साथ शुद्धि मे कभी भी समानता को प्राप्त नही हो सकता, वह सदा काल पीछे ही रहेगा उसे अपूर्वकरण कहते हैं। जैसे—एक क्लास के जितने विद्यार्थी हैं, वह सब एक सरीखे होशियार नही होते अर्थात् उसमे हीनाधिकता होती है, वैसे ही अपूर्वकरण माडने वाले पाच जीव हो उनका शुद्धि-रूप परिणाम एक समान नही रहता है उसे अपूर्वकरण कहते है ?

प्रश्न ३७—अनिवृत्तिकरण क्या है ?

उत्तर—आत्म परिणाम और विशेषता लिए हुए होना, जिसके अभाव से नियम से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है उसे अनिवृत्तिकरण कहते है।

प्रश्न ३८—शास्त्रो में अनिवृत्तिकरण की परिभाषा क्या बताई है ?

उत्तर—जिसमे समान समयवर्ती जीवो के परिणाम समान ही होते हैं, निवृत्ति अर्थात् परस्पर भेद उससे रहित होते है, जैसे—उस करण के पहले समय मे सर्व जीवो के परिणाम परस्पर समान ही होते हैं, उसी प्रकार द्वितीयादि समयो मे परस्पर समानता जानना। तथा प्रथमादि समय वालो से द्वितीयादि समय वालो के अनन्तगुणी विशुद्धता सहित होते हैं। इस प्रकार अनिवृत्ति करण जानना।

प्रश्न ३९—अनिवृत्तिकरण का स्वरूप समझ मे नहीं आया, कृपया दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—जैसे—पाँचवी क्लास के सब विद्यार्थी समान ही होशियार हो, वैसे ही एक साथ अनिवृत्तिकरण माडने वाले जितने जीव हो उन सबके परिणाम समान हो अर्थात् जिनके परिणामो मे कोई भेद ना हो उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

प्रश्न ४०—अधःकरण आदि तीनो भाव कैसे हैं ?

उत्तर—शुभभावरूप हैं जिसके अभाव होते ही धर्म की प्राप्ति होती है और फिर क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न ४१—श्री कार्तिकेय स्वामी ने सम्यग्दृष्टि की धर्मअनुप्रेक्षा के विषय में क्या बताया है (२) सम्यग्दृष्टि जीव वस्तु स्वरूप का कैसा चिन्तन करता है ? (३) उसमें मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ भी किस प्रकार आ जाता है ?

उत्तर—यहाँ मूलगाथाये लेकर इनका विवेचन किया जा रहा है।

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा आहव मरण वा ॥३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥३२२॥

अर्थ—जिस जीव को जिस देश मे जिस काल मे जिस विधि से

जन्म-मरण सुख-दु ख तथा रोग और दारिद्रय इत्यादि जैसे सर्वज्ञदेव ने जाने हैं उसी प्रकार वे सब नियम से होगे। सर्वज्ञदेव ने जिस प्रकार जाना है उसी प्रकार उस जीव के उसी देश मे उसी काल मे और उसी विधि से नियम पूर्वक सब होता है। उसके निवारण करने के लिये इन्द्र या जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी समर्थ नही है।

प्रश्न ४२—इन दो गाथाओ के भावार्थ में क्या बताया है ?

उत्तर—भावार्थ :—सर्वज्ञदेव समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अवस्थाओ को जानते है। सर्वज्ञ के ज्ञान मे जो कुछ प्रतिभासित हुआ है वह सब निश्चय से होता है, उसमे हीनाधिक कुछ भी नही होता। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि विचार करता है।

प्रश्न ४३—इन दो गाथाओं और भावार्थ से क्या सिद्ध हुआ ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि की धर्मानुप्रेक्षा कैसी होती है और सम्यग्दृष्टि जीव वस्तु के स्वरूप का किस प्रकार चिंतन करता है यह बात यहाँ बताई है। सम्यग्दृष्टि की यह भावना झूठा आश्वासन देने के लिये नही है, किन्तु जिनेन्द्र देव के द्वारा देखा गया वस्तु स्वरूप जिस प्रकार है उसी प्रकार स्वय चिंतन करता है। वस्तु स्वरूप ऐसा ही है, यह कोई कल्पना नही है, यह धर्म की बात है। 'जिस काल मे जो होने वाली अवस्था सर्वज्ञ भगवान ने देखी है उस काल मे वही अवस्था होती है, दूसरी नही होती।' इस निर्णय मे एकान्तवाद या नियतवाद नही है, किन्तु सर्वज्ञ की प्रतीति पूर्वक सच्चा अनेकान्तवाद और ज्ञानस्वभाव की भावना तथा ज्ञान का अनन्त पुरुषार्थ निहित है।

प्रश्न ४४—सामान्य विशेष वस्तु का स्वभाव है इस पर से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—आत्मा सामान्य—विशेष स्वरूप वस्तु है, वह अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप है। द्रव्य सामान्य और समय-समय पर जो पर्याय होती है वह विशेष है। सामान्यरूप मे ध्रुव रहकर वस्तु का विशेषरूप परिणमन होता है, उस विशेष पर्याय मे यदि स्वरूप की रुचि करे तो

समय-समय पर विशेष मे शुद्धता होती है, और यदि उस विशेष पर्याय मे ऐसी विपरीत रुचि करे कि 'जो रागादि व देहादि है वह मैं हूं' तो विशेष मे अशुद्धता होती है। जिसे स्वरूप की रुचि है उसे शुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रगट होती है; और जिसे विकार की—पर की रुचि है उसे अशुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रगट होती है। चैतन्य को क्रमवद्ध-पर्याय में अन्तर नही पड़ता, किन्तु क्रमबद्ध का ऐसा नियम है कि जिस ओर की रुचि करता है उस ओर की क्रमबद्ध दशा होती है। जिसे ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा व रुचि होती है उसकी पर्याय शुद्ध होती है, सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान के अनुसार क्रमबद्ध पर्याय होती है। उसमे कोई अन्तर नही पड़ता—इतना निश्चय करने मे तो ज्ञान स्वभावी द्रव्य की ओर का अनन्त पुरुषार्थ आ जाता है। यहाँ पर्याय का क्रम नही बदलना है किन्तु अपनी ओर रुचि करनी है। रुचि के अनुसार पर्याय होती है।

द्रव्य दृष्टि का अभ्यास कर्तव्य है

"प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् है, एक द्रव्य का दूसरे के साथ वास्तव मे कोई सम्बन्ध नही है," इस प्रकार जो यथार्थतया जानता है उसको स्वद्रव्य की दृष्टि होती है, और द्रव्यदृष्टि के होने पर सम्यक्दर्शन होता है, जिसके सम्यक्दर्शन होता है उसे मोक्ष हुए बिना नही रहता, इस लिये मोक्षार्थी को सर्वप्रथम वस्तु का स्वरूप जानना आवश्यक है।

प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नही कर सकता, ऐसा मानने पर वस्तु स्वभाव का इस प्रकार ज्ञान हो जाता है कि—आत्मा सर्व परद्रव्यो से भिन्न है, तथा प्रत्येक पुद्गल परमाणु भिन्न है, दो परमाणु मिलकर एकरूप होकर कभी कार्य नहीं करते किन्तु प्रत्येक परमाणु भिन्न ही है।

जीव के विकार भाव होने मे निमित्तरूप विकारी परमाणु(स्कन्ध) हो सकते हैं, किन्तु द्रव्य की अपेक्षा से देखने पर प्रत्येक परमाणु पृथक् ही है,—दो परमाणु कभी भी नही मिलते और एक पृथक् परमाणु जीव को कभी भी विकार का निमित्त नही हो सकता, अर्थात् प्रत्येक द्रव्य भिन्न है, ऐसी स्वभावदृष्टि से कोई द्रव्य अन्य द्रव्य के विकार का निमित्त भी नही है। इस प्रकार द्रव्य दृष्टि से किसी द्रव्य मे विकार है ही नही, जीव द्रव्य मे भी द्रव्य दृष्टि से विकार नही है।

पर्याय दृष्टि से जीव की अवस्था मे रागद्वेष होता है और उसमे कर्म निमित्तरूप होता है, किन्तु पर्याय को गौण करके द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो कर्म कोई वस्तु ही नही रहा, क्योकि वह तो स्कन्ध है; इसलिये द्रव्यदृष्टि से जीव के विकार का निमित्त कोई द्रव्य न रहा, अर्थात् अपनी ओर से लिया जाये तो जीव द्रव्य मे विकार ही नही रहा। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य भिन्न है ऐसी दृष्टि अर्थात् द्रव्यदृष्टि के होने पर राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण ही न रहा, अत द्रव्यदृष्टि मे वीतराग भाव की ही उत्पत्ति रही।

अवस्थादृष्टि मे—पर्यायदृष्टि मे अथवा दो द्रव्यो के सयोगी कार्य की दृष्टि मे राग-द्वेषादिभाव होते हैं। 'कर्म' अनन्त पुद्गलो का सयोग है, उस सयोग पर या सयोगी भाव पर लक्ष दिया कि रागद्वेष होता है, किन्तु यदि अपने असयोगी आत्म स्वभाव की दृष्टि करे तो राग-द्वेष न हो, किन्तु उस दृष्टि के बल से मोक्ष ही हो। इसलिए मुमुक्षु के द्रव्य दृष्टि का अभ्यास परम कर्तव्य है।

आस्रवतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी आस्रव तत्त्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—हिंसादि पापास्रव हेय है, अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है—ऐसा मानता है।

प्रश्न २—अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसी खोटी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उत्तर—"मोह महामद पियो अनादि" मोह रूपी महा मदिरा पान बताया है।

प्रश्न ३—अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसी खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद इस खोटी मान्यता का फल बताया है।

प्रश्न ४—अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसी खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव वीतराग विज्ञानता रूप है और अहिंसादि पुण्यास्रव त्याज्य-हेय है। अज्ञानी ऐसा न मानकर अहिंसादि पुण्यास्रव को उपादेय मानने के कारण इस खोटी मान्यता का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है—ऐसी खोटी मान्यता को छहढाला की दूसरी ढाल से क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसी खोटी मान्यता को आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है। (२) अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसा अनादि काल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (३) अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसा अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (४) अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसा अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्या चारित बताया है। (५) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव

व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु कुशास्त्र उपदेश मानने से अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसा अनादि काल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेप रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु कुशास्त्र का उपदेश मानने से अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्या-ज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्रश्न ६—अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसा आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रकट होवे, इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आँख कान नाक औदारिक आदि शरीरी रूप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव है। (७) अनन्तानन्त पुद्‌गल द्रव्य है। (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य हैं। (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है। (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का कर्त्ता भोक्ता सम्बन्ध नही हैं, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य क्षेत्र काल भाव पृथक्-पृथक् है, ऐसा जानकर ज्ञान दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले, तो अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है, ऐसा आस्रव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि का

अभाव होकर सम्यक्‌दर्शनादि की प्राप्ति होवे यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया गया है।

प्रश्न ७—अहिंसा पुण्यास्रव उपादेय है—ऐसी मान्यता को आपने आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया परन्तु, अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसा ज्ञानी भी कहते सुने देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियो को भी आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को बिलकुल नही होते है। (१) क्योकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने अहिंसादि पुण्यास्रव तत्व उपादेय है, ऐसी खोटी मान्यता को आस्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादिक कहा है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे आस्रव तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर ही के बनते हैं। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) अहिंसादि पुण्यास्रव उपादेय है ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम मे उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहा।

बंधतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी बंधत्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—पुण्य-पाप दोनो बधरूप होते हुये भी पुण्य बध को अच्छा मानता है।

प्रश्न २—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को छहढ़ाला की प्रथम ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उत्तर—"मोह महामद पियो अनादि" मोहरूपी महा मदिरापान बताया है।

प्रश्न ३—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद–इस खोटी मान्यता का फल बताया है।

प्रश्न ४—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढ़ाल में चारो गतियो में घूम कर निगोद क्यों बताया है ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव वीतराग-विज्ञान रूप अबन्ध स्वभावी है और पुण्य-पाप दोनो बधरूप ही है। परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर पुण्यबध को अच्छा मानने के कारण, इस खोटी मान्यता का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप-खोटी मान्यता को छहढाला की दूसरी ढ़ाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, मान्यता को बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है। (२) पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप-मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (३) पुण्यबध को अच्छा मानने रूप-मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (४) पुण्यबध को अच्छा मानने रूप, मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्या चारित्र बताया है। (५) वर्तमान मे विशेप रूप से मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन

बताया है। (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से, ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्रश्न ६—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप, मान्यता को बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत, गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है। (३) आँख, नाक, कान औदारिक आदि शरीरो-रूप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव है। (७) अनन्तान्त पुद्गल द्रव्य है। (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है। (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं।

इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सम्बन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्व का आश्रय ले तो पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप बधतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे, यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्रश्न ७—पुण्यबन्ध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को आपने बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि बताया परन्तु पुण्यबन्ध को अच्छा, ऐसा तो ज्ञानी भी कहते सुने देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियो को भी बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को विलकुल नही होते है। (१) क्योकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने पुण्यबध को अच्छा मानने रूप खोटी मान्यता को बधतत्व सम्वन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि वताया है परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वे बधतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर के ही बनते हैं। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) पुण्यबन्ध अच्छा है, ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम मे उपचरित सद्भूत व्यवहार कहा है।

संवरतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी संवरतत्त्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—वीतराग-विज्ञानतारूप निज आत्मा के आगम से सम्यक्-दर्शन-ज्ञान वैराग्य हितकारी है, परन्तु अज्ञानी निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानता है।

प्रश्न २—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढ़ाल में क्या वताया है ?

उत्तर—"मोह महामद पियो अनादि" मोहरूपी महामदिरा पान बताया है।

प्रश्न ३—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद, इस खोटी मान्यता का फल बताया है।

प्रश्न ४—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढ़ाल में चारों गतियों में घमकर निगोद क्यो बताया है ?

उत्तर—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही जीव को हितकारी है। स्वरूप मे स्थिरता रूप वैराग्य सुख का कारण है परन्तु अज्ञानी इसे कष्टदाता मानने के कारण ऐसी मान्यता का फल चारो गतियो मे घमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की दूसरी ढाल में क्या क्या बताया है ?

उत्तर—(१) निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है। (२) निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (३) निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को अनादि-काल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (४) निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य का कष्टदाता मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है। (५) वर्तमान मे विशेप रूप से मनुष्यभव व दिगवर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से निश्चय

सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभाव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से निश्चय सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेप रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का उपदेश मानने से निश्चय सम्यक्दर्शन, ज्ञान, वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्रश्न ६—निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को सवरतत्व सम्बन्धो जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टि है। (३) आख-नाक कान औदारिक आदि शरीरो रूप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य हैं। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य हैं। (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है। (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सबध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोग-मयी निज जीवतत्व का आश्रय ले, तो निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान

वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाला मे बताया है।

प्रश्न ७—निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप खोटी मान्यता को आपने संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया, परन्तु निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान वैराग्य कष्टदाता है ऐसा तो ज्ञानी भी कहते सुने-देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियों को भी संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को बिल्कुल नही होते है [१] क्योकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने निश्चय सम्यक्दर्शन-ज्ञान-वैराग्य को कष्टदाता मानने रूप मान्यता को सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। [२] ज्ञानी जो वनते है वे सवर तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं। [३] ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। [४] सम्यक्-दर्शन ज्ञान-वैराग्य कष्टदाता है ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम मे उपचारित सद्भूत व्यवहारनय कहा है।

निर्जरातत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी निर्जरातत्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि को निर्जरा कहते हैं परन्तु अज्ञानी अनशनादि तप से निर्जरा होना मानता है।

प्रश्न २—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को

भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—"मोहमहामद पियो अनादि" मोहरूपी महा मदिरापान बताया है।

प्रश्न ३—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद—इस खोटी मान्यता का फल बनाया है।

प्रश्न ४—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता का फल चारो गतियो में घूमकर निगोद क्यो बताया है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि ही निर्जरा है परन्तु अज्ञानी के अनशनादि बाह्य तप को निर्जरा मानने का फल चारो गतियों मे घूमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप खोटी मान्यता को छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को निर्जरा-तत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है। (२) आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (३) आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय चला आ-रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्यात्व बताया है। (४) आत्मा

के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है। (५) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु कुशास्त्र का उपदेश मानने से अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप ऐमा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप—ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण गृहीत को मिथ्याचारित्र बताया है।

प्रश्न ६—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे—इसका उपाय छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू। (२)मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है। (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरों रूप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव हैं। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है। (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं। इन सब द्रव्यो से मुझ निज

आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सम्बन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्व का आश्रय ले, तो आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप निर्जरा तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे—यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्रश्न ७—आत्मा के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि रूप निर्जरा को भूलकर अनशनादि तप को निर्जरा मानने रूप मान्यता को आपने निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु अनशनादि निर्जरा है ऐसा तो ज्ञानी भी कहते-सुने-देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियो को भी निर्जरा तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को बिलकुल नही होते हैं। (१) क्योकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने अनशनादि को निर्जरा मानने रूप मान्यता को निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वह निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर के ही बनते हैं। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) अनशनादि निर्जरा है—ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम मे उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहा है।

मोक्षतत्त्व

प्रश्न १—अज्ञानी मोक्ष तत्व के विषय में कैसा मानता है ?

उत्तर—आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना मोक्षतत्व है। उसमे आकुलता का अभाव है, पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानता है।

प्रश्न २—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को छहढाला की प्रथम ढ़ाल में क्या बताया है ?

उत्तर—"मोह महामद पियो अनादि" मोहरूपी महा मदिरापान बताया है।

प्रश्न ३—मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता का फल छहढ़ाला की प्रथम ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद इस खोटी मान्यता का फल बताया है।

प्रश्न ४—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता का फल चारो गतियों में घूमकर निगोद क्यो बताया है ?

उत्तर—मोक्ष मे आकुलता का अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद बताया है।

प्रश्न ५—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को छहढाला की दूसरी ढ़ाल में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को मोक्षतत्व

सम्बधी जीव की भूल बताया है। (२) मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय कर के चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यदर्शन वताया है। (३) मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्या ज्ञान बताया है। (४) मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र वताया है। (५) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से—शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को, अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल का ज्ञान विशेप दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान वताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्य-भव व दिगम्वर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मान्यता को अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्रश्न ६—मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में ही सुख मानने रूप मान्यता को मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहोत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे, इसका उपाय छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल में क्या बताया है?

उत्तर—(१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू। (२) मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है। (३) आंख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरो रूप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव हैं। (७) अनन्तान्त पुद्गल द्रव्य है। (८) असख्यात प्रदेशी एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। (९) अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है। (१०) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता सम्बन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्व का आश्रय ले, तो शरीर के मौज-शौक मे ही सुख मानने रूप मोक्ष तत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि का अभाव होकर पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे—यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्रश्न ७—मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है, ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे ही मोक्ष सुख मानने रूप मान्यता को आपने मोक्ष तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु शरीर के मौज-शौक मे ही सुख है ऐसा तो ज्ञानी भी कहते-सुने-देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियो को भी मोक्ष तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उत्तर—ज्ञानियो को बिलकुल नही होते है। (१) क्योकि जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने शरीर के मौज-शौक मे ही सुख है, ऐसी मान्यता को मोक्ष तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वह मोक्ष तत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव कर के ही बनते है। (३) ज्ञानियो

को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) शरीर के मौज-शौक में ही सुख है, ऐसे ज्ञानी के कथन को आगम मे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहा है।

प्रश्न ८—केवल ज्ञान क्या बताता है?

उत्तर—(१) जैसे दर्पण के ऊपरी भाग मे घट-पटादि प्रतिबिम्बित होते हैं, उसका प्रयोजन यह है कि दर्पण को ऐसी इच्छा नही है कि मैं इन पदार्थों को प्रतिबिम्बित करूँ, उसी प्रकार केवल ज्ञान रूपी दर्पण मे समस्त जीवादि पदार्थ परिणमित होते हैं। कोई द्रव्य या पर्याय ऐसी नही है, जो केवलज्ञान मे ना आवे। (२) केवलज्ञान मे सर्व पदार्थ जानने मे आने पर भी केवलज्ञान और सर्व पदार्थों का अत्यन्त अभाव है। (३) केवलज्ञान है, इसलिये सर्व पदार्थ है, ऐसा नही है। सर्व पदार्थ हैं, इसलिये केवलज्ञान है, ऐसा भी नही है। परन्तु दोनो का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। (४) केवलज्ञान को मानते ही विश्व व्यवस्था का सच्चा ज्ञान हो जाता है। विश्व व्यवस्था को जानते ही केवली को भी माना। तभी आत्मा मे से अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा मिथ्यात्वादि का अभाव होकर सम्यक्-दर्शनादि की प्राप्ति हो जाती है। (५) जैसे दर्पण अपना स्वरूप छोड़-कर पदार्थों को प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नही जाता और वे पदार्थ भी अपना स्वरूप छोडकर उस दर्पण मे प्रवेश नही करते हैं, उसी प्रकार केवलज्ञान अपना स्वरूप छोडकर विश्व के पदार्थों को प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नही जाता और विश्व के पदार्थ भी अपना स्वरूप छोडकर केवलज्ञान मे प्रवेश नही करते हैं। (६) केवलज्ञान को मानते ही पर मे कर्ता-भोक्ता की खोटी मान्यता का तुरन्त अभाव हो जाता है और अपने निज भगवान का पता चल जाता है। (७) विश्व व्यवहार से ज्ञेय है। वैसे तो ज्ञान पर्याय ज्ञेय और निज भगवान ज्ञायक। परन्तु ऐसे भेद से भी सिद्धि नही है तू ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक। जय वीतराग देव की।

लघु द्रव्य संग्रह

(श्री नेमीचन्द्र आचार्य देव कृत)

२५ श्लोक वाली २५ प्रश्नोत्तरों के रूप में

प्रश्न १—जिनेन्द्र देव ने किसका वर्णन किया है ?

उत्तर—छह द्रव्य; पांच अस्तिकाय; सात तत्त्व, नव पदार्थ और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का वर्णन किया है ॥१॥

प्रश्न २—छह द्रव्यों के नाम और उनमें अस्तिकाय कौन-कौन हैं ?

उत्तर—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये छह द्रव्य हैं। काल द्रव्य को छोडकर शेष पांच द्रव्य बहुप्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय हैं ॥२॥

प्रश्न ३—सात तत्त्व और नव पदार्थ के नाम क्या-क्या हैं ?

उत्तर—(१) जीव, अजीव, आस्रव बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व है। (२) ये सात तत्त्व पुण्य-पाप सहित नव पदार्थ हैं ॥३॥

प्रश्न ४—जीव द्रव्य कैसा है और उसके कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) जीव द्रव्य अमूर्तिक, स्वदेह प्रमाण, सचेतन, कर्ता और भोक्ता है। (२) जीव दो प्रकार के है—सिद्ध और ससारी। (३) ससारी जीव अनेक प्रकार के है ॥४॥

प्रश्न ५—जीव की पहिचान क्या है ?

उत्तर—जो अरस, अरुप, अगन्ध, अव्यक्त, अशब्द तथा अनिर्दिष्ट संस्थान है (जिसके कोई सस्थान नही है) चेतना गुण वाला है और इन्द्रियो के द्वारा अग्राह्य है—उसे जीव जानो ॥५॥

प्रश्न ६—मूर्तिक पुद्गल काय किसे कहते हैं और कितने प्रकार का है ?

उत्तर—जिसके वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्श विद्यमान हैं, वह मूर्तिक

पुद्गल काय है। उसे जिनेन्द्र भगवान ने पृथ्वी आदि छह प्रकार का कहा है ॥६॥

प्रश्न ७—पृथ्वी आदि छह प्रकार के नाम क्या हैं ?

उत्तर—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) छाया, (४) नेत्र इन्द्रिय को छोडकर चार इन्द्रियो के विषय, (५) कर्म वर्गणा, (६) परमाणु ॥७॥

प्रश्न ८—धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वय गमन से परिणत पुद्गल और जीवो को गमन में निमित्त धर्म द्रव्य है। जिस प्रकार मछलियो के गमन मे जल निमित्त है। किन्तु गमन न करने वालो को और स्थिर रहे हुये पुद्गल और जीवो को धर्म द्रव्य गमन नही कराता ॥८॥

प्रश्न ९—अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वय गतिपूर्वक स्थित रहे हुये जीव और पुद्गलो को स्थिर होने मे निमित्त अधर्म द्रव्य है। जिस प्रकार छाया यात्रियो को स्थिर होने मे निमित्त है। किन्तु गमन करते हुये जीव-पुद्गलो को अधर्म द्रव्य स्थिर नही करता है ॥९॥

प्रश्न १०—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीवादिक द्रव्यो को अवकाश देने मे निमित्त है—उसे जिनेन्द्र देव द्वारा कहा गया और आकाश द्रव्य जानो उसके दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश ॥१०॥

प्रश्न ११—काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो द्रव्यो के परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले हैं वे व्यवहार काल हैं। (२) लोकाकाश के प्रदेश रूप से स्थित एक-एक कालाणु निश्चय काल द्रव्य है ॥११॥

प्रश्न १२—काल द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश मे रत्त राशि की भान्ति, परस्पर भिन्न, एक-एक काल द्रव्य स्थित हैं। वे काल द्रव्य असख्य हैं ॥१२॥

प्रश्न १३—द्रव्यो की प्रदेश संख्या कितनी-कितनी है ?

उत्तर—(१)जीव, धर्म, अधर्म के असख्यात प्रदेश हैं। (२)आकाश के अनन्त प्रदेश हैं। (३) पुद्गल के व्यवहारनय से सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश हैं और परमाणु एक प्रदेशी है। (४) प्रत्येक काल द्रव्य एक प्रदेशी ही है। काल द्रव्य मे शक्ति या व्यक्ति की अपेक्षा से बहुप्रदेशीपना नही है ॥१३॥

प्रश्न १४—प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर—अविभागी पुद्गल परमाणु द्वारा जितना आकाश रोका जाये उसे प्रदेश कहते है। वह प्रदेश सर्व परमाणुओ को स्थान देने मे समर्थ है ॥१४॥

प्रश्न १५—जीवादि के विषय में जिनेन्द्र भगवान ने क्या बताया है ?

उत्तर—(१) जीव ज्ञान युक्त है। (२) पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव हैं। इस प्रकार जिनेन्द्र देव ने कहा है। ऐसा जो नही मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ॥१५॥

प्रश्न १६—आस्रव किससे होता है और बंध क्या है ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व, हिंसादि अव्रत, कषाय और योगो से आस्रव होता है। (२) कषाय सहित जीव अनेक प्रकार के पुद्गलों का जो ग्रहण करता है वह बन्ध है ॥१६॥

प्रश्न १७—जिनेन्द्र देव ने संवर-निर्जरा किसे कहा है ?

उत्तर—(१)जिनेन्द्र देव ने मिथ्यात्वादि के त्याग को सवर कहा है। (२) कर्मों के एकदेश क्षय को निर्जरा कहा है और निर्जरा के दो भेद कहे हैं—अभिलाषा रहित सकाम-अविपाक निर्जरा तथा अभिलाषा सहित अकाम-सविपाक निर्जरा कही है ॥१७॥

प्रश्न १८—मोक्ष किसे कहा है ?

उत्तर—कर्मों के बन्धन से बन्धे हुये प्रशस्त अन्तरात्मा का सर्व

कर्मों का पूर्णरूप से छूटना—सो मोक्ष है—ऐसा जिनेन्द्र देव ने वर्णन किया है ॥१८॥

प्रश्न १६—पुण्य और पाप प्रकृतियां कौन-कौन सी है ?

उत्तर—साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और तीर्थंकर आदि पुण्य प्रकृतियाँ है। अन्य शेष पाप प्रकृतियाँ हैं—ऐसा परमागम मे कहा है ॥१६॥

प्रश्न २०—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किसमे होते हैं ?

उत्तर—मनुष्य पर्याय नष्ट होती है, देव पर्याय उत्पन्न होती है तथा जीव वही का वही रहता है। इस प्रकार सर्व द्रव्यो के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं ॥२०॥

प्रश्न २१—वस्तु मे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किस अपेक्षा से है ?

उत्तर—(१) पर्यायनय से वस्तु मे उत्पाद-व्यय होते है। (२) द्रव्य दृष्टि से वस्तु को ध्रौव्य जानना चाहिए—ऐसा सर्वज्ञ देव द्वारा कहा गया है ॥२१॥

प्रश्न २२—सुखी होने के लिये क्या करना चाहिए ?

उत्तर—यदि कर्मों का नाश चाहते हो तो परमागम के ज्ञाता होकर स्वय मे स्थित रहकर और मन को स्थिर करके राग-द्वेष को छोडना चाहिये ॥२२॥

प्रश्न २३—सच्चे सुख को कौन प्राप्त होता है ?

उत्तर—जो आत्मा विषयो मे लगे हुये मन को रोककर, अपने आत्मा को अपने द्वारा ध्याता है—वह आत्मा वास्तव मे सच्चे सुख को प्राप्त करता है ॥२३॥

प्रश्न २४—कैसे साधुओ को नमस्कार करना चाहिये ?

उत्तर—जीवादि को सम्यक् प्रकार से जानकर जिन्होने उन जीवादि का यथार्थ वर्णन किया है। जो मोहरूपी हाथी के लिये सिंह समान हैं—उन साधुओ को नमस्कार करना चाहिये ॥२४॥

प्रश्न २५—ये गाथायें क्यो और किसके निमित्त रची हैं ?

उत्तर—सोमश्रेष्टि के निमित्त से, भव्य जीवों के उपकार हेतु श्री नेमीचन्द्र आचार्य देव ने पदार्थों का लक्षण बतलाने वाली २५ गाथायें रची हैं ॥२५॥

नेमीचन्द्र आचार्य देवकृत लघु द्रव्य सग्रह सम्पूर्ण

——::०::——

प्रारम्भ से पहले अशुद्धियों को शुद्ध कीजिये

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
६४	५	जैनधम	जिनधर्म
६४	१५	प्रधीन	प्रधान
६६	१०	सिद्धान्य	सिद्धांत
७६	२०	दाष	दोष
८५	१३	दर्शनमाह	दर्शनमोह
६०	१६	ओर	और
६०	२०	विज्ञाघन	विज्ञानघन
१०३	१४	हाती	होती
१०६	२५	ओर	और
१०७	१२	ओर	और
१०८	२१	प्रवत	प्रवत
१११	१	सम्यग्दशन	सम्यग्दर्शन
११४	१७	चौदहव	चौदहवें
११४	२४	प्रमादि	प्रमाद
१२७	१६	वशिष्ट	विशिष्ट
१२८	१०	सम्यत्व	सम्यक्त्व
१३४	२	ओर	और
१७०	२७	सिश्चय	निश्चय

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
१८६	२६	ज्ञानघनरूप	ज्ञानघनरूप
१६२	२१	ही	है
१६६	१०	आत्मावलाकन	आत्मावलोकन
१६६	२५	झठा	झूठा
२०४	१	जन	जैन
२०६	१६	शन्तिनाथ	शान्तिनाथ
२१३	१७	भदरूप	भेदरूप
२२८	२७	वतादि	व्रतादि
२३४	१३	की	को
२४५	१५	सक्षीभूत	साक्षीभूत
२५०	१४	कसे	कैसे
२५०	२५	प्रत्रृतिया	प्रकृतिया
२५२	१	आर	और
२५४	२१	छटकर	छूटकर
२७२	२७	परिगमन	परिणमन
२६३	२	जसे	जैसे
२६६	१	कुशास्त्र	कुशास्त्र का
	८	घमकर	घूमकर